हिमाचल प्रदेश की लोक विवाह परंपरा

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

हिमाचल प्रदेश की लोक विवाह परंपरा

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी

क्लिफ़ एंड एस्टेट

शिमला-171001

हिमाचल प्रदेश की लोक विवाह परंपरा

संकलन एवं संपादन
अशोक हंस

सह संपादन
डॉ. श्यामा वर्मा

परामर्श
अरुण कुमार शर्मा

ISBN : 978-81-86755-84-5

प्रकाशक : **अरुण कुमार शर्मा**, हि.प्र.से.
सचिव
हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी,
संगरमल भवन, क्लिफ़ एंड एस्टेट,
शिमला, हिमाचल प्रदेश-171001

प्रकाशन वर्ष : 2015

मुख्य आवरण छायाचित्र : पारंपरिक वेशभूषा में किन्नौरी दुलहन (गाँव हंगो)
छाया चित्रकार : डॉ. अश्विनी कुमार

मूल्य : 150 ₹

मुद्रक : नियंत्रक
मुद्रण एवं लेखन सामग्री विभाग, हिमाचल प्रदेश,
घोड़ा चौकी, शिमला-171005

A book : **HIMACHAL PRADESH KEE LOK VIVAH PARAMPARA**
Edited by : **ASHOK HANS**
Advised
&
Published by : **ARUN KUMAR SHARMA**, H.A.S.
Secretary
Himachal Academy of Arts, Culture and Languages,
Cliff End Estate, Shimla-171001

Edition : 2015

Price : Rs. 150/-

अनुक्रम

प्राक्कथन

अरुण कुमार शर्मा, एच.ए.एस., सचिव अकादमी

हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्थापित हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी अपनी विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत प्रदेश की कला, संस्कृति, भाषा और साहित्य के क्षेत्र में कार्य कर रही है। प्रकाशन कार्य इनमें एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। अकादमी द्वारा जहाँ हिंदी, पहाड़ी, संस्कृत, उर्दू और अंग्रेज़ी भाषा में पुस्तकों का प्रकाशन किया जा रहा है, वहीं प्रदेश के साहित्यकारों को पुस्तक प्रकाशनार्थ वित्तीयानुदान भी दिया जाता है। अनेक साहित्यकार इस योजना के अंतर्गत लाभान्वित हुए हैं। अकादमी द्वारा लगभग 150 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रदेश के लेखकों की प्रकाशित पुस्तकें भी थोक ख़रीद योजना के अंतर्गत ख़रीदी जा रही हैं।

पत्रिकाओं का प्रकाशन भी अकादमी द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं में से एक अहम योजना है। अकादमी द्वारा जहाँ संस्कृत और पहाड़ी भाषा में अर्द्धवार्षिक पत्रिकाएँ क्रमशः 'श्यामला' और 'हिमभारती' प्रकाशित की जा रही हैं, जिनमें पारंपरिक एवं समकालीन साहित्य और संस्कृति पर रचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं, वहीं लोक कला, संस्कृति, भाषा और साहित्य को समर्पित हिंदी भाषा में अकादमी द्वारा 1975 से प्रकाशित की जा रही त्रैमासिक शोध पत्रिका 'सोमसी' अपनी चालीस वर्ष की यात्रा पूरी कर चुकी है। अब अकादमी ने निर्णय लिया है कि इस पत्रिका में प्रदेश की संस्कृति पर केंद्रित शोध आलेखों के साथ-साथ समकालीन साहित्य, सामाजिक विषयों, लघु कथाओं, कहानी तथा बाल साहित्य से संबंधित सामग्री भी शामिल की जाए। अतः पाठकों को इस पत्रिका के आगामी अंक नये स्वरूप में उपलब्ध होंगे।

वर्तमान में 'सोमसी' पत्रिका का अक्तूबर, 2014 से मार्च, 2015 तक का संयुक्त विशेषांक 'लोक विवाह परंपरा' पर केंद्रित है। ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय पर एकांतिक रूप में हिमाचल प्रदेश में अभी कोई कार्य सामने नहीं आया है। पत्रिका में ऐसी सामग्री का जहाँ अपना अलग स्थान है, वहीं पुस्तक के रूप में ऐसे विशिष्ट विषय पर सामग्री परोसना विषय के प्रतिपादन और विस्तार में भिन्न-भिन्न रंगों की छटा बिखेरता है। अतः यह विचार आया कि 'सोमसी' पत्रिका के उक्त विशेषांक में अन्य सामग्री को हटाते हुए इस अंक को पुस्तकाकार रूप दिया जाए, जिसमें हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित लोक विवाह परंपरा पर आलेख संकेंद्रित हों, ताकि यह विषय पुस्तक के रूप में भी व्यापक रूप में प्रचारित-प्रसारित हो। इस पत्रिका के विभिन्न अंक पुस्तकाकार रूप में पहले भी प्रकाशित हुए हैं।

इस संकलन हेतु लेख प्रस्तुत करने के लिए साहित्यकारों के हम तहे दिल से आभारी हैं। अकादमी के वरिष्ठ अनुसंधान अधिकारी श्री अशोक हंस ने अपने संपादन कार्य का निष्ठा से उत्तरदायित्व निभाया है और अनुसंधान अधिकारी डॉ. श्यामा वर्मा ने लगन से सह संपादन में योगदान दिया है। आशा है शोधकर्ता और पाठक प्रस्तुत सामग्री से लाभान्वित होंगे।

संपादकीय

रिश्तों की ख़ुशबू : विवाह संस्कार

मानव समाज का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण संस्कार है– 'विवाह संस्कार'। विश्व के हर सभ्य समाज में और वर्तमान संदर्भ में हिंदुओं में स्मृतिकाल से ही विवाह को एक पवित्र संस्कार माना गया है। इसके मूल में निहित है कामवासना, फिर वंशवृद्धि और दांपत्य सुख। सर्वप्रथम यदि हम कामवासना यानी सेक्स की बात करें तो इस शब्द को सुनते ही लोग चौकन्ने हो जाते हैं। इसका खुलापन निषिद्ध माना जाता है। स्त्रियों के सामने तो इस शब्द का उल्लेख करना ही शिष्टाचार के विरुद्ध है। किशोर मन में तो इस शब्द से या इसकी कल्पना से ही न जाने क्या-क्या ख़्वाब पैदा हो जाते हैं, न जाने कितनी काम भावनाएँ जागृत हो जाती हैं और वह पूर्णतः कामोन्मत्त हो जाता है। अतः इसमें कोई दो राय नहीं कि युवा होते-होते प्रत्येक युवक और युवती के अंदर कामवासना अपने आप ही धीरे-धीरे दस्तक देती घर कर जाती है। दरअसल कामवासना एक प्राकृतिक और आदिम आकांक्षा है, जो जानवरों और मनुष्य दोनों में पाई जाती है। मनुष्य प्राकृतिक व अप्राकृतिक तरीक़े से, चोरी-छिपे, स्वाभाविक व अमानवीय क्रियाओं से जैसे पुरुष किसी स्त्री को नशे में उन्मत्त कर कामवासना पूरी करता है या इस हेतु बलात्कार करने जैसी अन्य प्रवृत्तियों से अपनी रत्यात्मकता की पूर्ति करता है, क्योंकि भोजन की तरह ही यह एक नैसर्गिक आवश्यकता है, परंतु अनैतिक तौर-तरीक़ों को एक शिष्ट समाज क़तई मान्यता प्रदान नहीं करता।

अस्तु, कामवासना ही विवाह का मूल आधार है, ताकि इसके अंतर्गत सामान्यतः प्रतिजाति अर्थात् स्त्री और पुरुष के बीच सामाजिक, धार्मिक और कानूनन सम्मिलन हो, जो नागर अथवा लोक संस्कृति में प्रचलित विधि-विधानों, नियमों, रीति-रिवाजों और विश्वासों आदि से व्यवस्थापित हो।

कहते हैं– 'जब रज़ामंदी हो तो क़ाज़ी क्या कर सकता है।' अतः कई देशों ने समलैंगिक संबंधों अथवा विवाह को वैधिक मान्यता दी है। यहाँ के समाज में भी कहीं-कहीं इसे स्वीकारा गया है, लेकिन अधिकांशतः इसे बुरी दृष्टि से ही देखा गया है। प्रतिजाति में विवाह के संदर्भ में विभिन्न परिभाषाएँ हो सकती हैं, लेकिन पुनः पुष्टि करते हुए यह उल्लेखनीय है कि इसमें कामवासना, जैसे पारंपरिक निजी संबंध को प्रायः क़बूला जाता है, इसलिए कुछ समुदायों द्वारा स्त्री-पुरुषों के बीच किसी प्रकार की रत्यात्मक क्रिया से पहले 'विवाह' किया जाना अनिवार्य समझा गया है।

कामसुख की नैसर्गिक आवश्यकता के कारण यद्यपि आदिम समाज में कोई बंधन नहीं था, तथापि वंशवृद्धि के संदर्भ में देखा जाए तो द्वापर युग अथवा महाभारत काल में कुंती को उसके पति पांडु ने नियोग द्वारा संतान प्राप्ति के लिए प्रेरित किया। इसके पहले का उदाहरण देखें तो वंशवृद्धि के लिए नियोग व्यवस्था से ही वेदव्यास के संयोग से विचित्रवीर्य की दोनों संतानहीन रानियों के पांडु तथा धृतराष्ट्र और एक दासी के विदुर पैदा हुए।

ऐसी नियोग व्यवस्था शारीरिक आनंद अथवा कामवासना के लिए नहीं, अपितु वंश वृद्धि अथवा पुत्र की कामनावश अपनाई जाती थी और गर्भाधान के बाद स्त्री और नियोजित पुरुष अलग हो जाते थे। वर्तमान में भी यह पाया गया है कि अपनी पत्नी से संतान न होने पर पुरुष संतान पाने के लिए किराये की कोख खरीदता है और इच्छुक स्त्री अपने जीवन यापन के लिए पैसा कमाने हेतु 'सरॅगेट माँ' के रूप में संलग्न होती है। यहाँ स्वयं की संतान की चाहत के उद्देश्य से भले ही न सही, लेकिन यह प्रक्रिया भी नियोग का विस्तार ही तो है।

मानव समाज में विवाह का उद्‌गम कब हुआ, अगर इस प्रश्न पर विवेचना की जाए तो विभिन्न देशों के पहले के शास्त्रकारों ने विवाह की आदिम दशा, कामाचार अथवा स्वछंद संभोगी की अवस्था को मान्यता दी है। कहा जाता है कि विवाह की मर्यादा भारतवर्ष में सर्वप्रथम श्वेतकेतु ने स्थापित की। श्वेतकेतु की कथा उपनिषद् में मिलती है। वह उद्दालक का पुत्र था। उस ज़माने में कुछ पर्वतीय आरण्यक लोगों में आदिम जीवन के कुछ अवशेष कहीं-कहीं तब भी चले आ रहे थे, जिसके अनुसार स्त्रियाँ अपने पति के अतिरिक्त अन्य पुरुषों से भी यौन संबंध स्थापित कर सकती थी। एक बार उद्दालक ने अतिथि सत्कार में अपनी पत्नी को भी अर्पित कर दिया। श्वेतकेतु ने इस दूषित प्रथा का विरोध किया और विवाह की मर्यादा स्थापित की। महाभारत में इसका ज़िक्र मिलता है।

अतः मर्यादा तो यही है कि एक पति का एक पत्नी से संबंध हो। यह अलग बात है कि कहीं ऐयाशी के लिए और कहीं सामाजिक आवश्यकताओं अथवा अन्य कारणों से एक पुरुष का एकाधिक स्त्रियों से और एक स्त्री का अनेक पुरुषों (प्रायः सभी भाइयों) से विवाह का प्रचलन रहा है।

राजघरानों में विशेषकर कुछ ऐयाश राजाओं ने रखैलें रखी होती थीं। हरम बनाए होते थे। इनकी संतानों को भी वैधता प्राप्त थी। यद्यपि उन्हें राजा की संपत्ति का कोई हक़ नहीं मिलता था, तथापि उनका वंश और गोत्र पैतृक माना जाता था। हाँ, उन्हें संपत्ति का वह अधिकार ज़रूर मिलता था, जो राजा ने उनकी माँ को दिया होता था।

जीव विज्ञान के आधार पर अनेक शास्त्रकारों ने विवाह को कामसुख और संतानोत्पत्ति तक ही सीमित न रखकर, विवाह को मानव जाति के सातत्य को बनाए रखने का प्रधान साधन माना है। इस पहलू पर बल देते हुए अनेक अन्य प्रयोजनों का उल्लेख किया है, जैसे— पति-पत्नी में आपसी स्नेह, सहचारिता, प्रसूता के समय पत्नी की देखभाल, अपने तथा जीवनसाथी के जीवन यापन के लिए धन कमाना तथा साथ ही संतान के बड़ा होने तक उनकी देखभाल व पालन-पोषण करना आदि, क्योंकि इनके बग़ैर न तो आत्म संरक्षण होगा, न ही

अपनी जाति की सुरक्षा, बल्कि इनके बग़ैर मानव जाति का उन्मूलन हो जाएगा। अतः समाज में प्रचलित पारंपरिक, धार्मिक, सामाजिक रीति-रिवाजों व अन्य विधि-विधानों को स्वीकार करते हुए विवाह संपन्न करने की एक सुव्यवस्थित प्रथा बनाई गई।

हिंदू ग्रंथों के अनुसार आठ प्रकार के विवाह दर्शाए गए हैं– पहले प्रकार का विवाह 'ब्राह्म' विवाह कहलाता है, जिसमें अपनी सामर्थ्य अनुसार कन्या को अलंकृत करके वर को सौंपा जाता है। दूसरा 'देव' विवाह है, जिसमें पिता अपनी पुत्री को वज़नी ज़ेवरातों सहित पुरोहित को और फिर वह यजन का आयोजन करके उसे वर को सौंपता है। इस प्रकार का विवाह बीते ज़माने की बात है, जब हिंदुओं की दिनचर्या में यजन एक अनिवार्य अंग था। तीसरा है, 'आर्ष' विवाह, जिसमें वर से दो बैल अथवा गाय व बैल लेकर कन्या का विवाह कर दिया जाता है। चौथा 'प्राजापत्य' विवाह कहलाता है। इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण मंत्रों के द्विपदों का संबोधन कर पिता अपनी कन्या वर को सौंपता है। पाँचवाँ, 'आसुर' विवाह है, जिसमें धन लेकर कन्यादान किया जाता है। छठा 'गांधर्व' विवाह कहलाता है। यह प्रेम विवाह है। सातवाँ 'राक्षस' विवाह है। यह कन्या का बलपूर्वक अपहरण कर, किया जाने वाला विवाह है। आठवाँ विवाह 'पैशाच' विवाह कहलाता है, जिसमें चोरी से कन्या का अपहरण करना, सह-पलायन करना या शराब आदि नशे में उन्मत्त लड़की से बलात्कार करना होता है। उल्लेखनीय है कि पहले चार प्रकार के विवाह को अधिक मान्यता प्राप्त हुई है। स्थिति कुछ भी हो इस प्रकार के सभी विवाह प्राचीन काल से ही नागर व लोक संस्कृति में भी प्रचलन में रहे हैं और किसी न किसी प्रकार से आज की अत्याधुनिक और सभ्य माने जाने वाले समाज में भी पाए जाते हैं।

हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में जो लोक विवाह पद्धतियाँ प्रचलन में रही हैं या हैं, उनका उल्लेख इस संकलन में विभिन्न साहित्यकारों द्वारा किया गया है। यहाँ बहुपत्नी व बहुपति प्रथा भी रही है। आज भले ही हिंदू विवाह अधिनियम 1955 के लागू हो जाने से एक विवाह तय है, द्विविवाह अमान्य एवं दंडनीय है। यहाँ यह भी उल्लेख करना उचित है कि कुल्लू और लाहुल-स्पिति के जनजातीय रिवाजों का एक प्रकाशित दस्तावेज़ 'Rewaj-i-Am 1945-51', जिसमें यूँ तो नामकरण से मरण तक के संस्कारों का विवरण है, परंतु मूल रूप से विवाह के विभिन्न रूपों, विधवा विवाह आदि का उल्लेख है, जो लोक में मान्य रहा है।

वर्तमान संदर्भ में हिमाचल प्रदेश में अधिकांशतः ब्राह्म विवाह परंपरा विद्यमान है। कन्या या वर ढूँढना, जन्मकुंडली मिलान, विवाह की बात पक्की करना, मंगनी, विवाह का मुहूर्त निकालना, फिर तैयारियाँ, मामों व अतिथियों का आगमन, उबटन, मेहंदी, 'शांत' व 'तेल' जैसी रस्में, लोक गीतों-नृत्यों का माहौल बनना, बारात का प्रस्थान, अग्नि को साक्षी मानकर विवाह कराना, पुरोहित द्वारा विधि विधान से अधिकांश रस्में करवाना, कन्यादान तथा विवाह के विभिन्न पड़ावों में बारात के प्रस्थान करने पर दूल्हे के यहाँ महिलाओं द्वारा काम भावना आदि को लेकर स्वाँग रचाना (जहाँ पुरुषों का जाना वर्जित होता है), कन्या के यहाँ महिलाओं द्वारा बारातियों में शामिल वर पक्ष के विभिन्न रिश्तेदारों और यहाँ तक कि वर को भी गाकर मीठी गालियाँ देना तथा कई रस्मों में सालियों द्वारा वर से अठखेलियाँ करना जैसी अनेक रस्में शामिल

हैं। यह अलग बात है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में थोड़ा-बहुत अपने अंदाज़ में, अपने विश्वासों, रीति-रिवाजों के अनुसार किंचित अंतर भी मिलता है। रंगत अलग है, लेकिन लक्ष्य एक।

यहाँ यह इंगित करना समीचीन है कि किन्नौर व लाहुल क्षेत्र में जहाँ हिंदू और बौद्ध दोनों धर्मों तथा स्पिति में बौद्ध धर्म के समुदाय का बाहुल्य है, वहाँ विवाह संबंधी कुछ अनोखी परंपराएँ मिलती हैं। किन्नौर और स्पिति में 'छोटी शादी' का प्रचलन भी है और 'बड़ी शादी' का भी। छोटी शादी पैसे या पूरी तैयारी के अभाव में जहाँ तुरंत कर ली जाती है, वहाँ बड़ी शादी कुछ अरसे बाद, यहाँ तक कि कई वर्षों के बाद भी आयोजित होती है। बच्चे, जो बड़े हो चुके होते हैं, वे भी अपने माता-पिता की शादी में सहयोजित होते हैं। उल्लेखनीय है कि स्पिति में बारात के साथ दूल्हा शामिल नहीं होता, लेकिन उसके प्रतीक के रूप में एक बाण ले जाया जाता है और यह परंपरा सातवीं शताब्दी में तिब्बत के राजा स्रोंगचन गंपों के समय से चली आ रही है। किन्नौर में भी यह पाया गया है कि जब लड़का एवं लड़की दोनों पक्ष आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर हों तो शादी तय करने वाला मध्यस्थ व्यक्ति और उसका एक साथी लड़की के घर जाते हैं और उसे लेकर आ जाते हैं। ऐसी शादी में कोई रस्म नहीं निभाई जाती।

ज़िला शिमला के 'महासू' के नाम से अभिहित ऊपरी क्षेत्र में 'गाडर' नामक एक विवाह पद्धति में भी दूल्हा कन्या को व्याहने नहीं जाता, लेकिन निश्चित तिथि को पाँच-सात-नौ या ग्यारह लोग विशेष लग्न में कन्या के घर की ओर प्रस्थान करते हैं, जिसमें वर का छोटा भाई तथा कुल पुरोहित का शामिल होना आवश्यक होता है। वे कन्या को वर के घर ले आते हैं। वर और वधू द्वारा एक-दूसरे को गुड़ खिलाए जाने की रस्म के उपरांत विवाह संपन्न हो जाता है।

भारत में विवाह मात्र परिवार का ही नहीं, अपितु पूरे एक समुदाय का, यथा— पूरी बिरादरी और दोस्त-यारों आदि का आयोजन है। इसका एक बड़ा आकर्षण मामा की लब्ध प्रतिष्ठ भूमिका का होना है। ऐसा क्यों! मातृप्रधान परिवार में तो ऐसा समझ में आता है, लेकिन पितृप्रधान में भी संभवतः मातारूपी स्त्री को महत्त्व देते हुए उसके भाई अर्थात् वर-कन्या के मामा को प्यार, स्नेह व आदर के कारण प्रधानता दी गई है। मामा लड़की को वस्त्राभूषण देता है, मंडप में लाता है। आसाम में तो वह कन्या को कंधे पर उठाकर लाता है और आंध्रप्रदेश में बाँस की टोकरी में। गुजरात में मामा दुलहन को पीली साड़ी देता है, जिसे वह विवाह पूजन के अवसर पर पहनती है। तमिलनाडु में माला पहनने की रस्म के दौरान दूल्हे और दुलहन के मामे उन्हें माला सौंपते हैं और रस्म को पूरी करने के लिए आतिथेय बनते हैं। मातृवत वंश में, उदाहरणतः केरल के नेयर विवाह में दूल्हे के पाँव या तो पिता द्वारा या उसके समान ही आदर देते हुए मामा द्वारा धोए जाते हैं। बंगाली परंपरा में भी कहीं मामे द्वारा कन्या, वर को सौंपी जाती है। उड़िया परंपरा में भी विवाहोत्सव का पहला आमंत्रण कार्ड पुरी में कुल देवता जगन्नाथ मंदिर में और दूसरा आमंत्रण कार्ड दूल्हे और दुलहन के मामों को भेजा जाता है।

हिमाचल प्रदेश में भी मामा की भूमिका विशिष्ट है। कन्या के घर आगमन पर उसका पूरा स्वागत होता है। वह वस्त्राभूषण के साथ-साथ अवसरानुसार धाम भी देता है, ख़ूब ख़र्च करता है। जितना गुड़ डालो, उतना मीठा होता है। पैसा बहुत है तो आप विवाह जैसे मर्ज़ी

करो, धूमधाम से करो, फ़ाइव स्टार होटल में करो। आपका धन, आपकी इच्छा।

लोक में मामों द्वारा विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले ख़र्च और रस्मों के संदर्भ में कभी यह सोच अग्रणीय हो जाती है और दया आती है कि मामा ज़रूरी नहीं अमीर हो, अति ग़रीब भी तो हो सकता है। अतः क्योंकि आवश्यकता आविष्कार की जननी है, इसलिए ऐसा नहीं कि मामा द्वारा की जाने वाली रस्में जबरन धूमधाम से ही की जाएँ।

वैसे यहाँ यह उल्लेख करना भी समीचीन है कि हिमाचल के ज़िला सिरमौर की गिरिपार ब्राह्मण कल्याण समिति ने 20 सितंबर, 2014 को ग्वाली के भंगाठा गाँव में एक सम्मेलन आयोजित करके 118 गाँवों के प्रतिनिधियों की हामी से पुराने और ख़र्चीले रीति-रिवाजों को देखते हुए गिरिपार क्षेत्र में बारात में साठ से अधिक बाराती (यह संख्या भी ज़्यादा लगती है) और ग्यारह से अधिक गाड़ियाँ न ले जाने का निर्णय लिया तथा दहेज के लेन-देन पर भी पूर्व प्रतिबंध लगा दिया, जहाँ मामा की 'धाम' अथवा 'परोशा' (परोसना) प्रथा पर पहले से ही कई गाँवों में प्रतिबंध लगा रखा है। यूँ तो समय-समय पर दहेज व अन्य वैवाहिक ख़र्चों पर प्रतिबंध लगे हैं, लेकिन विशेष रूप से यह याद आता है कि बीसवीं सदी के आठवें दशक के मध्य में हमारे देश में कोई विशेष हिदायत थी कि शादियों में अधिक ख़र्च न किया जाए और तब एक बार किसी बारात के स्वागत के उपरांत प्रीतिभोज में आलू से बने विभिन्न सस्ते व्यंजन परोसे गए थे।

विवाहोत्सव में अनेक रिश्तेदार इकट्ठे होते हैं, विवाहोपरांत अनेक रिश्तेदार बनते हैं, जैसे— कुड़म-कुड़मिन, सास-ससुर, साला-सालियाँ, जेठ-जेठानियाँ, देवर-देवरानियाँ, मासड़-मासियाँ, फूफा-फूफियाँ, साढू और न जाने दूर-पार के कितने रिश्ते जुड़ जाते हैं।

कुछ भी कहो, विवाह संस्कार को अपने मूल उद्देश्यों के साथ-साथ रिश्तों की ख़ुशबू की उपमा भी दी जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

हाँ, तुलसी विवाह जैसी परंपराएँ तो भारतवर्ष में जगह-जगह प्रचलित होंगी, लेकिन हिमाचल प्रदेश में कन्याओं द्वारा 'रलि़ विवाह अथवा पूजन' के नाम से एक ऐसी अनूठी विवाह परंपरा उत्सव के रूप में निभाई जाती है। इसे बाल खेल भी कह सकते हैं या कोई अनुष्ठान भी। अस्तु, प्रस्तुत संकलन 'हिमाचल प्रदेश की लोक विवाह परंपरा' को विस्तार देते हुए इस संकलन में 'रलि़ विवाह' पर भी एक लेख शामिल किया गया है। साथ ही शामिल किया गया है, हिमाचल प्रदेश की विश्वविख्यात 'कांगड़ा लघु चित्रकला' शैली से उपजी 'चंबा रूमाल' शैली में विवाह अनुष्ठान को लेकर चित्रांकन से संबंधित एक लेख।

दो-एक पुराने लेखों को छोड़कर इस संकलन में प्रकाशित समस्त लेख व छायाचित्र हाल ही में साहित्यकारों व छाया चित्रकारों से अनुरोध करके यथाशीघ्र मँगवाए गए और उन सभी ने इन्हें तुरंत भेज कर जो सहयोग अकादमी को प्रदान किया है, उसके लिए हम उनके तहे दिल से आभारी हैं। आशा है यह शोध सामग्री अनुसंधायकों और पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

अशोक हंस

किन्नौर जनपद की विवाह परंपरा

● डॉ. अश्विनी कुमार

हिमाचल की इस पावन भूमि पर हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों से घिरा किन्नौर ज़िला एक अत्यंत रमणीय क्षेत्र है। यहाँ का कुछ क्षेत्र वनस्पति विहीन है, जो इस क्षेत्र को अलग ही पहचान देता है। सतलुज नदी इस क्षेत्र को दो भागों में बाँटती है। यहाँ का मौसम वर्ष भर सुहावना रहता है। यह क्षेत्र चीन से लगता भारत का सीमावर्ती क्षेत्र है, जो अपनी सांस्कृतिक, सामाजिक तथा धार्मिक पहचान को सँजोकर रखे हुए है। शैल-शृंगों के मध्य मार्ग बनाती हुई, कल-कल करती सतलुज तथा उसकी सहायक नदियाँ, नदियों के किनारे ऊँची-ऊँची ढलानों पर बसे हुए किन्नर लोग इस क्षेत्र की विशेषता है। किन्नरों का भारतीय संस्कृति में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इन लोगों को भारतीय वाङ्मय में उनकी सरलता, संगीत प्रियता एवं अनुपम सौंदर्य के कारण आर्धदैविक संज्ञा प्राप्त है। महाभारत के दिग्विजय पर्व में अर्जुन का किन्नरों के देश में जाना वर्णित है। अर्जुन धवलगिरि पर्वत को लाँघकर द्रुमपुत्र के द्वारा सुरक्षित किंपुरुष देश में गए, जहाँ किन्नरों का निवास था।

किन्नौर में प्रचलित विवाह संस्कार स्पीति को छोड़कर प्रदेश के अन्य क्षेत्रों से बिल्कुल भिन्न है। यहाँ पर अरसा पहले तक बहुपति प्रथा प्रचलित थी। कुछ विद्वानों ने इसको पांडवों का अनुकरण बताया है, परंतु ऐसा नहीं है। यहाँ के बुज़ुर्ग लोग बताते हैं कि यह प्रथा तिब्बत से अनुकरण की गई है, क्योंकि वहाँ इसका प्रचलन था और इस क्षेत्र के लोग वहाँ व्यापार करने जाते थे। वहीं से इस प्रथा को इस क्षेत्र के लोगों ने अपना लिया, जो अब समाप्ति के कगार पर है। यहाँ पर इस प्रथा को अपनाने का एक कारण यह भी रहा कि इससे परिवार टूटने से बच जाता था और सभी लोग मिलकर रहते थे, जिस कारण ज़मीन के बँटवारे की नौबत भी नहीं आती थी। बहुपति प्रथा के चलते इस क्षेत्र में बहुत सी लड़कियाँ कुँवारी रह जाती थीं। शायद यही कारण था कि यहाँ लड़कियों के कुँवारी रह जाने को बुरा नहीं माना जाता था। उल्लेखनीय है कि पूह गाँव में यदि किसी कुँवारी लड़की के बच्चा पैदा हो जाए तो उससे यह नहीं पूछा जाता था कि बच्चे का बाप कौन है और न ही किसी अन्य तरह का कोई प्रश्न, बल्कि वहाँ के ग्राम्य देवता, जिसका नाम तोमरङ् है, का नाम बच्चे के बाप के स्थान पर रख दिया जाता था।

डॉ. बंशी राम शर्मा ने किन्नौर में विवाह के पाँच प्रकार बताए हैं, जो इस प्रकार से

हैं– 'जनेकङ् अथवा जनेटङ्' अर्थात् बड़ा अथवा सामान्य प्रकार का विवाह, 'न्योटङ् मीरङ्' अर्थात् दो व्यक्तियों द्वारा बारात के रूप में जाकर संपन्न किया गया विवाह, 'दमचलशिश' अर्थात् प्रेम विवाह, 'दारोश डबडब' अर्थात् बलपूर्वक किया गया विवाह (इसमें दुलहिन को बलपूर्वक भगा लिया जाता है) तथा 'हारी' अर्थात् विवाहिता से तलाक हो जाने के पश्चात् पुनर्विवाह, जिसे 'हार' भी कहा जाता है। इसके अंतर्गत अविवाहित स्त्री के साथ विवाह संपन्न नहीं होता।

डॉ. बंशी राम शर्मा ने विवाह के 'हारी' प्रकार का जो वर्णन किया है, उसकी वास्तविकता इससे कुछ भिन्न है, जिसका विस्तृत उल्लेख आगे किया जाएगा।

दरअसल किन्नौर में प्रचलित विवाह के भेदों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है– छोटी शादी, बड़ी शादी तथा हारी या हार। विस्तृत उल्लेख निम्न प्रकार से है :–

छोटी शादी

छोटी शादी किन्नौर में प्रचलित विवाह का एक ऐसा रूप है, जिसमें लड़का बारात लेकर लड़की के घर नहीं जाता, केवल पूह मंडल में छोटी-सी बारात ले जाने की परंपरा है। इस प्रकार की शादी में केवल अपने सगे-संबंधियों को ही बुलाया जाता है। इसमें सभी परंपराओं का निर्वहन भी नहीं किया जाता। पूरे किन्नौर में पहले प्रायः छोटी शादी ही होती है। इस प्रकार के विवाह के भी चार रूप हैं :–

न्योटङ् : पूह मंडल में इसे 'जिङ-दू' कहते हैं। इस प्रकार के विवाह में यह देखा गया है कि लड़के-लड़की के रिश्तेदार विवाह संबंध जोड़ने का काम करते हैं। कई बार लड़के के माता-पिता भी किसी लड़की का चुनाव कर लेते हैं। तब यदि लड़की के माता-पिता भी विवाह के लिए मान जाएँ तो विवाह की तिथि निश्चित की जाती है और यह भी तय किया जाता है कि 'माज़ोमी' (मध्यस्थ) किसे बनाना है। तिथि का अंतिम निर्धारण गाँव के देवता द्वारा किया जाता है। जो तिथि माता-पिता द्वारा निश्चित की जाती है, उसे ग्राम्य देवता को जाकर बताया जाता है। यदि ग्राम्य देव उस तिथि को मान ले तो वह निश्चित हो जाती है अन्यथा ग्राम्य देवता अपने 'ग्रोक्च' (माली) के माध्यम से विवाह की तिथि बतलाता है। निश्चित तिथि को 'माज़ोमी' तथा उसके साथ दो-चार और व्यक्ति लड़की के घर जाते हैं और रात को वहाँ ठहर कर दूसरे दिन लड़की को लेकर आ जाते हैं। इसमें न तो ग्राम्य देवता को घर में बुलाया जाता है और न ही सभी रिश्तेदारों को। वर-वधू ग्राम्य देवता के मंदिर में जाकर आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

पूह मंडल में इस प्रकार की शादी में लड़की माँगने के लिए शुभ दिन देखा जाता है। लड़की वालों को इसकी सूचना पहले ही दे दी जाती है, फिर लड़के का पिता, मामा तथा नज़दीकी चार-पाँच व्यक्ति सज-धजकर लड़की के घर जाते हैं। वे अपने साथ मिट्टी के एक बर्तन, जिसके ऊपर मक्खन के टुकड़े रखे होते हैं तथा जिसमें 'खतग' (सफ़ेद वस्त्र, जिसे माला के स्थान पर गले में पहनाया जाता है) बँधा होता है, में छंग (घर में निकाली गई विशेष प्रकार की शराब) ले जाते हैं। इसको 'नामारेया' कहा जाता है। लड़की के घर पहुँचकर उसके घर वालों

को छंग दी जाती है और उनसे लड़की माँगी जाती है। लड़की वाले अपने नज़दीक रहने वाले रिश्तेदारों को आमंत्रित करते हैं और वे सब मिलकर लड़की को देने या न देने का फ़ैसला करते हैं। यदि लड़की देने की बात तय हो जाती है तो विवाह का मुहूर्त निकाला जाता है। बौद्ध धर्म का प्रभाव होने के कारण यहाँ विवाह का मुहूर्त गाँव का लामा निकालता है। मंगनी के दिन ही लड़की को गहने दे दिए जाते हैं। सोने-चाँदी के ये गहने मूँगे और फिरोज़े जड़ित होते हैं। शादी के दिन लड़का बारात लेकर लड़की के घर जाता है। बारात में अधिक लोग शामिल नहीं होते, केवल गिने-चुने लगभग पंद्रह के आस-पास रिश्तेदार ही होते हैं। लड़की (दुलहिन) के घर पहुँचकर उसके सभी रिश्तेदारों को लड़का (वर) 'खतग' पहनाता है और पैसे देता है, साथ में माथा भी टेकता है। यह पहले निश्चित होता है कि बारात लड़की के घर कितनी देर ठहरेगी और किस समय वापस लौटेगी।

छोटी शादी में जिस दिन दूल्हे की बारात वापिस आती है, उसके अगले दिन एक रस्म निभाई जाती है, जिसे कल्पा मंडल में 'बीतोपोनो', निचार मंडल में 'जिलोजिपो' तथा पूह मंडल में 'कम्ज़ा' कहा जाता है। इस दिन दुलहिन के माता-पिता एवं रिश्तेदार भी दूल्हे के घर आमंत्रित होते हैं। यह रस्म इकरारनामा या शपथ-पत्र की होती है। कल्पा और निचार मंडल में इस रस्म के अंतर्गत कुछ जायदाद (एक कमरा या नक़दी और खेत-खलिहान) दुलहिन के नाम कर दी जाती है तथा पूह मंडल में इस रस्म के समय यह तय कर लिया जाता है कि यदि बच्चे न हों तो लड़का दूसरी शादी कर सकता है। ऐसी स्थिति में पहली पत्नी को गुज़ारे के लिए एक कमरा तथा कुछ खाने-पीने का सामान रखने के लिए 'शिङ्मङ्' (लकड़ी की पेटी) तथा एक-दो खेत दिए जाने का प्रावधान होता है, जिन्हें 'मजिङ् छिङा' कहते हैं।

स्पीति की सीमा के साथ लगते पूह मंडल के कुछ गाँवों में इस प्रकार की शादी में कुछ भिन्नता पाई जाती है। जब लड़के वाले किसी लड़की के घर उसे माँगने के लिए जाते हैं तो उस समय गाँव का कोई वरिष्ठ राजपूत, लंबरदार या प्रधान, लड़के का पिता तथा एक-दो अन्य व्यक्ति ही शामिल होते हैं। ये लोग अपने साथ 'खतग' और घर में निकाली गई पाँच लीटर शराब लेकर जाते हैं। लड़की वाले अपने निकट संबंधियों को बुलाकर रिश्ते की बातचीत करते हैं। यदि लड़की वाले मान जाते हैं तो गाँव का लामा शादी की तिथि निकालता है। जो लोग शादी या मंगनी की बात करने लड़की के घर गए होते हैं, बाद में भी वही लोग निश्चित की गई तिथि को लड़की के घर जाते हैं और लड़की को लेकर आ जाते हैं। ये लोग बड़ी शादी में सबसे अलग दिखते हैं, जिसका उल्लेख आगे किया गया है। कई बार ऐसा भी होता है कि वे बिना मुहूर्त के अथवा मंगनी वाले दिन ही लड़की को लेकर आ जाते हैं। लेकिन तब दुलहिन को किसी दूसरे के घर में रखते हैं। बाद में लामा पोथी देखकर वधू प्रवेश का दिन और समय निकालता है। तत्पश्चात् उसे अपने घर लाया जाता है।

दारोश डबडब अथवा ख्युब चुरनेट : पूह मंडल में इसे 'नामाकुया' कहा जाता है। इसका अर्थ होता है— चोरी करना या हरण करना। यह विवाह अपने आप में रोमांचक विवाह का एक नमूना है। इस विवाह को भी दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। प्रथम श्रेणी में लड़का लड़की

के माता-पिता को सूचित किए बिना लड़की का हरण कर लेता है। दूसरी श्रेणी, जो वर्तमान समय में अधिक प्रचलित है, में लड़की के माता-पिता को सूचित करके लड़की का अपहरण किया जाता है। इन दोनों ही श्रेणियों में जाति एक समान होनी चाहिए। उक्त प्रथम श्रेणी में लड़का दो माज़ोमी (मध्यस्थ) का चुनाव कर लेता है और वह अपने कुछ मित्रों के साथ लड़की के गाँव चला जाता है तथा इस ताक में रहता है कि लड़की किस समय घर में अकेली हो अथवा घर से बाहर अकेली निकले। इस कार्य में कई बार लड़की की सखी की सहायता ली जाती है, जो उसे किसी बहाने घर से बाहर निकालती है। तब, जब वह अकेली घर से कहीं दूर निकलती है तो लड़का अपने मित्रों के साथ उसके पीछे-पीछे जाता है और उसे सबसे पहले स्पर्श करता है। उसके पश्चात् लड़के के साथी उसे उठाकर जैसे-तैसे (वर्तमान संदर्भ में गाड़ी में) ले आते हैं। ठीक उसी समय माज़ोमी लड़की के घर पहुँच जाते हैं और उसके माता-पिता को सूचना देते हैं कि हमारे लड़के ने आपकी लड़की का हरण कर लिया है, अतः हम आपकी सहमति लेने आए हैं। इस स्थिति में कई बार बड़ा विरोध होता है और बहस भी होती है। प्रायः देखा गया है कि अंततः लड़की के माता-पिता उस रिश्ते को स्वीकार कर लेते हैं। 'माज़ोमी' 'कोरङ' (शराब) की एक बोतल तथा एक से पाँच हज़ार तक की नक़दी लेकर गए होते हैं, जिन्हें वे वहाँ पहुँचते ही लड़की के माता-पिता के सामने रख देते हैं। जब लड़की के माता-पिता मान जाते हैं तो वे नक़दी उठाकर गिनते हैं। यदि उन्हें नक़दी कम लगे तो और पैसे की माँग करते हैं। कई बार लड़की के माता-पिता बहुत अधिक रुपयों की माँग कर लेते हैं, जो पूरी करनी पड़ती है। रिश्ता स्वीकृति की स्थिति में लड़की के माता-पिता 'माज़ोमी' द्वारा लाई गई राशि रख लेते हैं और 'कोरङ' की बोतल की अपने कुल देवता के सामने पूजा करते हैं। उधर जब लड़की को लेकर लड़का अपने गाँव पहुँचता है तो उसे सीधे अपने घर नहीं ले जाता, बल्कि किसी सगे-संबंधी के घर रखता है। यदि 'माज़ोमी' का घर पास हो तो लड़की को उसी के घर में रखा जाता है। पूह एवं उसके आस-पास के गाँवों में लड़की को लड़के के मामा के घर में रखने का रिवाज है, जिसे 'नङलालिंज़ा' कहते हैं। लड़की को जिस घर में रखा जाता है, उसे वहीं से सजा-सँवारकर दूल्हे के घर उस समय लाते हैं, जब लड़की का पिता एवं सगे-संबंधी लड़के के घर खाना खाने आते हैं। जब लड़की का पिता लड़के के घर के दरवाज़े के पास पहुँचता है, तब लड़की को वहाँ लाया जाता है। 'माज़ोमी' लड़की का हाथ पकड़कर उसे घर के अंदर ले जाता है। लड़की के पिता और सगे-संबंधी को अंदर बैठाया जाता है। लड़की की अपने पिता और संबंधियों से बातचीत के बाद उन्हें भोजन कराया जाता है।

इस प्रकार के विवाह में यदि लड़के वाले लड़की को मनाने में असफल हो जाते हैं तो उसे पूरे सम्मान के साथ माता-पिता के यहाँ पहुँचाना पड़ता है, नहीं तो कानूनी कार्यवाही भी हो सकती है।

दम चलशिश अथवा बाग्याशीश : इसका अभिप्राय है प्रेम विवाह अथवा भागकर शादी करना। प्रेम विवाह का प्रचलन वर्तमान समय में बहुत बढ़ गया है। इसमें अंतर्जातीय विवाह अधिक हो रहे हैं। इसमें कई बार लड़के व लड़की दोनों को सगे-संबंधियों या समाज का विरोध झेलना

पड़ता है। ऐसे विवाह में भी जब लड़का लड़की को ले आता है तो 'माज़ोमी' लड़की के घर जाते हैं। यदि लड़की के माता-पिता न मानें तो 'माज़ोमी' वापिस आ जाते हैं, क्योंकि लड़का-लड़की एक-दूसरे से प्यार करते हैं, इसलिए शादी तो हो ही जाती है। यदि लड़की के माता-पिता मान जाएँ तो रीति रिवाज के अनुसार वही रस्में निभाई जाती हैं, जो हरण विवाह और शास्त्रोक्त विवाह में निभाई जाती हैं।

न्योटङ्माझोमिरङ् : इसका अर्थ है– युगल बिचौलिए संग। इसे 'न्योटङ् बरमीरङ्' भी कहते हैं। इस प्रकार की शादी तब होती है, जब लड़का एवं लड़की दोनों पक्ष आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर हों। इसमें माज़ोमी और उसका एक साथी, जिसे 'मङडोनो क्युपचा' कहते हैं, लड़की के घर जाते हैं और उसे लेकर आ जाते हैं। लड़की के घर से कोई अन्य साथ नहीं आता। इस प्रकार की शादी में कोई भी रस्म नहीं निभाई जाती। ऐसी शादियाँ बहुत कम होती हैं।

बड़ी शादी

छोटी शादी के जिन प्रकारों का वर्णन ऊपर किया गया है, उन्हीं का एक रूप बड़ी शादी है। छोटी शादी चाहे जिस किसी भी रूप में हुई हो, उसको समाज में प्रतिष्ठित करने के लिए सगे-संबंधियों के साथ अपने परिचितों एवं गाँव वालों को भी सम्मिलित रूप से प्रीतिभोज देकर बड़ी शादी की जाती है। इसमें शादी की सभी परंपराओं को निभाया जाता है। यह शादी छोटी शादी के चार-पाँच महीने से एक-दो साल के बीच की जाती है। परंतु देखा गया है कि कभी-कभी छोटी शादी के दस-पंद्रह वर्ष बाद भी बड़ी शादी की जाती है। उस समय छोटी शादी कर चुके माँ-बाप के बच्चे भी बड़े हो गए होते हैं, जो इस बड़ी शादी में पूरा काम करते हैं और बारात में भी जाते हैं। इसे किन्नौरी समाज में बुरा नहीं माना जाता। बड़ी शादी पूरी धूम-धाम के साथ की जाती है। इसमें शादी की सभी रस्में, जिनमें विवाह का मुहूर्त, शादी की तैयारी, मामा का स्वागत, देवता का आगमन, वर को सजाना, बारात प्रस्थान, मार्ग में पूजा करना, लड़की के घर में बारात का स्वागत, बारात का घर के अंदर प्रवेश तथा लड़की के घर में होने वाली विविध रस्में, दुलहिन को सजाना, दुलहिन को दूल्हे के पास ले जाना, विदाई से पूर्व की रस्में तथा विदाई, मार्ग में पूजा करना, मार्ग में बारात का स्वागत, वधू प्रवेश तथा दुलहिन द्वारा 'बैल्डङ्' या 'थोदू', 'गोरपश्मो' और 'फगू-लोगू' या 'दलोच' की रस्में निभाई जाती हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित प्रकार से है :–

संपूर्ण किन्नौरी समाज में बड़ी शादी के लिए सर्वप्रथम मुहूर्त निकलवाया जाता है, जिसकी प्रक्रिया लगभग एक समान है। निचले किन्नौर में बड़ी शादी का मुहूर्त देवता द्वारा निकाला जाता है। कई बार घर के लोग भी अपनी सुविधानुसार कोई दिन देख लेते हैं, तदुपरांत देवता की अनुमति ली जाती है। यदि तय किया दिन देवता को स्वीकार्य न हो तो देवता द्वारा स्वयं दिन निर्धारित किया जाता है, जो सभी को मानना पड़ता है और उसी समय देवता को शादी का निमंत्रण भी दे दिया जाता है।

ऊपरी किन्नौर अर्थात् पूह मंडल में शादी की तिथि गाँव का लामा तय करता है। साथ ही लामा यह भी निश्चित करता है कि शादी में लड़के के लिए किस प्रकार का कपड़ा और किस

रंग का घोड़ा होना चाहिए, वधू को पहला खाना क्या देना है और वह क्या पहनेगी इत्यादि।

कल्पा तथा निचार मंडल में शादी के दिन घर में देवता को लाना आवश्यक है। पूह मंडल बौद्ध धर्मानुयायी है। अतः वहाँ पर देवता का प्रश्न ही नहीं। वहाँ पर केवल लामा ही शादी में सर्वोपरि होता है।

कल्पा एवं निचार में बारात प्रस्थान का कोई समय निश्चित नहीं होता, परंतु पूह मंडल में लामा पहले ही यह बता देता है कि बारात को किस समय प्रस्थान करना है और किस समय लड़की के घर में प्रवेश करना है। जब बारात प्रस्थान करती है तो दूल्हा सबसे पीछे चलता है। यह इसलिए कि कोई पीछे न छूट जाए और यदि कोई रास्ते में रूठ जाए तो उसे मनाना भी पड़ता है।

पूह मंडल में जब बारात प्रस्थान करती है तो सबसे आगे लामा चलता है और उसके पीछे दूल्हे की सखियाँ, जो कई बार दुलहिन की भी सखियाँ होती हैं। इनकी संख्या प्रायः एक या दो होती है। सखी को 'फक्ठिद्-मा' कहते हैं। फक्ठिद्-मा का चयन लामा करता है। इनकी आयु और राशि दूल्हा और दुलहिन दोनों के साथ मिलनी चाहिए। एक सार्थी भी होता है, जिसे 'फक्ठिदा' कहते हैं। इसका चयन भी लामा ही करता है। फक्ठिद्-मा के हाथ में मक्खन से बनी एक मूर्ति जैसी होती है, जिसे 'डङ्या' कहते हैं। लामा के हाथ में भी बौद्ध धर्म के प्रतीक के रूप में एक चित्र रहता है, जिसके ऊपर 'खतग' लगा होता है। स्पीति के सीमावर्ती गाँवों— चाँगो, शलखर आदि में जो लोग 'माज़ोमी' होते हैं, वे बड़ी शादी में सबसे अलग दीखते हैं। उनका पहनावा अन्य लोगों से भिन्न होता है। उस दिन जो विशेष कपड़े उन लोगों द्वारा पहने जाते हैं, उन्हें 'होशेद्' कहा जाता है।

कल्पा तथा निचार मंडल में जब बारात घर से निकलती है तो कुछ दूर जाने पर रोटी और 'घंटी' या 'छंग' (शराब) से पूजा की जाती है। पूजा देवता का 'ग्रोक्च' (माली) करता है। यदि वह साथ न हो तो 'माज़ोमी' करता है। जब बारात किसी पुल के पास पहुँचती है तो वहाँ पर भी पूजा की जाती है। यहाँ पर रोटी, शराब और चावलों के साथ पूजा की जाती है तथा एक खड्डू (मेढ़े) की बलि दी जाती है।

पूह मंडल में घर से बारात निकलने पर जहाँ देवता का थान होता है, सर्वप्रथम वहाँ पर पूजा की जाती है। यह पूजा रोटी, पोल्टू, सत्तू, छंग इत्यादि से की जाती है। कुछ हिस्सा अमानुषी शक्तियों के नाम पर चारों दिशाओं में फेंका जाता है। जब कोई पुल आए तो वहाँ भी इसी प्रकार से पूजा की जाती है।

कल्पा तथा निचार मंडल में जब बारात लड़की के घर पहुँचती है तो बारात के स्वागत के लिए स्वागत द्वार के पास उस गाँव के देवता का गूर (माली) तथा कुछ लोग खड़े होते हैं। गूर थोड़ी-बहुत झाड़-फूँक करके और उनके ऊपर काँटा रखकर उन्हें घर के अंदर प्रवेश कराता है। एक परात में जलता हुआ कोयला डालकर उसके ऊपर लाल मिर्च डाली जाती है, ताकि उससे उठने वाले धुएँ से बारातियों को खाँसी आए, जिससे यदि उनके साथ कोई प्रेतात्मा अथवा भूत-प्रेत आ रहा हो तो वह वहीं से लौट जाए।

पूह मंडल में जब बारात लड़की के घर पहुँचती है तो दरवाज़े पर कुछ औरतें और लड़कियाँ स्वागत के लिए खड़ी होती हैं। लड़कियों के हाथ में पूजा करने के लिए पोल्टू, दही, 'कोरङ्' की बोतल तथा एक धूपदानी होती है। कोरङ की बोतल पर मक्खन लगा होता है। वर पक्ष का लामा कोरङ तथा धूपदानी से द्वार पर कुछ देर पूजा करता है और लड़कियों के माथे के बायीं ओर कान के पास मक्खन लगाता है।

स्पीति के सीमावर्ती गाँवों में जब लड़की के घर बारात पहुँचती है तो साथ आए गाने वाले पाँच लड़के और लड़की की ओर से गाने वाली पाँच लड़कियाँ स्वागतद्वार के पास गाना गाती हैं। लड़कियाँ लड़कों से प्रश्न करती हैं और वे प्रश्नों के उत्तर देते हैं। उसके पश्चात् बारातियों को 'खतग' पहनाया जाता है तथा दूध व छंग से उनका स्वागत किया जाता है।

दूसरे दिन धाम के बाद बारात के लौटने की तैयारी शुरू हो जाती है। दुलहिन की सहेलियाँ उसे कहीं छुपा देती हैं और उसका पता तब तक नहीं बताती हैं, जब तक उनको मुँह माँगी रक़म न मिल जाए। पूह मंडल में जो सखियाँ दुलहिन को छिपाती हैं, उन्हें 'रोक्-अंदा' कहते हैं।

जब लड़की तैयार हो जाती है तो 'माज़ोमी' अथवा 'माज़ड्मी' उसे लेने वहाँ जाता है, जहाँ वह तैयार होकर बैठी होती है। इस समय भी उसकी सखियाँ दरवाज़ा बंद कर देती हैं और मुँह-माँगी रक़म मिलने पर ही दरवाज़ा खोलती हैं। इस रस्म को निचले किन्नौर में 'कोनेसङ्' और ऊपरी किन्नौर में 'नामाबच्चा' कहा जाता है। जब दुलहिन को दूल्हे के पास लाया जाता है तो अन्य सगे-संबंधी भी वहीं पर आ जाते हैं। ये यहाँ दुलहिन को अपनी सामर्थ्य अनुसार कुछ न कुछ देते हैं, जैसे– पैसे, गहना, बर्तन आदि। सबसे पहले लड़की के माँ-बाप, चाचे-ताए, मामे आदि शगुन देते हैं, तत्पश्चात् अन्य लोग। इसे कल्पा और निचार मंडल में 'उदानङ्' तथा पूह मंडल में 'जोङ' कहा जाता है। स्पीति के सीमावर्ती गाँवों में इसे 'जों' कहते हैं। लड़की को विदा करने से पूर्व एक गाने के साथ तीन फेर वाला 'माला नृत्य' किया जाता है। स्पीति के सीमावर्ती गाँवों में जो लड़कियाँ दुलहिन के साथ जाती हैं, उन्हें 'योङो' कहते हैं।

निचले किन्नौर में जब बारात तोरण द्वार (गेट) के पास पहुँचती है तो वहाँ उसका स्वागत करने के लिए लड़कियाँ फूल इत्यादि लेकर खड़ी रहती हैं। उस समय एक खड्डू (मेढ़े) की बलि दी जाती है। 'माज़ोमी' लड़की का हाथ पकड़कर सबसे आगे चलता है।

घर के मुख्य द्वार पर दूल्हे की माँ अपने किसी रिश्तेदार के साथ दुलहिन का स्वागत करने व गृह प्रवेश कराने के लिए खड़ी होती है। उसके हाथ में गेहूँ या जौ के दाने से भरी एक थाली होती है, जिनके बीच में प्रज्वलित दीया सजा होता है। वह दुलहिन की आरती उतारती है और थाली को उसके घुटनों के नीचे चारों ओर घुमाती है। उसके पश्चात् वे दोनों थाली को पकड़कर घर में प्रवेश करती हैं।

पूह मंडल में जब दरवाज़े के पास लामा पूजा करके हट जाता है तो 'फक्ठिदा' (साथी) दुलहिन को अपनी पीठ पर उठा लेता है। दुलहिन को इस समय लाल शाल पहनाई जाती है। जब दुलहिन को पीठ पर उठाया जाता है तो वह दरवाज़े के ऊपर तीन अलग-अलग जगहों

पर जौ का आटा लगाती है। यदि वह आटा अगले दिन तक टिका रहे तो इसे सौभाग्यशाली माना जाता है।

स्पीति के सीमावर्ती गाँवों में जो पाँच लोग माज़ोमी होते हैं, वही दुलहिन को अंदर लेकर जाते हैं और उसे बैठक में बैठी उसकी सास के साथ बिठाते हैं। अंदर आकर जब सभी लोगों को चाय-पानी दे दिया जाता है तो दुलहिन द्वारा एक रस्म निभाई जाती है, जिसे निचले किन्नौर में 'रिश्ता बदलना' कहा जाता है, जबकि ऊपरी किन्नौर में इसे 'बीतोगिरजा' कहते हैं।

जिस दिन दुलहिन को ब्याह कर लाया जाता है, उस दिन पूरी रात गाना-बजाना चला रहता है। दूसरे दिन एक रस्म निभाई जाती है, जिसे निचले किन्नौर में 'बैल्डङ्' और ऊपरी किन्नौर में 'थोद्' कहते हैं। इसके साथ-साथ एक रस्म और होती है, जिसे 'बीतोपोनो' कहते हैं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि बीतोपोनो की रस्म छोटी शादी में भी निभाई जाती है। 'बैल्डङ्' में लोग दूल्हे को रुपये, उपहार, कपड़े आदि देते हैं। इसके लिए एक खुले स्थान पर वर-वधू, दूल्हे के माता-पिता व सगे-संबंधी बैठते हैं। 'बैल्डङ्' रस्म प्रायः दोपहर के बाद होती है। निचले किन्नौर में लड़के को सर्वप्रथम उसका मामा पाग (पगड़ी) बाँधता है और पैसे देता है। तदुपरांत अन्य सगे-संबंधी तथा गाँव के लोग शगुन देते हैं।

पूह मंडल में 'थोद्' की रस्म आँगन या घर की छत पर निभाई जाती है। सबसे पहले दूल्हे का मामा उसे पगड़ी पहनाता है। उसके बाद बहन शगुन लगाती है और फिर अन्य लोग। स्पीति के सीमावर्ती गाँवों में मामा द्वारा पाग नहीं बाँधी जाती है, शेष कार्य एक समान ही हैं।

हार अथवा हारी

किन्नौर में प्रचलित शादियों में यह एक अपनी ही तरह की शादी है, जिसमें यदि किसी लड़की के माँ-बाप ने उसकी शादी किसी ऐसे लड़के के साथ कर दी, जो उसे पसंद न हो और बाद में उसे कोई दूसरा लड़का पसंद आ जाए तो वह उससे शादी कर लेती है। इसकी सूचना वह पहले ही अपने पूर्व पति को दे देती है। इसमें लड़की जिस दूसरे लड़के के साथ शादी करती है, वह पहले वाले पति को उसकी शादी पर ख़र्च हुई सारी राशि को अदा करता है। इस शादी को भी पूरा सम्मान दिया जाता है।

उल्लेखनीय है कि यहाँ के लोग भेड़-बकरी पालन व्यवसाय के संबंध में हिमाचल तथा तिब्बत के क्षेत्रों में आते-जाते रहे हैं, जिस कारण यहाँ के आदिम रीति-रिवाजों और विवाह आदि संस्कारों पर हिंदू तथा बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ता गया, जिसका वर्णन निम्न प्रकार से है :–

हिंदू धर्म का प्रभाव : प्राचीन समय में किन्नर क्षेत्र की महिलाएँ अपने माथे पर न तो किसी प्रकार की बिंदी लगाती थीं और न ही सिंदूर का तिलक, परंतु वर्तमान समय में निचले किन्नौर में इनका प्रचलन आरंभ हो गया है। साथ ही महिलाएँ वर्तमान में माँग भरने लगी हैं। ऊपरी किन्नौर में यह प्रथा नाममात्र की है।

वर्तमान समय में शादी के अवसर पर दुलहिन हाथ और पाँव में मेहंदी लगाती है, जो हिंदू धर्म का ही प्रभाव है। कहीं-कहीं दूल्हा भी शादी के अवसर पर मेहंदी लगाता है। निचले

किन्नौर में विवाह के अवसर पर दूल्हा अब सेहरा लगाता है, जो हिंदू धर्म का ही प्रभाव है, जबकि यहाँ पहले पगड़ी बाँधी जाती थी। शादी के अवसर पर दूल्हा पारंपरिक पोशाक पहनता था, लेकिन वर्तमान समय में निचले किन्नौर में पैंट-कोट का प्रचलन आरंभ हो गया है।

बौद्ध धर्म का प्रभाव : बौद्ध धर्म का प्रभाव ऊपरी किन्नौर में अधिक है। निचले किन्नौर में इसका प्रभाव नाममात्र का ही है। ऊपरी किन्नौर में विवाह के अवसर पर बौद्ध धर्म के जो प्रभाव देखने को मिलते हैं, वे इस प्रकार से हैं :–

जैसा कि अन्यत्र कहा गया है विवाह का मुहूर्त लामा निकालता है और वही यह भी बताता है कि दूल्हे के लिए किस रंग का घोड़ा होना चाहिए। वह बारात के साथ जाता है। यदि बारात घोड़ों पर जा रही हो तो सबसे पहले घोड़े पर लामा ही चढ़ता है और सबसे आगे भी वही होता है। रास्ते में देवता के थान पर पूजा भी लामा ही करता है।

विवाह संबंधी कुछ अन्य सांस्कृतिक शब्दावली

1. दुलहिन की ओर से जो लोग आते हैं, उन्हें 'ज़ानेया' कहते हैं।
2. 'बैल्डङ्' या 'थोद्' के पश्चात् जब सभी चले जाते हैं तो लड़के के कुछ क़रीबी रिश्तेदार उस दिन वहीं रहते हैं। इन्हें 'असपने' कहा जाता है।
3. दुलहिन की सखी को निचले किन्नौर में 'तेम्म कोनेस' कहते हैं।
4. पुल पार करने के लिए दुलहिन पक्ष के पुरुष 'माज़ोमी' से पैसे लेते हैं, जिन्हें बाद में कुछ और पैसे डालकर दुलहिन के 'उदानङ' में दिया जाता है।
5. तीन फेर वाले 'माला नृत्य' के समय पूजा की जाती है, जिसे 'हुरकोरङ' कहते हैं।
6. पुल के पास जो खड्डू (मेढ़ा) काटा जाता है, उसको 'छमखाच़' कहते हैं।
7. दुलहिन जब तोरण लाँघती है तो उस समय खड्डू काटते हैं, जिसे 'ज़णेश आएस' कहते हैं।
8. 'बैल्डङ्' या 'थोद्' के बाद जब दुलहिन पक्ष के लोग अपने घर वापिस जाते हैं तो वे उस रात 'माज़ोमी' के घर ठहरते हैं। माज़ोमी जो खाना उन्हें खिलाता है, उसे 'मयटकङ जामू' कहा जाता है। इसका ख़र्च वर पक्ष का होता है। अब यह प्रथा कुछ क्षेत्रों में ही रह गई है।
9. 'उदानङ' का जो पैसा इकट्ठा होता है, वह 'माज़ोमी' को दिया जाता है। इस पैसे को 'माज़ोमी' एक साल तक ख़र्च कर सकता है। उसके बाद ये पैसे दुलहिन की ससुराल वालों को दिए जाते हैं।
10. लड़के के घर से लड़की के घर एक कपड़ा जाता है, जिसे 'पोक्शालिङ' कहते हैं। यह इसलिए दिया जाता है कि यदि लड़की के माँ-बाप में से कोई मर जाए और वह उनकी अंत्येष्टि से पहले न पहुँच पाए तो इस कपड़े को लड़की की ओर से शव पर डाला जाता है।
11. जब बारात निकलती है तो भूत-प्रेतों के लिए 'पोल्टू' (एक पकवान) आदि ले जाते हैं, जिसे 'छाकङ्' कहते हैं।

12. यदि दुलहिन को 'माज़ोमी' लाता है तो इसे 'बरमी खुबमो' कहा जाता है।
13. किन्नौर की किसी भी प्रकार की शादी में न तो कोई मंडप बनाया जाता है और न ही अग्नि आदि के फेरे लिए जाते हैं।
14. किन्नौर क्षेत्र में लड़कियों को एक विशेष अधिकार प्राप्त है, जिसे 'कोरङ् पोलठामो' कहा जाता है। इसके अंतर्गत यदि किसी लड़की की शादी ऐसे लड़के से तय कर दी जाए, जो उसे पसंद न हो तो वह अपनी सखी की सहायता से लड़के के घर से शगुन के रूप में आए पैसे और 'कोरङ्' की बोतल लड़के के घर या 'माज़ोमी' के पास वापस पहुँचा देती है और शादी की बात टूट जाती है। इसके पश्चात् इस विषय पर कोई बातचीत नहीं होती।

अंत में यह कहा जा सकता है कि किन्नौर में विवाह संस्कार एक विचित्र एवं भिन्न प्रकार की विशेषताओं से संपन्न है, परंतु आधुनिकता की छाया निचले किन्नौर में प्रविष्ट हो गई है और वह धीरे-धीरे अपने पाँव पसार रही है, जो इस क्षेत्र की संस्कृति को विलुप्त कर रही है। अतः आधुनिकता की प्रगति के साथ-साथ यह आवश्यक है यहाँ की समृद्ध संस्कृति को सहेज कर रखा जाए।

सहायक प्रोफ़ेसर, संस्कृत विभाग,
क्षेत्रीय केंद्र, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,
धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश

लाहुल में प्रचलित विवाह परंपरा

● बलराम

हिमाचल के बारह ज़िलों में से एक, सीमांत ज़िला लाहुल-स्पिति जनजातीय क्षेत्र होने के कारण अपना एक अलग महत्त्व रखता है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार हिमाचल प्रदेश में सत्तावन अनुसूचित जातियाँ और दस अनुसूचित जनजातियाँ हैं। लाहुल-स्पिति की दो प्रमुख जनजातियों के नाम हैं– स्वांगला और बौद्ध (भोट)। यह क्षेत्र साल में लगभग छह महीने बर्फ़ से ढका रहता है, जिस दौरान दैनिक समाचार तक नसीब नहीं होता है। बर्फ़ीली पहाड़ियों के ये भोले-भाले लोग गर्मी के मौसम के चंद महीनों के दौरान कठिन परिश्रम करके अपना जीवन-यापन करते हैं। प्रकृति की गोद में बसने वाले ये लोग अपनी परंपराओं और रीति-रिवाजों को कभी भूलते नहीं हैं। जीवन की कठिनाइयों का सामना धूमधाम से मेले और त्योहार मना कर करते हैं।

यहाँ के लोगों की विवाह प्रथा बहुत सरल और सूक्ष्म ही नहीं, अपितु बहुत रोचक भी है। दहेज जैसी कुरीति, जो हमारे देश के बहुत से अन्य इलाक़ों में प्रचलित है, ख़ुशनसीबी से वह अभी यहाँ प्रचलन में नहीं है (वर्तमान में यदि किसी अपवाद को छोड़ दिया जाए तो)। इसके विपरीत लाहुल में वधू पक्ष वाले वर पक्ष के लोगों से एक रक़म की माँग करते हैं, जिसे 'शेदी' कहते हैं। 'शेदी' की राशि शादी से पहले ही निर्धारित कर ली जाती है। अगर शेदी अदा नहीं की जाती है तो शादी हो ही नहीं पाती है। 'शेदी' का पैसा लड़की के नाम से बैंक में भी जमा कर सकते हैं या कन्या पक्ष की ओर से सुझाए गए किसी समझदार और निष्पक्ष व्यक्ति के पास दे दिया जाता है, जिसे वधू बाद में जैसा चाहे, वैसा ख़र्च कर सकती है। इस प्रथा का सबसे बड़ा फ़ायदा यह है कि शादी के तुरंत बाद लड़की को आर्थिक रूप से किसी अन्य पर निर्भर नहीं होना पड़ता है।

यहाँ तीन प्रकार के विवाह का रिवाज प्रचलन में है– 'मोड़ ब्याह', 'क्वाजि (क्वाचि) ब्याह' तथा 'कूजी ब्याह'। 'मोड़ ब्याह' तथा 'क्वाजि ब्याह' दोनों पक्षों की आपसी सहमति से ही संपन्न किए जाते हैं। विवाह निश्चित करते समय लड़के और लड़की के गुणों को ही ध्यान में रखा जाता है। अमीरी-ग़रीबी का प्रश्न आमतौर पर उठाया ही नहीं जाता। किसी परिवार से रिश्ता स्थापित करने के लिए सामान्यतया वर पक्ष को ही पहल करनी पड़ती है। 'मोड़ ब्याह' के अंतर्गत सर्वप्रथम लड़के के कोई निकट के रिश्तेदार, जैसे कि मामा, ताऊ या चाचा आदि

लड़की के घर विवाह का प्रस्ताव लेकर जाते हैं। इसे 'ब्याह रूसी' अथवा 'ब्याह रुक्सी' कहा जाता है। इस काम को आमतौर पर शाम के समय या रात के खाने से पहले संपन्न करने की कोशिश की जाती है, क्योंकि परिवार के सभी सदस्य केवल उसी दौरान एकत्र हो पाते हैं। विवाह का प्रस्ताव लाने वाले व्यक्ति को 'ब्याह रूस' अथवा 'ब्याह रुक्स' कहा जाता है। प्रथम मुलाक़ात में ही सहमति अथवा असहमति प्रकट करने की संभावना तो कम ही होती है, अतः लड़की वाले विचार-विमर्श के लिए कुछ समय की मोहलत माँग लेते हैं। कुछ अरसे के बाद 'ब्याह रूस' अंतिम निर्णय के लिए फिर उनके पास जाता है। अगर निर्णय नकारात्मक हुआ तो वह भरसक कोशिश करता है कि उनके न को हाँ में बदल दे, परंतु कभी तो वह सफल हो जाता है, कभी नहीं। समझदार 'ब्याह-रूस' तो प्रथम मुलाक़ात में ही कन्या पक्ष के लोगों के हाव-भाव और उनके द्वारा गर्मजोशी या ठंडेपन से की गई आवभगत से ही पता लगा लेता है कि उत्तर हाँ में आएगा या न में।

रिश्ता स्वीकार किए जाने की स्थिति में एक छोटी-सी रस्म निभाई जाती है, जिसमें लड़के वालों की ओर से स्थानीय शराब की एक या दो बोतलें प्रस्तुत की जाती हैं। आवश्यकता पड़ी तो कन्या पक्ष के लोग भी इतनी ही बोतलें पेश करते हैं। छोटी-मोटी इस दावत में गाँव में मौजूद कन्या पक्ष के निकट के रिश्तेदार भी शामिल कर लिए जाते हैं, ताकि उन्हें भी इस खुशख़बर से अवगत करवाया जा सके। दूसरे दिन 'ब्याह-रूस' के वापस आने तथा खुशख़बर सुनाने पर लड़के के घर पर भी इसी तरह की एक दावत का आयोजन किया जाता है।

विवाह का दिन निश्चित करने के लिए दोनों पक्ष के लोग एक बार फिर मिलते हैं और सुविधाजनक तिथि निर्धारित करते हैं। जन्मपत्री मिलान व शुभ लग्न आदि का कोई काम नहीं होता है। ये सब व्यर्थ की बातें मानी जाती हैं। सबसे ज़रूरी बात जो मानी जाती है, वह है कि विवाह शुक्ल पक्ष में संपन्न हो, कृष्ण पक्ष में नहीं तथा सोमवार का दिन हो तो सोने पे सुहागा।

अब तो लाहुल के लोग भी विवाह के समारोह में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रण कार्ड भेजते हैं, वरना आज से सात-आठ साल पहले तक तो यह काम 'ब्यहु धामू' करता था। यह व्यक्ति संपूर्ण गाँव वालों को ही नहीं, अपितु संबंधित पक्ष के दूर-दूर तक के रिश्तेदारों को भी न्योता दे आता था। इस दूत की टोपी में गेंदे के सूखे फूल के साथ एक जंगली पेड़[1] के सूखे बीज, जिस पर सफ़ेद रंग की झिल्ली चिपकी होती है, से बना रंगीन और चमकदार कागज़ों से सजा फूल लगा होता था, जिसे देखते ही लोग पहचान लेते थे कि यह आदमी किसी के विवाह का संदेश लेकर आया है। मोबाइल और इंटरनेट के इस ज़माने में चंद सिक्कों का एक कार्ड ही आज यह काम कर देता है।

अब आती है विवाह की बारी। विवाह से एक दिन पहले वर और कन्या दोनों के घरों में रात के समय 'नाता-गोता' की प्रथा संपन्न की जाती है। गाँव के सारे लोग तथा दूर-दूर से आने वाले सभी रिश्तेदार इसी दिन एकत्र होते हैं। रात्रि भोज से पहले चूल्हे या अँगीठी में

1. हिमाचल प्रदेश के मंडी, बिलासपुर और कांगड़ा आदि स्थानों पर मिलता है।

लकड़ी जलाई जाती है। उपस्थित सभी लोगों के हाथ में 'बेठड़'[2] नाम की एक जंगली जड़ी-बूटी दी जाती है, जिसे सभी लोग एक साथ अपने माथे से छूकर तथा कुलज (परिवार की मुख्य देवी या देवता) का नाम लेकर हवन करने की मुद्रा में अग्नि में चढ़ाते हैं तथा प्रार्थना करते हैं कि वह विवाह की सभी रस्मों को पूरी तरह से निभाने में उनकी सहायता करे। इसके बाद प्रसाद बाँटा जाता है। प्रसाद में सामान्यतया भुने हुए 'नंगा जौ' के आटे में चीनी मिलाकर तथा उसे देसी घी में गूँद कर लड्डू से सौ गुणा बड़ा एक पकवान बनाया जाता है, जिसे 'मरपीं' (मरपीणी) कहा जाता है। इसे छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर प्रसाद के रूप में बाँटा जाता है। आजकल हलवाई से लड्डू लाकर भी प्रसाद के तौर पर बाँटे जाते हैं। कुछ लोग तो हलवा बनाकर भी काम चला लेते हैं। इसके बाद अग्नि की परिक्रमा करते हुए दूल्हा सभी बुज़ुर्गों का आशीष प्राप्त करता है। फिर देर रात तक खाने-पीने और नाच-गाने का दौर चलता है। क्योंकि बारात दूसरे दिन सुबह के समय प्रस्थान करती है, इसलिए दूर के रिश्तेदारों को छोड़ कर सभी लोग समय पर अपने-अपने घर वापस चले जाते हैं, ताकि सुबह उचित समय पर तैयार होकर बारात में शामिल हो सकें।

सवेरे ही दूल्हे को नहला-धुला कर तैयार किया जाता है। नये कपड़े पहनाए जाते हैं। दूल्हे की टोपी को सूखे गेंदे तथा रंगीन कागज़ों से बने फूलों से सजाया जाता है। गले में सोने या पीले और गुलाबी रंग के शुद्ध मूँगों की एक माला पहनाई जाती है, जिसमें सोने का एक बड़ा-सा पेंडेंट लगा होता है। दुलहन भी इसी प्रकार की माला पहनती है। कुछ अरसा पहले तक तो दूल्हा हाथ से बनी सफ़ेद रंग की पट्टी से तैयार घुटने तक लंबा चोगा नुमा एक वस्त्र पहनता था, जिसे 'कदर' कहा जाता है। 'कदर' पर गहरे लाल रंग का एक रेशमी कमरबंद बाँधा जाता था, जिसे 'छिर' कहा जाता है। इसके ऊपर काले रंग का एक वास्कट पहनाया जाता था। अब समय के साथ दूल्हे के पहनावे में बहुत अंतर आ गया है। अब तो न 'कदर' रहा और न रहा 'छिर'। न रही मूँगे की माला, न रहा काले रंग का वह वास्कट, जो उस समय के दूल्हे मियाँ की वेशभूषा में चार-चाँद की छटा बिखेरा करते थे। आज इनका स्थान कोट-पैंट और टाई ने ले लिया है, परंतु दुलहन आज भी 'कदर', 'छिर', सोने या मूँगे की माला और 'कदर' के रंग से मेल खाता वास्कट पहनती है।

पुरानी परंपरानुसार बारात रात को दुलहन के घर रुकती थी और दूसरे दिन शाम को दुलहन सहित वापस आती थी, परंतु आजकल उसी दिन वापस आ जाती है, चाहे देर शाम को ही सही। इसका मुख्य कारण शायद पहले आवागमन की सुविधा की कमी थी। पैदल ही तो आना-जाना होता था। इस असुविधा को कुछ कम करने के लिए रात को दुलहन के घर ही रुक जाने के सिवाय और कोई चारा नहीं था।

बारात की अगवाई वर का कोई नज़दीकी रिश्तेदार जैसे चाचा, ताया या दादा करता है। इस व्यक्ति को 'शिरदार' कहा जाता है। दूल्हे की तरह 'शिरदार' भी ख़ूब सजा-सँवरा होता

---

2. तेरह हज़ार फुट की ऊँचाई पर पाई जाने वाली देवदार पेड़ की प्रजाति की एक झाड़ी, जिसकी सूईनुमा पत्तियों के जलने पर उठते हुए धुएँ से प्यारी से ख़ुशबू आती है।

है। दूल्हा और 'शिरदार' दोनों ही सफ़ेद रंग की शॉल ओढ़े रहते हैं। 'शिरदार' के हाथ में एक गँड़ासा होता है, जिसे वह कंधे पर उठाकर चलता है, ताकि दूल्हे को किसी की नज़र न लग जाए। दूल्हे समेत सभी बाराती 'शिरदार' के पीछे-पीछे चलते हैं। बारात के साथ एक और महत्त्वपूर्ण व्यक्ति होता है, जिसे 'सेहणू' कहते हैं। सेहणू ही यह तय करता है कि कब और कहाँ कितने पैसे ख़र्च करने हैं। वापसी पर बारातियों के लिए वाहन सुविधा की देख-रेख भी यही करता है।

बौद्ध परंपरा के अनुसार दूल्हे के साथ उसी के समान सजे-धजे एक और व्यक्ति को बारात के साथ भेजा जाता है, जिसे 'बक्ट्रीप' कहा जाता है, जो 'शिरदार' और दूल्हे के बीच चलता है और जिसे बाद में दुलहन के बेदी के भाई के रूप में ज़िम्मेदारी निभानी होती है। बाराती एक बकरे को काट कर अपने साथ ले जाते हैं। साथ ही दो-तीन किलो देसी घी से बना 'मरपीं' (मरपीणी) भी ले जाते हैं, जिसे दुलहन के घर उनके नज़दीकी रिश्तेदारों को एक अलग कमरे में ले जाकर बाँटा जाता है। जो जितना नज़दीकी रिश्तेदार होता है, उसको उतना ही ज़्यादा बड़ा टुकड़ा दिया जाता है।

घर के मुख्य द्वार पर दुलहन की माँ, बहनें तथा भाई इत्यादि एक पंक्ति में खड़े होकर 'मरपीं' (मरपीणी) की परात, 'शराब' की केतली, गेंदे के फूल, जलती हुई अगरबत्ती आदि के साथ स्वागत करते हैं। 'मरपीं' और शराब की कुछ बूँदें देवताओं को अर्पित की जाती हैं और फिर अपने मुँह में डालने का अभिनय किया जाता है। सबसे पहले यह काम 'शिरदार' करता है, फिर बारी-बारी से यह औपचारिकता सभी बाराती निभाते हैं। श्रद्धा तथा सामर्थ्य के अनुसार 'सेहणू' स्वागत की इन थालियों तथा परात में शगुन के पैसे डालता जाता है।

घर के अंदर पहुँचने के बाद एक बार फिर से 'मरपीं' इत्यादि से पारंपरिक स्वागत करने का दौर शुरू होता है, जिसे 'शागों लहि' अथवा 'शागोण लज़ि' कहा जाता है। फिर खाने-पीने का माहौल बन जाता है। दूल्हे के साथ लाया गया 'मरपीं' सभी को बाँट दिया जाता है और पुरुषों को शराब की बोतलें पेश की जाती हैं। इसके बाद नाश्ता दिया जाता है और दोपहर को खाना। बारात के लौटने से पहले दूल्हे के घर से आए गहने और कपड़े निकाल कर सामने रखे जाते हैं, ताकि सभी देख सकें। गहने और कपड़े इत्यादि लाने का यह रिवाज पहले नहीं हुआ करता था, केवल सात-आठ साल ही हुए हैं, इसे प्रचलन में आए।

यहाँ यह भी बता देना उचित रहेगा कि स्वांगला जनजाति के विवाहों में दुलहन के घर से पहले लगभग पाँच-छह सौ मीटर की दूरी पर वर का स्वागत भाट के नेतृत्व में एक और दल करता है। इसके अंतर्गत कुछ लोग जलती हुई एक मशाल, एक बकरू (छोटा बकरा) तथा एक परात में जौ के आटे से बनी कुछ पिन्नियाँ तथा एक दीया रखकर घर से निकलते हैं। बारात के पास पहुँचकर बकरू की बलि दी जाती है और भाट जौ की पिन्नियों को बारातियों के ऊपर से चारों दिशाओं की ओर फेंकता है और साथ ही साथ कुछ मंत्र भी पढ़ता है। लोगों का विश्वास है कि ऐसा करने से रास्ते में बारातियों के साथ कोई भूत-प्रेत व अन्य बुरी आत्मा आई हो तो वह दुलहन के घर में प्रवेश नहीं कर सकती।

बारात की वापसी से पहले वर व कन्या द्वारा जलती हुई अँगीठी या चूल्हे के गिर्द तीन या सात चक्कर लगाए जाते हैं। अग्नि के सामने तब वे दोनों एक-दूसरे को पति-पत्नी मान लेते हैं तथा बड़े बुज़ुर्गों से हाथ जोड़कर आशीर्वाद प्राप्त करके 'शिरदार' के साथ घर से बाहर आ जाते हैं। गलियारे या बरामदे में नव-विवाहिता की माँ-बहनें और मौसी आदि 'मरपीं' और शराब की भरी हुई केतली के साथ विदाई की प्रथा निभाते हुए नम आँखों से अपनी लाडली को विदा करती हैं।

यहाँ पर 'सुआइ' और 'केल्देर' देने की प्रथाओं का ज़िक्र किए बिना लाहुल की विवाह प्रथा की यह प्रस्तुति अधूरी ही रह जाएगी। बारात की विदाई से पहले कन्या के माता-पिता अपनी लाडली को जो कुछ भी देना चाहे, उसे दे देते हैं, वह चाहे पैसा हो, कपड़े हों या घर के उपयोग में आने वाला अन्य कुछ भी सामान। एक व्यक्ति इसका पूरा विवरण लिखता है। इसके बाद कन्या के नाना-नानी, मामा-मामी, बुआ-बुआई, जीजा-बहन और गाँव के सभी लोग अपने-अपने परिवारों की ओर से जो कुछ देना चाहें, सामर्थ्यनुसार दे देते हैं। इसे ही 'सुआइ' देने की प्रथा कहा जाता है। 'सुआइ' में एकत्र सभी पैसे इत्यादि एक सूची के साथ वर पक्ष के 'सेहणू' या इस कार्य के लिए नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति को सौंप दिए जाते हैं। यह कार्य सभी बारातियों के समक्ष किया जाता है, ताकि कालांतर में किसी प्रकार के विवाद की संभावना ही न रहे। इस सूची की एक प्रति कन्या के पिता या भाई को भी उपलब्ध करवाई जाती है। 'केल्देर' का उल्लेख कुछ आगे किया गया है।

'सुआइ' में एकत्र पैसे और गहने तथा अन्य सामान बाद में नव-विवाहित जोड़ी के सुपुर्द कर दिया जाता है, जिसे वे जैसे चाहें प्रयोग में ला सकते हैं।

इसके बाद बारात को विदा करने का समय आ जाता है। कन्या अपने माता-पिता और भाई-बहिनों को ही नहीं, अपितु अपने गाँव और गाँव की सखी-सहेलियों तथा अन्य सभी रिश्तेदारों को छोड़कर सदा के लिए एक ऐसे परिवार में रहने जा रही होती है, जिसे वह अभी जानती तक नहीं है। यही बात उसे बार-बार परेशान करती जाती है। इसी मानसिक स्थिति में वह अपने माता-पिता की छाती से लिपटती हुई अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ जुदा हो जाती है। बाबुल के घर की एक दीवार पर आटे से सने अपने दोनों पंजों की छाप छोड़ते ही वह बाहर आ जाती है। उसकी सहेलियाँ बारातियों के सामने आकर बारात को रोक देती हैं। वे बारात को तब तक आगे जाने नहीं देती हैं, जब तक कि वर पक्ष का 'सेहणू' सामने आकर उनके द्वारा माँगी गई राशि अदा नहीं कर देता है। यह राशि आजकल हज़ारों रुपयों तक की हो जाती है। इस राशि को बाद में गाँव का महिला मंडल अपनी आवश्यकता के अनुसार ख़र्च कर सकता है।

बारात के आगे बढ़ते ही बारातियों में से कोई व्यक्ति गीत गाने लगता है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार से हैं :—

बड़ी ए बाजीरा ए बड़ी तेरे नावें
रोए मातू धीवा ए सूठारी ब्याहाये
रोए मातू धीवा ए भले जोगू ब्याहाये।

रास्ते में चलते हुए भी गीत गाए जाते हैं। इन्हें 'यरि घुरे' या 'यरि घीत' कहा जाता है। इसमें न तो कोई वाद्ययंत्र बजता है और न ही कुछ और। एक व्यक्ति गीत की पंक्तियाँ गाता है तो अन्य लोग उन्हें दोहराते जाते हैं। कुछ सपय पहले तक तो आवागमन के कुछ भी साधन उपलब्ध नहीं थे। न तो दूल्हे को घोड़ी पर बिठा कर ले जाते थे और न ही दुलहन को पालकी पर बिठाने का रिवाज था। सभी को पैदल चलना पड़ता था। संभवतः पैदल चलने से हुई थकावट और बोरियत से बचने के लिए 'यरि घुरे' गाने का प्रचलन शुरू हुआ होगा। अब बारात पैदल आती-जाती तो है नहीं, फिर इस गीत के गाने का सवाल ही कहाँ पैदा होता है? यही कारण है कि आज की पीढ़ी को तो शायद यह भी पता नहीं है कि 'यरि घीत' किस चिड़िया का नाम है। बहुत ही कम लोग होंगे, जिन्हें आज पूरे गीत कंठस्थ होंगे। ऊपर से ज़्यादातर 'यरि घीत' बहुत लंबे होते हैं। उदाहरणार्थ ऊपर लिखित 'यरि घीत' चौंतालीस पंक्तियों का है। एक 'यरि-घीत' में शिव और माता गौरी के विवाह के साथ-साथ शिव की महिमा का वर्णन भी आता है। यह गीत छप्पन पंक्तियों का है। इसी प्रकार एक अन्य सतहत्तर पंक्तियों का गीत है जिसमें शिव और पार्वती के विवाह का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। आज के इस भाग-दौड़ भरे दौर में इस प्रकार के और इतने लंबे-लंबे गीतों को ज़बानी याद रख पाना असंभव नहीं तो कुछ कठिन ज़रूर लगता है। अस्तु।

गाँव के सभी परिवार वाले नव-विवाहित जोड़ी को शुभकामनाओं सहित विदा करते समय घर से कुछ ही क़दमों की दूरी पर 'मरपीं', स्थानीय शराब इत्यादि पेश करते हैं। सड़क पर ही गद्दे बिछाए जाते हैं, जिनके ऊपर 'शिरदार', 'ब्यहू' (दूल्हा), 'ब्यहुतिरि' (दुलहन) तथा 'ब्यहुतिरि-ऊ-सादि' (दुलहन के साथ चलने वाली लड़की) को बैठना ही पड़ता है, चाहे कुछ मिनटों के लिए ही सही। अन्य बाराती खड़े-खड़े ही 'मरपीं' इत्यादि का स्वाद चख सकते हैं. इस प्रथा को 'जज़ी लई' अथवा 'जज़ी लज़ी' कहा जाता है। जिस-जिस गाँव से होकर बारात गुज़रती है, वहाँ-वहाँ उसकी 'जज़ी' होती है, बशर्ते कि उस गाँव में दूल्हे या दुलहन में से किसी एक पक्ष का कोई रिश्तेदार हो।

वधू को ससुराल पहुँचाने के लिए उसके रिश्तेदार और गाँव के लोग साथ जाते हैं और दूसरे दिन वापस आते हैं। ज्यों ही बारात वर के गाँव पहुँचती है, वहाँ पर भी बारात का उसी प्रकार से स्वागत किया जाता है, जिस तरह से कन्या पक्ष के यहाँ होता है। यह स्वागत पहले स्थानीय भाट या किसी देवी या देवता के 'गुरह्' (गूर) द्वारा एक बकरे की बलि देकर किया जाता है और फिर मुख्य द्वार के पास दूल्हे के माँ-बाप और अन्य रिश्तेदारों द्वारा। इसके बाद खाने-पीने का दौर चलता है। रात्रि भोज से पहले हलका जलपान करवाया जाता है, जिसमें हलवा-पूरी तथा उबाल कर तड़के हुए काले चने इत्यादि खिलाए जाते हैं। रात के नौ-दस बजे के बाद रात्रि भोज होता है, जिसमें मुख्य रूप से चावल, मांस और राजमाश बनते हैं।

रात्रि भोज शुरू करने से पहले दूल्हे की पगड़ी और दुलहन के गहनों को उतार देते हैं, ताकि खाना खाकर वे आराम कर सकें। पुराने समय में लाहुल में दूल्हे को सेहरा पहनाने की परंपरा नहीं थी, परंतु अन्य स्थानों के देखा-देखी अब यहाँ भी कुछ लोग सेहरा पहनाने लग

गए हैं। दूल्हे की ओर से अँगूठी और मंगलसूत्र इत्यादि देने की भी प्रथा आरंभ हो गई है, जो पहले नहीं थी।

दूल्हे की बारात में उसका पिता शामिल नहीं होता है। इसी प्रकार से कन्या के माता-पिता भी दुलहन को छोड़ने नहीं जाते हैं। उन्हें विवाह के दूसरे दिन वर के माता-पिता दावत में शामिल होने के लिए आदरपूर्वक बुला कर ले जाते हैं। इस दिन वधू के सभी रिश्तेदारों को इकट्ठे नाश्ता करवाया जाता है, जिसके बाद वे वापस अपने घर को चल पड़ते हैं। वापस चलने से पहले वे एक-एक करके अपने सामर्थ्य और रुतबे के अनुसार लड़की के हाथ में कुछ पैसे देते जाते हैं। इसे 'केल्देर' कहते हैं। बौद्ध धर्म के मानने वाले कुछ लोग इसे 'जोङ गोचि़' का नाम देते हैं। 'गोचि़' का अर्थ है एकत्र करना।

इसी दिन देर रात को एक और रस्म अदा की जाती है, जिसे 'ब्याहु टाड़ा' कहा जाता है। इसका संचालन भाट करता है। शाम के समय वह जौ के आटे की चार-पाँच पिन्नियाँ और कुछ दीये आदि बना कर उन्हें एक परात में सजा देता है। दीयों को प्रज्वलित करने के बाद वह काँसे की एक थाली में चकमक पत्थर के पंद्रह-बीस टुकड़ों को रखकर हाथ से उन्हें दायें से बाईं ओर घुमाता जाता है। पत्थर के टुकड़ों से रगड़ खाने के कारण थाली से लगातार एक कर्कश आवाज़ निकलती है। साथ-साथ वह कुछ मंत्र भी बोलता है। आज तक न तो कोई उन मंत्रों के कुछ शब्द पकड़ पाया है और न ही कोई उनका भावार्थ समझ पाया है। शायद भाट को भी इसकी कोई जानकारी नहीं है और इस संबंध में कहीं कोई लिखित जानकारी भी उपलब्ध नहीं है। उनके पास अपने बाप-दादाओं से रटे-रटाए शब्दों के सिवाय कुछ भी नहीं है। वह पिन्नियों से भरी परात से पास ही बैठी नवविवाहित जोड़ी की आरती उतारने की सी मुद्रा में इसे इधर से उधर घुमाता है। इसी दौरान गाँव के दो-तीन पुरुष, जिन्हें 'वीरह्' कहा जाता है, एक जलती हुई मशाल, बकरे की जाँघ का एक बड़ा टुकड़ा, आटे का एक बड़ा सा रोट तथा चकमक पत्थरों से भरी थाली को साथ लेकर चीखते-चिल्लाते हुए घर से बाहर निकलते हैं और नज़दीकी 'चौवाड़' (चौराह) पर चले जाते हैं। वहाँ भाट पत्थर के टुकड़ों और आटे की पिन्नियों को कुछ बुदबुदाते हुए चारों दिशाओं में फेंक देता है। मांस के टुकड़े को जलती मशाल के ऊपर आधा-अधूरा भून कर रोट के साथ ये तीन-चार लोग (वीरह्) स्वयं ही खा लेते हैं।

वापस आने पर इनके लिए घर का दरवाज़ा, जो जानबूझ कर बंद किया होता है, तब तक नहीं खोला जाता, जब तक भाट कुछ संकेत नहीं करता है। मान्यता है कि इस रस्म के बाद नवविवाहित जोड़ी को बुरी नज़र नहीं लगती है।

विवाह के छह-सात दिनों के बाद किसी एक प्रौढ़ महिला के संरक्षण में नव विवाहित जोड़ी वधू के मायके रिश्ते में बड़े लोगों से आशीर्वाद प्राप्त करने जाती है, ताकि वर का भी बेहतर परिचय हो सके। इसे 'फेरोंई' या 'फेरोणी' कहते हैं। तदुपरांत अन्य रिश्तेदार भी बारी-बारी से उन्हें 'फेरोंई' के लिए आमंत्रित करते हैं, फिर वह चाहे वर पक्ष के रिश्तेदार हों या वधू पक्ष के। आजकल 'फेरोंई' का एक नया ही रूप देखने को मिल रहा है, जो कुछ समय पहले तक तो प्रचलन में था ही नहीं। इसके बारे में अधिक जानकारी आगे दिए विवरण में प्राप्त होगी।

जहाँ तक 'क्वाजि (क्वाचि) ब्याह' का संबंध है, इसे 'मोड़ ब्याह' का ही एक सरल और संक्षिप्त रूप कहा जा सकता है। इस प्रकार के विवाह में 'ब्याह रूसी' (ब्याह रुक्सी) इत्यादि का कोई झंझट होता ही नहीं है। केवल तीन-चार लोग ही जाकर दुलहन को साथ लेकर आ जाते हैं। यहाँ तक कि दूल्हा स्वयं भी नहीं जाता है। उनकी नुमाइंदगी उनकी कोई बहन ही कर लेती है।

इस प्रकार के विवाह का एक मुख्य लाभ तो यह होता है कि सारा काम जल्द ही निपट जाता है, साथ ही होने वाले ख़र्च को कुछ अरसे के लिए टाल दिया जा सकता है, क्योंकि इस उपलक्ष्य में आयोजित किए जाने वाले भोज का प्रबंध पैसा उपलब्ध हो जाने के बाद भी किया जा सकता है। इसे भी 'फेरोंई' या 'फेरोणी' का नाम दिया जाता है। इसमें समय की कोई सीमा नहीं होती है। कई बार तो नवविवाहितों के बच्चे तक पैदा हो जाते हैं। इस प्रकार से बच्चे भी अपने माता-पिता के विवाह की 'फेरोणी' में हिस्सा लेते हैं और अगर कोई इसे आयोजित न भी करना चाहे तो भी कोई बुरा नहीं मानता है।

तीसरी प्रकार का 'कूजी ब्याह' अथवा 'कूई ब्याह' अब लगभग समाप्त ही हो गया है। 'कूई' या 'कूजी' का मतलब होता है चोरी या चुराना। वर अपने दो-चार मित्रों के साथ रास्ते में चलती या कहीं पर काम करती एक निश्चित लड़की को उठाकर घर ले आता है। घर लाने के बाद विवाह की छोटी-मोटी रस्में निभाई जाती हैं। आमतौर पर इसके लिए पहले ही लड़की की सहमति ले ली गई होती है। ऐसी स्थिति में बाद में कोई कानूनी समस्या पैदा नहीं होती है, बशर्ते लड़की की आयु अठारह से ऊपर हो।

दो-तीन दिन के बाद वर पक्ष के कुछ लोग वधू के माता-पिता को मनाने और साथ ही अपनी ग़लती क़बूल करने के लिए वधू के मायके जाते हैं, जिसे 'चेंसी' कहा जाता है। अधिकतर देखा जाता है कि लड़की की पूर्व सहमति की जानकारी मिलने के बाद उसके माता-पिता इस रिश्ते को स्वीकार कर लेते हैं। इसी दौरान 'शेदी' की राशि का भी फ़ैसला हो जाता है। जब सुविधा हो, तब 'फेरोंई' भी कर ली जाती है।

लाहुल में कभी बहुपतित्व की प्रथा भी प्रचलित रही है। इसके पीछे चाहे कुछ भी कारण रहे हों, परंतु आज के शिक्षित युवक-युवतियों को यह बिल्कुल ही स्वीकार्य नहीं है। यही कारण है कि आज यह प्रथा अपनी अंतिम साँसें गिन रही है।

अगर पति या पत्नी या दोनों ही आपसी संबंधों को तोड़ना चाहें तो लाहुल समाज इसकी भी इजाज़त दे देता है। संबंध विच्छेद करने की प्रथा को 'छुद् थ्वाक्चि' कहा जाता है। 'छुद्' का मतलब होता है धागा और 'थ्वाक्चि' का मतलब होता है तोड़ देना। अतः पति और पत्नी ऊन के एक पतले धागे को हाथ में लेकर खींचते हुए तोड़ देते हैं और संबंध विच्छेद हो जाता है। पति अपनी पत्नी को इस रिश्ते को समाप्त करने के एवज़ में पहले से निर्धारित राशि हरजाने के रूप में देता है, जिसे 'हरजा' कहा जाता है। फिर वे चाहें तो अन्यत्र कहीं भी विवाह कर सकते हैं।

सोनेक कॉटेज, गाँव दवाड़ा, डाकघर डोभी,
ज़िला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

स्पिति की विवाह परंपरा

● छेवांग दोरजे

मनुष्य के संस्कारों में 'विवाह' एक महत्त्वपूर्ण संस्कार है। इसी संस्कार से मनुष्य अपने वंश को आगे बढ़ाता है तथा साँसारिक गतिविधियों में लीन रहता है। स्पिति की विवाह परंपरा अपने में एक अनूठी परंपरा है। यह परंपरा तिब्बत के राजा स्रोङ्चन गंपो (617-698 ई.) के समय से चली आ रही है। कहा जाता है कि राजा स्रोङ्चन गंपो का दूसरा विवाह जब चीन की राजकुमारी वेंगचेन कोङ्जो 'ग्यासा' से हुआ था, तब उनकी बारात की अगवाई उनका बुद्धिमान मंत्री गहर कर रहा था। राजा स्वयं इस बारात में शामिल नहीं हुआ। उसने अपने मंत्री के साथ वर प्रतीक के रूप में तीन गाँठ वाला विभिन्न प्रतीकों से युक्त एक बाण भेजा। वर के प्रतीक के रूप में सुसज्जित बाण को बारात के साथ ले जाने का प्रचलन आज भी स्पिति एवं बौद्ध बाहुल्य क्षेत्रों में देखा जा सकता है। राजा स्रोङ्चन गंपो की बारात जब चीन पहुँची तो वहाँ राजकुमारी वेंगचेन कोङ्जो का हाथ माँगने के लिए विभिन्न देशों, यथा– तज़ाकिस्तान, बल्तिस्तान, गेसर और हिंदुस्तान से राजकुमार आए हुए थे। चीन का राजा दुविधा में पड़ गया कि किस देश के राजा को राजकुमारी का हाथ सौंपा जाए। अतः उसने सभी देशों के बारातियों के सम्मुख कुछ शर्तें रखीं, जिनमें से एक भी शर्त अन्य देश के राजा जीत नहीं पाए, लेकिन तिब्बत के बुद्धिमान मंत्री ने वे सभी शर्तें जीत लीं। परंतु सभी शर्तें जीतने के बाद भी चीन का राजा अपनी राजकुमारी तिब्बत के राजा को नहीं देना चाहता था, क्योंकि तिब्बत एक प्रत्यंत देश था, वहाँ तब धर्म नाम की कोई चीज़ नहीं थी। तब चीन के राजा ने तिब्बती मंत्री के सामने अंतिम एवं निर्णायक शर्त रखी कि वह तीन सौ सुदरियों में से राजकुमारी कोङ्जो को पहचाने और उसे ले जाए। बुद्धिमान मंत्री ने पहले से ही राजघराने की एक कार्यकर्तृ से मित्रता कर राजकुमारी के बारे में सारी बातें जान ली थीं। उसने मंत्री को हिदायत दे रखी थी कि वह राजकुमारी को स्पर्श न करे और राजा के प्रतीक के रूप में लाए बाण के सिरे से ही राजकुमारी को उठाए। इस प्रकार मंत्री ने तीन सौ सुंदरियों में से राजकुमारी कोङ्जो को पहचाना और उसे बाण के माध्यम से राजा के आसन तक ले गया। राजा ने हार मानी और राजकुमारी कोङ्जो को राजा स्रोङ्चन गंपो को इस शर्त पर देने के लिए राज़ी हुआ कि वह तिब्बत में बौद्ध धर्म का दीप प्रज्वलित करे तथा अपने मंत्री को कोङ्जो के बदले में चीन में रखे। इसी 'बदले' की प्रथा के कारण आज स्पिति में दुलहन के विशेष ज़ेवर 'ताक्चे-अली' के स्थान पर घोड़ा और

कुछ नक़दी देने की प्रथा है। पिनवैली के लोकप्रिय एवं दुर्लभ लोक नाट्य 'बुछैन' के दल आज भी गाँव-गाँव में सम्राट स्रोङ्चन गंपो के परिणय सूत्र का मंचन करते हैं। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि स्पिति की विवाह परंपरा सम्राट स्रोङ्चन गंपो के समय से आरंभ हुई है।

नामा रे-चे (मंगनी)

इस विवाह परंपरा में लड़के व लड़की की कोई आयु सीमा नहीं होती है। समाज में बाल विवाह, प्रेम विवाह और तलाक़शुदा औरत के पुनर्विवाह पर कोई रोक नहीं है। घर में पुत्र न होने की स्थिति में घर जवाई रखने की प्रथा है। इसमें वे सभी औपचारिकताएँ पूरी की जाती हैं, जो घर में वधू लाने के लिए की जाती हैं। युवक एवं युवतियों के विवाह का समय आने पर सर्वप्रथम सभी रिश्तेदारों, विशेष रूप से मामा को घर में आमंत्रित किया जाता है। तब यदि घर में पुत्र हो तो बहू की खोज और यदि पुत्र न हो तो पुत्री के लिए 'माक्पा' (घर दामाद) की खोज के लिए विचार-विमर्श किया जाता है। घर में बहू लाने की स्थिति में सभी रिश्तेदार लड़के के योग्य कई लड़कियों का प्रस्ताव रखते हैं। अंत में वे एक लड़की का चयन करते हैं तथा 'नामा रे-चे' (मंगनी) की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। लड़के के मामा और दो ख़ास रिश्तेदारों को इस काम की ज़िम्मेवारी सौंपी जाती है। यहाँ के रस्म-रिवाज के अनुसार मंगनी के लिए एक 'दो-पा छंग या अरक' (लगभग दो लीटर माप का छोटा घड़ा) तथा एक 'खदक' (विशेष सफ़ेद रेशमी कपड़ा) ले जाते हैं। लड़की के माता-पिता एकदम निर्णय नहीं लेते हैं, अतः उनसे कुछ दिनों में सूचित कर दिए जाने का आश्वासन लेकर लड़के वाले मदिरा और खदक वहीं छोड़ कर वापिस चले आते हैं। दूसरे दिन लड़की वाले अपने ख़ास रिश्तेदारों को बुलाकर उनके सम्मुख मंगनी का खदक एवं मदिरा को पेश कर इस पर विचार-विमर्श करने का निवेदन करते हैं। रिश्ते की स्वीकृति या अस्वीकृति की सूचना विशेष संदेशवाहक के माध्यम से लड़के वालों को भेजी जाती है। मंगनी अस्वीकृत किए जाने की स्थिति में लड़के वाले मंगनी की मदिरा, खदक और इज़्ज़त की परवाह किए बिना दूसरे घर में मंगनी को जाते हैं, क्योंकि कहा गया है– 'छंग ज्ञ-न-थुंग ची, नामा चिक-ल' अर्थात् मंगनी की मदिरा सौ लोगों से पीकर भी लड़की एक को ही दी जाती है। एक कहावत है कि 'मि-यी बोमो गोई वाला, चा क्यी लाम जुंग दोल गोई' अर्थात् बहू ढूँढते-ढूँढते लोहे के जूते भी घिस जाते हैं, के अनुसार लड़के वालों को एक रिश्ता पक्का करने के लिए कई लीटर मदिरा एवं कई खदक व्यर्थ गँवाने पड़ते हैं। लड़की वालों द्वारा मंगनी स्वीकार किए जाने की स्थिति में लड़के वाले किसी शुभ दिवस पर फिर से खदक एवं मदिरा के साथ विवाह की तिथि निर्धारित करने के लिए लड़की वालों के पास जाते हैं। इस दिन लड़की वाले अपने सभी रिश्तेदारों तथा गाँव के सभी लोगों को लड़के वालों से खदक प्राप्त करने तथा मंगनी की 'रे-छंग' (मदिरा) पीने के लिए आमंत्रित करते हैं। सभी लोगों के एकत्र होने पर लड़के वाले रिश्तेदारों, ख़ासकर मामा एवं परिवार वालों के सम्मुख एक बड़े पात्र में पचीस पूरियाँ, एक किलो मार (मक्खन), एक मांगलिक 'अशी' (सफ़ेद रेशमी कपड़ा) तथा कुछ पैसे बतौर 'दरहा' (इज़्ज़त) रखते हैं। तत्पश्चात् मामा, पिता, माता, भाई-बहन एवं ख़ास रिश्तेदारों को मांगलिक 'अशी' भेंट करते हैं। उसके बाद सभी उपस्थित लोगों को साधारण

'खदक' भेंट करते हैं। तत्पश्चात् लड़के वालों की ओर से एक 'मोलवोन' (वक्ता), जिसे 'ञेरपोन' भी कहा जाता है, समूह के बीच आता है और खड़े होकर सभी रिश्तेदारों को दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता है तथा 'मौला रिन्छेन ठेङवा' (विवाह व्याख्यान रत्न माला) का कुछ अंश बोलते हुए दोनों परिवारों में रिश्ता कायम होने पर लड़की वालों का आभार व्यक्त करता है। तब लड़की पक्ष की ओर से भी एक 'मोलवोन' खड़ा होता है, जो सर्वप्रथम सभी उपस्थित लोगों को प्रणाम करता है तथा इस कहावत के साथ अपना भाषण शुरू करता है :—

छंग ला मौला मेत न लिऊं छुम दुंग यिन
मौला ल मौल लेन मेद-न शाल से कुग पायिन।

अर्थात् मदिरा के उद्देश्य के संबंध में किसी को जानकारी न हो तो वह पानी पीने के बराबर है तथा भाषण का जवाब न हो तो वह गूँगे के बराबर है।

इसके बाद वह दोनों परिवारों के बीच मंगनी से लेकर शादी की तिथि निर्धारण तक के संबंध में प्रकाश डालता है। अंत में कुछ शर्तों, जैसे— दो भाई होने की स्थिति में 'ठोवा चिकतु गो-ञी ख़ोई-गो' अर्थात् एक वर्तन में दो सिर का पकना, जिसका तात्पर्य है कि दोनों भाइयों को संयुक्त परिवार में रहना मंज़ूर हो तथा पैतृक संपत्ति का पूरा हक़दार बड़ा लड़का हो, के साथ भाषण समाप्त करता है। इसके तुरंत बाद लड़के वालों का 'ञेरपोन' खड़े होकर प्रार्थना करता है— 'छ़ा दङ गोक्पा ञाम दुंग मा-सामपा' अर्थात् नमक और लहसुन का एक साथ कूटना न सोचते हुए विवाह की तिथि भी उसी दिन निर्धारित करें। इसी दिन विवाह की तिथि निर्धारित करना व न करना लड़की वालों पर निर्भर करता है। कई लोग विवाह की तिथि निर्धारित करने के लिए कुछ दिनों का समय माँगते हैं, परंतु कुछ इसी दिन इलाक़े के 'चोवा' (पंडित) से संपर्क करके दिन निर्धारित कर लेते हैं। विवाह की तिथि ज्योतिष विधा में पारंगत इलाके का 'चोवा' ही निकालता है। तिथि निकलवाने के लिए इसे एक 'अशी' व मदिरा की एक बोतल भेंट करनी आवश्यक समझी जाती है। विवाह की तिथि तय हो जाने के बाद इस बात पर विचार-विमर्श किया जाता है कि शादी छोटी की जानी है या बड़ी। आमतौर पर शादी की औपचारिकताएँ दो बार निभाई जाती हैं। यदि लड़के वाले शादी जल्दी कराना चाहते हों और लड़की वाले प्रबंध न होने के कारण शादी जल्दी करवाने में असमर्थ हों तो पहले छोटी शादी यानी 'चोरी विवाह' करा दिया जाता है, ताकि समाज में विवाह को मान्यता प्राप्त हो। इसके बाद यदि वे धूमधाम से शादी कराना चाहें तो छोटी शादी के बाद दुलहन सात दिन ससुराल में रहकर कुछ महीनों के लिए मायके वापिस चली आती है। इस दौरान लड़की के लिए कपड़े, ज़ेवर व विवाह के लिए अन्य आवश्यक सामग्री का प्रबंध किया जाता है। विवाह का प्रबंध पूरा होने के बाद फिर से विवाह की तिथि तय की जाती है और निश्चित तिथि को बड़ी शादी का आयोजन किया जाता है। कुछ संपन्न परिवार वाले एक बार में ही बड़ी शादी, जिसे स्थानीय भाषा में 'बाकलेन' कहते हैं, रचा लेते हैं, ताकि लड़की को वापिस (बाकलोक) न आना पड़े। इस प्रकार स्पिति में प्रबंध विवाह की तीन विधियाँ प्रचलित हैं, 'कुई-ची' (छोटी शादी), 'छांग स्राप चे' (मध्यम शादी) तथा 'बाकलेन' (बड़ी शादी)।

कुई-ची (छोटी शादी)

जो लोग 'छांग स्राप चे' और 'बाकलेन' कराने में असमर्थ होते हैं, वे 'कुई-ची' कराते हैं। इस शादी में बारातियों की संख्या कम होती है। दूर-दराज़ के लोगों को शादी का निमंत्रण भी नहीं दिया जाता है। ख़ास-ख़ास रिश्तेदारों की उपस्थिति में यह शादी संपन्न की जाती है। मंगनी व अन्य सभी औपचारिकताएँ पूर्ण की जाती हैं। इस शादी में ख़र्चा कम आता है तथा दहेज नहीं दिया जाता है। इसे 'चोरी विवाह' भी कहा जाता है।

छांग स्राप चे (मध्यम विवाह)

मध्यम वर्ग के सभी लोग इस तरह का विवाह कराते हैं। इस विवाह में दुलहन को 'ताक्चे अली', जिसे 'पेराक' भी कहा जाता है, के अतिरिक्त अन्य सभी ज़ेवरात दिए जाते हैं। चूँकि 'खङछुंग' (छोटे घर) वालों को 'पेराक' की आवश्यकता नहीं होती तथा इस ज़ेवर के बदले उन्हें कोई क़ीमत भी चुकानी नहीं पड़ती है। यहाँ 'खङछुंग' को स्पष्ट करना आवश्यक है। स्पिति के भू-राजस्व नियम के अनुसार छोटे भाइयों को जद्दी ज़मीन का हिस्सा नहीं मिलता है। इस कारण छोटे भाइयों को गोंपा में बौद्ध शिक्षा ग्रहण करने भेज दिया जाता है, जिन्हें 'लामा' कह कर संबोधित करते हैं। कुछ लामे बौद्ध शिक्षा ग्रहण करने के बाद गृहस्थ जीवन व्यतीत करने की सोच से प्रेम विवाह कर लेते हैं तथा अपने बलबूते पर नया घर बनाते हैं। इस तरह बसे हुए घर को 'खङछुङ' यानी छोटा घर कहते हैं। पिन वैली में प्रचलित बुछैन परंपरा को चलाने वाले कलाकार 'खङछुङ' परिवार से ही हैं। चूँकि नया घर बसा चुके गृहस्थ लामा के ज्येष्ठ पुत्र को 'बुछैन' परंपरा की कला सिखाई जाती थी, जिससे वह अपने जीवनयापन के साथ-साथ नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से धर्म प्रचार का काम भी कर सके। इसे भी खङछुङ (छोटे घर वाले) कहते हैं।

बाकलेन (बड़ी शादी)

'बाकलेन' को उच्चारण भेद से 'पराकलेन' भी कहा जाता है। संपन्न परिवार वाले इस विधि से विवाह रचाते हैं। इस विवाह में बारातियों की संख्या ज़्यादा होती है। बड़े पैमाने पर विवाह में लोगों को आमंत्रित किया जाता है। लड़के वालों की बारात को 'बाह्य बारात' और कन्या पक्ष की बारात को 'आंतरिक बारात' कहते हैं। यह विवाह पूर्ण रूपेण तिब्बत के सम्राट स्रोङ्चन गंपो की विवाह परंपरा पर आधारित है। इस विवाह का मुख्य आकर्षण 'मौला रिन्छेन ठेङ्वा' यानी विवाह संभाषण रत्न माला, 'थोराप ग्न-चु' यानी अस्सी बाधाएँ और बाह्य एवं आंतरिक बारातियों के मध्य दुर्लभ विवाह गीतों का मुक़ाबला है। इस विवाह की एक विशेषता यह है कि इसमें दुलहन के ज़ेवर 'ताक्चे-अली' (पेराक) की क़ीमत तीन या चार साल का एक घोड़ा तथा इसके ऊपर 'पेराक' की गुणवत्ता देखकर कुछ नक़दी देकर चुकाते हैं। बौद्ध धर्म के सात रत्नों में से एक रत्न 'घोड़ा' होने की वजह से उसे 'क़ीमत' के रूप में लेने की प्राथमिकता रहती है।

बारात प्रस्थान

विवाह की तिथि से दो दिन पहले बारात में शामिल होने वाले सभी लोगों को सूचित

कर दिया जाता है, ताकि घोड़ों और बारातियों के लिए समय पर आवश्यक सामग्री का प्रबंध हो सके। बारात में एक योग्य 'मोलवोन' (वक्ता) का होना आवश्यक होता है, चाहे छोटी शादी हो या बड़ी शादी। बारात में दो सेवादारों का होना भी आवश्यक होता है, ताकि बारातियों की व्यस्तता के समय घोड़ों की सेवा तथा सामानों की चौकीदारी हो सके। इसके अतिरिक्त बड़ी शादी में कम से कम बारात के दो प्रभारी होते हैं, जो बारात के आय-व्यय का हिसाब रखते हैं, बारातियों को दिशा-निर्देश देते हैं, लड़के वालों के साथ हमेशा संपर्क में रहते हैं तथा लड़की वालों के निर्देशों का पालन करते हैं। इन्हें स्थानीय भाषा में 'दुतमी' कहते हैं। निर्धारित तिथि को दोपहर से पहले सभी बाराती एकत्र हो जाते हैं। ये पारंपरिक रंग-बिरंगी वेशभूषा से सुसज्जित होते हैं। वेशभूषा में 'बुरगु' (हैट या टोपी), 'ज्ञजी' (बहुत ही क़ीमती रेशमी चोलू), 'बुरे-गुङ्कर' (दो तरफ़ से गहरा लाल तथा बीच से सफ़ेद रेशमी कपड़े से बना लंबा शाल), 'लहाम्' (स्थानीय जूता), कंधे से बगल तक लाल एवं नीले रंग की पट्टी, जो छाती एवं पीठ पर क्रॉस की आकृति बनाती है, कमर से लटकता हुआ खोल युक्त चाकू, गले से लटकता हुआ चाँदी का चौकोर संपुट, एक मंत्रमाला तथा 'उलतिक' नाम का पन्ना और मूँगे का हार सम्मिलित होते हैं। सभी बाराती के एकत्र होने पर बारात का मुखिया 'ञेरपोन' मंगल गीत गाता है। तत्पश्चात् सभी सदस्यों को एक-एक सफ़ेद चौकोर कपड़ा देता है, जिसे 'बुरगु' में लगाया जाता है। इससे 'बाह्य बारातियों' की पहचान बनी रहती है। 'ञेरपोन' द्वारा टोपी धारण करने का गीत शुरू करते ही सभी बाराती सफ़ेद चौकोर कपड़े से सुसज्जित 'बुरगु' पहनते हैं तथा बारातियों की गतिविधियों की प्रक्रिया शुरू हो जाती है।

बारात में तीन गाँठों से युक्त एक सुसज्जित बाण होता है। इस बाण में हरे, नीले, पीले, सफ़ेद और लाल रंग के रेशमी कपड़ों की पट्टियाँ लगी होती हैं, जो दूल्हा और दुलहन के परिधानों का प्रतीक होती हैं। इनके अतिरिक्त बाण में लगा गिद्ध का पंख केश का प्रतीक, काँसे का गोल एवं चपटा छोटा थाल मुख मंडल का प्रतीक, भेड़ के घुटने की हड्डी का छोटा हिस्सा वंश का प्रतीक तथा ऊन का बटा हुआ धागा कमर की पेटी का प्रतीक होता है। बाण के सिरे का छिद्र, जिस पर धनुष का धागा कसते हैं, बालों की माँग का प्रतीक और बाण की नोक में लगा नुकीला लोहा जूते का प्रतीक होता है। यह बाण हमेशा दुलहन को लाने वाले एक युवक के हाथ में रहता है। उस युवक को 'बक-ठिता' कहते हैं। इसका चयन भी चोवा (पंडित) करता है। वह जंतरी देखकर बताता है कि इसकी उम्र और राशि क्या होनी चाहिए। 'बक-ठिता' को एक विशेष परिधान से अलंकृत किया जाता है। सिर पर पाँच रंग के कपड़ों का पग लगाया जाता है, जो रेशमी कपड़े की पाँच रंगीन पट्टियों से सुसज्जित होता है।

गाँव में कोई देवता या अपना कुल देवता हो तो उसकी पूजा की जाती है। देवता से सुरक्षा सूत्र लिया जाता है। बारातियों द्वारा मंगलगान किया जाता है। दोपहर भोजन करने के बाद ढोल व शहनाई वादन सहित बारात अपने गंतव्य की ओर निकल पड़ती है। मार्ग में पड़ने वाले दूसरे गाँवों की औरतें छांग व दारू से भरी बोतलें, दही से भरे पतीले एवं चाय से भरी थर्मसें लेकर बारात के स्वागत के लिए गोल दायरे में खड़ी रहती हैं। उनके पास सबसे पहले

'दुतमी-वा' पहुँचते हैं। वे उनकी बोतलों की गर्दन पर 'खदक' बाँधते हैं तथा कुछ पैसे भेंट कर उनका सम्मान करते हैं। वहाँ पर देवता को पूजने के बाद चाय-पान कर बाराती आगे बढ़ते हैं। दुलहन के गाँव में भी औरतें चाय, दारू व दही लेकर स्वागत के लिए खड़ी होती हैं। स्वागत करने वालों को पहले की तरह 'खदक' व कुछ पैसे बतौर इज़्ज़त देते हैं। यहाँ पर बारातियों द्वारा नाच-गान भी किया जाता है। 'बाकलेन' (बड़ी शादी) की स्थिति में आंतरिक बारातियों (लड़की वाले) द्वारा अस्सी बाधाओं के रूप में पत्थर की अस्सी सीमा बुर्जियाँ लगाई जाती हैं। बाह्य बाराती जब सीमा बुर्जी की तरफ़ बढ़ते हैं तो उधर से आंतरिक बाराती भी अपने बैंड-बाजे के साथ हाथ में तलवार लिए हुए धीमी गति में नृत्य करते हुए स्वागत के लिए आते हैं। सीमा बुर्जी के पास दोनों पक्ष के बाराती मिलते हैं। वहाँ पर गीत के माध्यम से आंतरिक पक्ष का 'मोलवोन' प्रश्न करता है तथा बाह्य पक्ष का 'मोलवोन' एवं बाराती गीत के माध्यम से जवाब देते हैं। इस प्रकार हर जवाब के बाद एक बुर्जी को गिराते जाते हैं। धीरे-धीरे विवाह गीत का मुक़ाबला करते-करते सभी अस्सी बाधाओं को पार करके बाह्य बाराती घर के दरवाज़े तक पहुँचते हैं। वहाँ एक और बड़ी बाधा उत्पन्न होती है। यहाँ बाधा उत्पन्न करने वाली दुलहन की कुँवारी सहेलियाँ होती हैं। ये अंदर से दरवाज़ा बंद कर देती हैं। 'मोलवोन' गीत के माध्यम से दरवाज़ा खोलने का आग्रह करता है। लड़कियाँ भी गीत के माध्यम से ही उसके आग्रह का जवाब देती हैं। काफ़ी देर तक सवाल-जवाब के बाद बात पैसे पर आ जाती है। इस तरह लड़कियाँ दरवाज़ा खोलने के लिए काफ़ी पैसे ले लेती हैं। पुराने ज़माने में दरवाज़ा खोलने के बदले में दरवाज़े के बराबर एक 'गो-रे' (सफ़ेद कपड़ा) दिया जाता था, परंतु अब पैसे ने 'गो-रे' का रूप ले लिया है। दरवाज़ा खुलते ही बाराती अंदर प्रवेश करते हैं। उनका फूल एवं सत्तू से स्वागत किया जाता है। गली से गुज़रते हुए जवान बारातियों की लड़कियाँ छिपकर पिटाई भी करती हैं। अंदर पहुँचने पर लड़की वाले सभी बारातियों का 'खदक' पहना कर स्वागत करते हैं।

इसके बाद बारातियों की जलपान से सेवा की जाती है। थोड़ी देर बाद एक बड़े कमरे में लड़की के सारे रिश्तेदार व अन्य आमंत्रित लोग एकत्र होते हैं। कमरे में मध्य की पंक्ति में दुलहन का पिता, भाई, मामा व अन्य रिश्तेदार होते हैं तथा उसके साथ लगती आमने-सामने दो पंक्तियों में बाराती तथा अन्य पंक्तियों में गणमान्य मेहमान होते हैं। सर्वप्रथम लड़की के माता-पिता को 'दरहा' (इज़्ज़त के तौर पर भेंट की जाने वाली वस्तु) के रूप में पूरियाँ व घी तथा मामा और भाई को बकरे के मांस का कुछ हिस्सा दिया जाता है। इन्हें एक-एक विशेष मांगलिक 'अशी' भी भेंट की जाती है। इसके पश्चात् ख़ास रिश्तेदारों को चार छोटे बटूरू, गुड़ का एक ढेला, पनीर का एक टुकड़ा तथा मक्खन का एक छोटा पेड़ा भेंट किया जाता है, जो एक हिस्सा होता है। इस प्रकार के हिस्से नज़दीकी रिश्तेदारों को पचीस, उससे दूर के रिश्तेदारों को पंद्रह, फिर दस तथा अन्य सभी रिश्तेदारों एवं मेहमानों को आठ-पाँच भेंट किए जाते हैं। रिश्तेदारों द्वारा लड़की को तोहफ़ा भी 'दरहा' के आधार पर दिया जाता है। इस तरह सभी उपस्थित लोगों को 'खदक', 'अशी' एवं 'दरहा' भेंट किए जाते हैं। इस बात का ख़ास ख्याल

रखा जाता है कि किसी को कुछ देना रह न जाए। यदि किसी को भूल से उपर्युक्त चीज़ों में से कोई चीज़ छूट जाए या रिश्तेदारों में पक्षपात हो जाए तो शराब पीकर लड़की वालों की ख़ूब खिंचाई की जाती है। इस औपचारिकता के पूर्ण होने के बाद 'मोलवोन' व्याख्यान के लिए वहाँ उपस्थित लोगों के बीच में खड़ा हो जाता है।

व्याख्यान शुरू करने से पहले उसे एक विशेष मांगलिक 'अशी' से सम्मानित किया जाता है और वह बहुत ही विनम्र भाव से दोनों हाथों को जोड़कर प्रणाम करता है। तब वह लामाओं द्वारा पूजा पाठ में प्रयुक्त मक्खन, चीनी और सत्तू से निर्मित प्रसाद के तीन स्तूप, जिन्हें 'डाङ झे छोतपा' कहते हैं, लोगों के बीच में लाता है तथा मेज़ पर सजा कर रखता है। उसके पश्चात् प्रसाद से संबंधित गीत गाता है। गीत के बाद प्रसाद को तीनों पंक्तियों में घुमाया जाता है। लोग 'डाङ-झे छोतपा' से थोड़ा-थोड़ा प्रसाद निकालकर खाते हैं। प्रसाद की एक थाली 'माक-डाल' यानी बड़े घर वालों की पंक्ति, जिसमें सबसे आगे नोनो और चोवा बैठे होते हैं, में देते हैं। दूसरी थाली, बीच की पंक्ति, जिसमें गृहस्थ लामा व उपासक बैठे होते हैं, को दी जाती है। तीसरी थाली, 'डुक्चु-डाल' यानी छोटे घर वालों की पंक्ति में दी जाती है, जिसमें सबसे आगे बुछैन का मुखिया बैठा होता है। यह प्रथा स्पिति की पिन वैली में प्रचलित है। स्पिति के अन्य क्षेत्रों में प्रसाद को स्तूप का आकार नहीं दिया जाता, बल्कि मक्खन, सत्तू और चीनी का मिश्रण बनाकर किसी विशेष पात्र में धूप के साथ सभी पंक्तियों में घुमा कर खिलाया जाता है। मेहमानों की बैठने की पंक्ति भी पिन वैली से भिन्न है। यहाँ किसी वर्ग विशेष की कोई अलग पंक्ति नहीं होती। विवाहोत्सव में उपस्थित लोगों को प्रसाद खिलाने के बाद 'मोलवोन' पंक्तियों के बीच खड़े होकर विवाह से संबंधित 'मौला' (व्याख्यान) शुरू करता है :-

ओम नमस्कार! नमस्कार। उम्मा। उम्मा। जू-जू! जू-जू! आज का दिन बहुत शुभ है। भूमि पर धूप की गर्मी भी ठीक है। आज की तिथि भी शुभ है। अंतरिक्ष में त्रिसंपन्न से युक्त नक्षत्र एकत्र हैं। शकुन मंगलमय न हो, ऐसी कोई विशेष बात नहीं है। नमस्कार! नमस्कार!

गुरु उच्च धर्मावलंबी हैं। मध्य में कोई रोग नहीं है। शिष्य और भदंत खुशहाल न हो, ऐसी कोई बात नहीं है। राजा का शिरस्कवच उच्च है, बाहर से कोई शत्रु नहीं है, प्रजा समृद्ध है, इसमें कोई शक नहीं है। माता और पिता सुखी हैं। घर में लक्ष्मी विद्यमान है। संतान, संपत्ति एवं समृद्धि में वृद्धि न हो, ऐसी कोई बात नहीं है। इस क्षेत्र में धर्मगुरु और राजा के आलोक के आधार पर सुख और आराम निर्भर है। लोग सुख, आनंद और आराम से जी रहे हैं।

राजा को गंभीर मानव धर्म से राज अधिकार प्राप्त है तथा वह धर्म से ही धर्मासन पर आसीन है। मानव धर्म से प्राप्त राज अधिकार में राजदंड सोने के जुआठे की भाँति भारी होते हुए भी हल्का एवं उचित होता है। गंभीर देव धर्म से धर्मासन पर अधिष्ठित गुरु के धर्म का नियम रेशमी धागे की गाँठ की तरह नाज़ुक होते हुए भी कसा हुआ होता है। इस तरह सोलह विशुद्ध मानव धर्म और देव धर्म के दस कुशल कर्मों में प्रयत्नशील रहना चाहिए। सर्वप्रथम पिता, पिता से पुत्र तथा फिर इसका पुत्र विद्या में पारंगत हुए। पुत्र के लिए पुत्रवधू।

जिस तरह कुल्हाड़ी के लिए बिंडा (हत्था) तथा बिंडे के लिए कुल्हाड़ी की आवश्यकता

होती है, उसी तरह पुत्र के लिए बहू की आवश्यकता होती है। अमुक पति-पत्नी ने अपने पुत्र के लिए अमुक की बेटी का हाथ माँगा था। 'छू-ल डो-न छु-जोम तोङ पा मेत' (पनिहारे से खाली बर्तन लौटने की नौबत न आना)। 'छाग छ़ाल वी गो-ल दो मेत' (प्रार्थी के सिर पर पत्थर की नौबत न आना) तथा 'ता-फो गो गुक, स्राव खे लेन' (घोड़े द्वारा सिर झुका कर लगाम स्वीकार करना) जैसी कहावतों के अनुसार अमुक अपनी बेटी देने को राज़ी हुए। दोनों पक्ष ज्योतिष विद्या में पारंगत 'ओनपो'/चोवा के निर्देशानुसार आज के इस शुभ दिवस पर विवाह रचाने के लिए सहमत हुए। इस शुभ दिवस पर वधू के मामाश्री एवं सभी महत्त्वपूर्ण रिश्तेदार तथा वर पक्ष के रिश्तेदार उपस्थित हैं। इस प्रकार मोलवोन सभी का स्वागत करते हुए प्रकृति की बनावट, गुरु ज्ञान, राजा के अधिकारों, तीर्थों, अनाज, मदिरा, कैलाश पर्वत, रिश्तेदारों का संबंध ख़ून से होना, मनोकामना, अमृत व इतिहास, ब्राह्य जगत का निर्माण, नरक-स्वर्ग आदि के बारे में कुछ-कुछ बताते हुए लंबा व्याख्यान देता है।

व्याख्यान के पश्चात् स्पिति में पिन वैली को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में इसी समय दुलहन के लिए तोहफ़े भेंट करते हैं। सर्वप्रथम लड़की के माता-पिता अपनी बेटी को तोहफ़ा भेंट करते हैं। तोहफ़ा भेंट करते हुए 'मोलवोन' माता-पिता की ओर से लड़की को संबोधित करते हुए कहता है कि भविष्य में माता-पिता रूपी सास-ससुर की सेवा मन से करें। अपने पति देव को भगवान का रूप मानें। आस-पड़ोस से मिलकर रहें व अच्छा व्यवहार करें। मायके में लड़की के गुणों का बखान होता है, ससुराल में बहू के अवगुणों की चर्चा होती है। सुबह चिड़ियों की चहक के साथ उठें तथा रात को देर से सोएँ। स्वयं सादा खाना खाएँ तथा दूसरों को अच्छा भोजन दें।

तोहफ़े के रूप में घर वालों की ओर से गहने, नक़दी और कपड़े दिए जाते हैं। फिर भाई, मामा और सभी आमंत्रित परिजनों द्वारा तोहफ़े दिए जाते हैं। ज़्यादातर लोग तोहफ़े के रूप में कपड़े व नक़दी देते हैं। मायके वालों की ओर से लड़की को बर्तन तथा खेती के औज़ार दिए जाते हैं। इस मध्य बारात के साथ घोड़ों की सेवा के लिए आए हुए लोग, जो दो या तीन होते हैं, वे घोड़ों को पानी पिलाने के बहाने 'सोवा' (लकड़ी का पात्र) छिपा लेते हैं और लड़के के घर ले जाते हैं। लड़की वालों को 'सोवे' की चोरी हो जाने का पता लग जाने पर वे पैसे देकर 'सोवा' वापिस ले लेते हैं। वर्तमान समय में 'सोवा' के अतिरिक्त अन्य सामान, जैसे— गलीचा या काँसे-तांबे का बर्तन चोरी किया जाता है।

दुलहन को तोहफ़े भेंट करने के बाद नाच-गाने का दौर शुरू हो जाता है। सबसे पहले 'ञेरपोन' (मोलवोन) और उसके कुछ साथी 'गहर' नृत्य करते हैं। यह धीमी गति का नृत्य होता है। इसके बाद दूल्हा-दुलहन का 'गहर' नृत्य होता है। तत्पश्चात् सभी लोग धीमी और द्रुत गति के नृत्य करते हैं। लोग नृत्य करने वालों पर ख़ूब नोट बरसाते हैं तथा नर्तक इन पैसों को नृत्य के अंतिम क़दम के बाद वादकों और गायकों को दे देते हैं। ये वादक एवं गायक अपनी विधा के विशेषज्ञ होते हैं। स्पिति में अब मात्र चार-पाँच वादक विशेषज्ञ ही रह गए हैं। इस तरह के कलाकारों की संख्या घटती जा रही है। स्पिति के लोक नृत्य और लोक गीतों की

संस्कृति को सुरक्षित रखने में इनका बहुत योगदान है। इसलिए इस कला को बढ़ावा देना बहुत ज़रूरी है। अस्तु, दूसरे दिन गाँव वाले बारातियों को अपने घरों में चायपान के लिए ले जाते हैं। चायपान का दौर ख़त्म होने पर गाँव की लड़कियाँ दुलहन के बाल धोती हैं। बाल धोने के लिए भी लड़कियों को पैसा देना पड़ता है। इसके बाद दुलहन को कपड़े व गहने पहनाए जाते हैं। दुलहन को तैयार करने के बाद घर के मुख्य कमरे में लाया जाता है। वहाँ पर वह कमरे को प्रणाम कर अपने परिवार से रोते हुए विदा लेती है। दुलहन की ओर से माँ को बतौर दूध की क़ीमत कुछ नगदी छोड़ी जाती है और दुलहन को 'शो-हो-हो' की गूँज के साथ बाहर ले जाते हैं। बाहर किसी खुले क्षेत्र में डोली की विदाई हेतु गाँव की महिलाएँ दही, दूध, चाय, छांग व अरक के साथ गोल दायरे में खड़ी होती हैं। दायरे के बीच में 'बक-ठिता', दुलहन और उसकी एक सखी को गलीचे पर बिठाया जाता है। 'ञेरपोन' वहाँ पर खड़ी औरतों की बोतलों एवं दही के बर्तनों से दारू एवं दही के छींटे बायें हाथ की अनामिका से आकाश की ओर फेंक कर इष्ट देव की पूजा करता है। 'दुतमी' अर्थात् बारातियों के ख़ज़ांची सभी औरतों की बोतलों पर एक-एक 'अशी' (सफ़ेद रेशमी कपड़ा) बाँधते हैं तथा शगुन के तौर पर पाँच-दस रुपये देते हैं। इस बीच लड़की वालों की 'आंतरिक बारात' भी बाहर आती है। इसमें दुलहन का भाई भी शामिल होता है, जिसके हाथ में लक्ष्मी का प्रतीक एक सुसज्जित बाण होता है। वह लक्ष्मी का आह्वान कर 'याङ-खु याङ-खु' कहता हुआ बाण लेकर दुलहन और पूरे पंडाल के तीन चक्कर काटता है। लोगों का कहना है कि ऐसा इसलिए किया जाता है, ताकि गृहलक्ष्मी कन्या के साथ न जाए। यह प्रथा पिन वैली को छोड़ कर स्पिति के अन्य सभी क्षेत्रों में प्रचलित है।

इसके बाद सभी बाराती अपने-अपने घोड़े पर सवार हो जाते हैं। इस बीच गाँव का लुहार आता है और दुलहन और 'बकठित' के घोड़े के पैर बाँध देता है। रिवाज के अनुसार वह इसे तब तक नहीं खोलता, जब तक उसे 'नेग' के पैसे नहीं मिलते। इसके पश्चात् बारात ख़ुशी-ख़ुशी लौट आती है।

पिन वैली में दुलहन को घर वालों की ओर से कपड़े, पैसे एवं अन्य तोहफ़े विदाई के दिन दिए जाते हैं। यहाँ दोपहर के समय दुलहन की तैयारी शुरू हो जाती है। दुलहन के बाल धोना, कपड़े व गहने पहनाना, घर को प्रणाम करना, सब स्पिति के अन्य क्षेत्रों की भाँति ही है। जब दुलहन का घर से निकलने और माता-पिता से बिछुड़ने का समय आता है तो माँ की हालत वियोग की पीड़ा से ख़राब हो जाती है। उस समय 'ञेरपोन' माँ के हाथ में एक सुसज्जित बाण को थमाते हुए यह गीत गाता है :—

सुङ! ज़ुगु छ़ो सुम चिक बांगमी कुर-ज़ुग डा
छालतोंग ठामो चिक बांगमी सालाम डा।
दार छ़ोन नेई डा चिक बांगमी नमज़ा डा
बलकुद सुमडिम चिक बांगमी किरा डा।
म्रेलोङ कारपो चिक बांगमी दुङ शुल डा
मेलोङ कारपो चिक बांगमी शलतोङ डा।

चेड़ो डुजी चिक बांगमी ऊई-टा डा
दिवु चेंङा चिक बांगमी सोकलाम डा।

इस तरह माँ के हाथ में प्रतीक बाण देकर दुलहन को हॉल में ले जाया जाता है। हॉल में 'जेरपोन' द्वारा शादी का 'मौला' (व्याख्यान) सुनाया जाता है। उसके पश्चात् दुलहन को तोहफ़े देने का सिलसिला शुरू होता है। तोहफ़े में दिए गए कपड़ों व अन्य सामग्रियों को बारातियों के हवाले कर दिया जाता है। नगदी की गणना करके ख़ज़ांची के हाथ में दे दिया जाता है तथा नगदी को लड़की के 'सोन्चोक' (धार्मिक अनुष्ठान) में ख़र्च करने के लिए कहा जाता है। कपड़ों में से एक शॉल दुलहन की ओर से माँ को 'डिलेन' के रूप में दी जाती है। इसके पश्चात् बारात रवाना हो जाती है। रास्ते में जितने भी गाँव पड़ते हैं, हर गाँव में स्वागत होता है। बारात के घर पहुँचने पर गाँव वालों द्वारा इनका घर के बाहर स्वागत किया जाता है। वहाँ पर दुलहन घोड़े से उतरने से इनकार करती है। तब रिवाज के अनुसार देवर उसे उतरने के लिए 'नेग' के रूप में पैसे देता है। बाकलेन (बड़ी शादी) की स्थिति में स्वागत कक्ष में लामा लोग बारात के साथ आई अमानुषी ताकत के दमन हेतु इष्टदेव का मुखौटा पहन कर नृत्य करते हैं तथा 'छाड' फेंकते हैं। तत्पश्चात् वधू का गृह प्रवेश होता है। छोटी शादी की स्थिति में दरवाज़े पर एक लामा धूप-दीप एवं मंत्र के माध्यम से अमानुषी शक्तियों का निवारण करता है तथा गृह प्रवेश करता है। रात को सभी रिश्तेदारों और मेहमानों को एक बड़े भवन में बुलाया जाता है। वहाँ पर दूल्हे को सजाकर लाया जाता है। दूल्हे और दुलहन की पहली बार मुलाक़ात यहीं होती है। सभी लोगों के स्थान ग्रहण करने के पश्चात् 'जेरपोन' फिर से व्याख्यान देता है। इसमें माता-पिता, मामा और रिश्तेदारों द्वारा दिए गए तोहफ़ो और नगदी के बारे में बताते हैं। तत्पश्चात् सभी रिश्तेदार दूल्हे को कपड़े व नगदी भेंट करते हैं। रात को ख़ूब नाचने-गाने का कार्यक्रम चलता है। दूसरे दिन सुबह सवेरे दुलहन पानी भरने जाती है। दुलहन से सबसे पहला काम पानी भरवाना शुभ माना जाता है। इसके बाद रिश्तेदारों के यहाँ मेहमानी में जाते हैं। नज़दीकी रिश्तेदारों में इन्हें पहले मेहमान बुलाने की होड़ लगी होती है। इस तरह पूरे गाँव में दुलहन और उसकी सहेली मेहमानी में जाती हैं। सात दिन के बाद दुलहन के भाई उससे मिलने आते हैं और उसे कुछ दिनों के लिए मायके ले जाने की बात करते हैं। इस तरह भाई की प्रार्थना को स्वीकार करके वर पक्ष वाले बहू को कुछ दिनों के लिए मायके भेज देते हैं। मायके में भी मेहमानी का दौर चलता है। यहाँ कुछ दिन रहने के बाद लड़की सदा-सदा के लिए अपने घर वापिस चली जाती है।

गाँव सगनम, पिन वैली, स्पिति,
ज़िला लाहुल-स्पिति, हिमाचल प्रदेश

(अकादमी द्वारा दिनांक 21 व 22 जून, 2014 को देव सदन, कुल्लू में आयोजित 'जनजातीय सेमिनार' के दौरान पढ़ा गया शोधपत्र)

सिरमौर जनपद की विवाह परंपरा

● आचार्य ओमप्रकाश 'राही'

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन को ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास– चार आश्रमों में विभक्त किया गया है। पचीस वर्ष की ब्रह्मचर्य पूर्ण स्वाध्याय साधना के पश्चात् गृहस्थ आश्रम में प्रवेश का विधान है, जिसके लिए मानव के सोलह संस्कारों में से अति महत्त्वपूर्ण 'पाणिग्रहण संस्कार' से परिष्कृत होना अनिवार्य माना गया है। 'पाणिग्रहण संस्कार' को ही सरल शब्दों में 'विवाह' शब्द से अभिहित किया जाता है। याज्ञवल्क्य आदि स्मृति ग्रंथों के अनुसार विवाह आठ प्रकार के होते हैं– ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस, पैशाच।

समय परिवर्तन के साथ भले ही अब परस्पर प्रेम होने पर सशर्त किए जाने वाले 'गांधर्व विवाह' ही बहुतायत में होने लगे हैं, तथापि सिरमौर जनपद की पारंपरिक विवाह पद्धति पर नज़र डालें तो यहाँ सर्वश्रेष्ठ 'ब्राह्म विवाह', जिसमें वर को निमंत्रित करके कन्या को यथाशक्ति वस्त्रों, आभूषणों से अलंकृत करके वर को दिया जाता है, या फिर जिस विवाह में कन्या वर को 'साथ-साथ धर्म का आचरण करो', यह कह कर दी जाती है, ऐसे 'प्राजापत्य विवाह' की परंपरा देखने को मिलती है। यद्यपि यदा-कदा कन्या का अपहरण करके, जिसे यहाँ 'हार लाना' कहा जाता है, 'राक्षस विवाह' जैसी घटनाएँ भी देखने को मिलती हैं तथा बहुपति व बहुपत्नी जैसी परंपराएँ भी रही हैं, तथापि यहाँ बाहुल्य उपर्युक्त श्रेष्ठ विवाहद्वय का ही रहा है।

इस परंपरा के अनुरूप सर्वप्रथम लड़के की तरफ़ से उसका पिता अपने किसी अन्य रिश्तेदार के साथ अथवा स्वयं ही लड़की वाले के घर जाता है और उनसे उनकी लड़की की अपनी पुत्रवधू के रूप में याचना करता है। ये रिश्ते प्रायः पूर्व परिचित रिश्तेदारियों में अधिक हुआ करते हैं, भले ही कई बार नई रिश्तेदारी में दूर तक भी जाना पड़ता है। लड़की वाले भी पहले से ही यदि भली-भाँति उनसे परिचित हों तो जल्दी बात मान ली जाती है, अन्यथा पहले उनके ख़ानदान, रहन-सहन, आचार-व्यवहार आदि की पूरी जानकारी लेने के बाद ही 'हाँ' की जाती है। संबंध पक्का करने के लिए श्रेष्ठ वंश परंपरा का विशेष ध्यान रखा जाता है। तदुपरांत दोनों पक्षों की तरफ़ से सहमति बन जाने पर यह संबंध पक्का माना जाता है। संबंध पक्का करने के लिए कई बार लड़के वालों को कई-कई चक्कर भी लगाने पड़ जाते हैं और तत्पश्चात् बात पक्की होने पर ही विवाह की अगली प्रक्रिया आरंभ होती है। बात पक्की होने पर विवाह होने

में महीनों ही नहीं वर्षों भी प्रतीक्षा करनी पड़ती रही है, क्योंकि ये रिश्ते बहुत छोटी उम्र में यहाँ तक कि कई बार अपवाद स्वरूप गर्भस्थ शिशुओं के भी निर्धारित कर दिए जाते रहे हैं।

समय आने पर वर तथा कन्या की कुंडली (यदि हो) मिलान करने पर अथवा उनके ग्रह-नक्षत्रादि विचार कर गुण-दोष के आधार पर सब कुछ ठीक होने पर अपने-अपने पुरोहित के माध्यम से विवाह का दिन निश्चित किया जाता है, जिसे 'देस देखाणो' या 'देस खोजाणो' कहा जाता है। विवाह का दिन निर्धारित हो जाने पर उससे पाँच-सात दिन पूर्व वर पक्ष के लोग वधू पक्ष के घर जाकर पंडित पुरोहित के माध्यम से 'कार धरने' की औपचारिकता पूरी करते हैं। इससे पूर्व दोनों पक्षों के लोग शुभ मुहूर्त आदि देखकर 'जेवर' (आभूषण), वस्त्रादि भी तैयार करवाते हैं। 'कार धरने' की प्रक्रिया में कन्या पक्ष के गाँव से बाहर कुछ दूर जल आदि पवित्र स्थान के पास पूजन सहित एक रेखा खींची जाती है, जिसका उल्लंघन तब विवाह होने तक वर-वधू नहीं करते हैं।

विवाह की निर्धारित तिथि की सूचना दोनों पक्षों की ओर से अपने सगे-संबंधियों तथा रिश्तेदारों को 'न्योंगिए' (विशेष संदेश वाहक) द्वारा देकर उन्हें विवाह में आमंत्रित किया जाता है, जिसे 'न्योंग देणा' कहा जाता है। 'न्योंगिया' 'न्योंग' के रूप में उन घरों में हल्दी मिश्रित चावल देता है और विवाह की तिथि भी बताता है।

उधर दोनों पक्ष विवाह की तैयारियों को लेकर अपने-अपने 'दाईचारे' (ग्रामीण) के लोगों की 'खुमली' (बैठक) करके एतदर्थ परस्पर सहयोग का आग्रह करते हैं। यहाँ नज़र आती है ग्रामवासियों की सहकारिता भावना, क्योंकि इस प्रकार के समग्र आयोजन को वे ग्रामीण बिना किसी पारिश्रमिक के पारस्परिक सहयोग से ही मिल-जुलकर सफल बनाते हैं।

विवाह जैसे मांगलिक-शुभ एवं प्रसन्नता के अवसर पर गीत, संगीत एवं नृत्य जैसे कार्यक्रम का होना स्वाभाविक है। वर्तमान में शहरों में जहाँ भंगड़ा तथा डिस्को जैसे नवीन गीत एवं नृत्य का प्रचलन बढ़ रहा है, वहीं दूसरी ओर गाँवों में अभी भी प्राचीन पारंपरिक गीतों का प्रयोग किया जाता है, जो हमारी सांस्कृतिक परंपरा की बहुमूल्य धरोहर हैं। ये गीत मंगल गीत, संस्कार गीत, आशीर्गीत, हास-परिहास गीत आदि भेद से अनेक प्रकार के होते हैं। इनका प्रयोग उदाहरण स्वरूप आगे प्रसंगानुसार किया जा रहा है।

वर-कन्या दोनों को तैयार करने की प्रक्रिया में सबसे पहले 'बटना मलने' (उबटन लगाने) की रस्म निभाई जाती है और यहीं से आरंभ हो जाता है विवाह गीतों का यह सिलसिला, जो विवाह संपन्न होने तक चलता रहता है। वर-कन्या के संस्कार एवं निखार हेतु उन्हें 'बटना' (उबटन) लगाया जाता है। इस अवसर पर शनि, राहू, केतु जैसे क्रूर ग्रहों से रहित नाम वाली पाँच अथवा सात महिलाएँ वर एवं कन्या को उबटन मलती हैं तथा इस प्रकार गीत गाती हैं :—

बटना मलिए रे के दलिए नूर चढ़ाइए
बाने जी रे अंग-अंग मल-मल लगाइए।
ले आओ कटोरा बटने दा
बटने री मलिया के जणिया?

आ हो कि मल रही सुहागणियाँ
बटने री मलिया एक जणिया
आ हो कि मल रही सुहागणियाँ।

इस प्रकार इस गीत को 'आ हो कि मल रही 2-3-4-5 जणिया' क्रम से गाया जाता है तथा इस अवधि में महिलाएँ वर-कन्या (दोनों पक्षों में) को बटना मलती जाती हैं।

इस विधि से बटना मलने के पश्चात् वर-कन्या को नहलाया जाता है तथा इस प्रकार गीत गाया जाता है :-

बिन बादल से बिन वर्षा से
किने म्हारे आँगन चीकड़ रे किया?
किने डोलाया रे पाणी?
माताजी रो पिताजी दे लाडले बान न्हाणे रे
हामने डोलाया पाणी रे।

इस तरह नहलाने के पश्चात् दही, दूध, तेल मिलाकर वर-कन्या पर छिड़कते हुए पवित्रीकरण की इस प्रक्रिया में महिलाएँ इस प्रकार गाती हैं :-

कहाँ से ले आऊँ दूध और दहियाँ?
कहाँ से ले आऊँ तेल फले?
गुजरी से मैं दूध मँगाया
ले आओ री गुजरी दूध रो दहियाँ
और ले आओ रे तेल।

इस प्रकार के गीत गाते हुए वर-कन्या को बटना मलने तथा नहलाने की प्रक्रिया पूरी की जाती है।

विवाह प्रसंग में मातुल (मामा) की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। मामा चाहे वर पक्ष का हो या कन्या पक्ष का, दोनों को पूरा आदर-सम्मान दिया जाता है। अपनी सामर्थ्य के अनुसार कई घरों में मामा अपने परिजन तथा इष्ट मित्रों के साथ भी विवाह में शामिल होता है और वर पक्ष का मामा 'धाम' की भी व्यवस्था करता है। वैसे सामान्यतः मामा अपनी सामर्थ्य के अनुसार वर अथवा कन्या के लिए वस्त्राभूषणादि को व्यवस्था करता है। मामा के पहुँचने पर सर्वप्रथम स्थानीय वाद्ययंत्रों पर लोक धुन के साथ उसका स्वागत अभिनंदन किया जाता है और तब वह वैवाहिक प्रक्रिया में सम्मिलित होता है।

पूर्व वर्णित उबटन तथा स्नान के उपरांत वर एवं कन्या को अपने-अपने पक्ष में 'वेदी' में बैठाकर पूजन करवाया जाता है, जिसे 'शाँत करना' कहते हैं। 'शाँत' के इस प्रकरण में मामा की भूमिका महत्त्वपूर्ण रहती है। इस अवसर पर भी महिलाएँ गीत गाती हैं, जिनमें 'शाँत' में प्रयुक्त सामग्री को संबोधित किया जाता है :-

शाँते गाय रे माटे ए किने रे मँगाय?
बाने रे पिता ने पंडत बुलाए [illegible] रे [illegible]।

शाँते गाय रे हल्दी ए किने रे मँगाय?
बाने रे पिता रे घर सुहावने एने रे मँगाय
शाँते गे रा गुगला...
शाँते गे रा कलश... ।

इस तरह सामग्री को अभिलक्षित कर गीत गाए जाते हैं। शाँत की समाप्ति पर महिलाएँ 'कमल नेत्र' आदि अन्य भजन मंगल गीत के रूप में गाती रहती हैं।

निश्चित मुहूर्त के अनुसार वर को 'शिरा' (सेहरा) पहनाया जाता है। इस अवसर पर भी मंगल गीत चलते रहते हैं। जब बारात प्रस्थान का समय आता है तो महिलाएँ फिर मंगल गीत गाती हुई शुभकामनाएँ देती हैं। श्रीराम जी के स्वयंवर को याद करती हुई महिलाएँ इस प्रकार गाती हैं :–

धन-धन (धन्य) बाना तेरी पागड़ी
धन-धन पागड़ी रे सूत।
धन-धन तेरे माता-पिता को
जिनके घर जनमे सपूत।
रामजी की बारात सजी है
जनकपुर से आया लिफाफा।
रामचंद्र जी स्वयंवर जीते
उन्होंने बारात मँगाई है।

इस प्रकार महिलाओं की शुभकामनाओं के साथ बारात प्रस्थान करती है।

तत्पश्चात् जब बारात कन्या के ग्राम में पहुँचती है तो वहाँ स्वागतार्थ 'ध्याइणें' (गाँव की लड़कियाँ) गाँव से कुछ बाहर तक आती हैं, जहाँ पहले ही 'कार धरी' होती है। इन कन्याओं के पास 'लाड़ा' (वर), 'सापालड़ा' (वर का भाई) तथा पंडित के लिए हाथ में दूध के गिलास तथा मालाएँ होती हैं। मालाओं द्वारा अभिनंदन करने के पश्चात् कन्याएँ उन्हें दूध पिलाती हुई गीत द्वारा सतर्क करती हैं :–

म्हारे महलो गे भीड़ी-भीड़ी गलियाँ
रे बाना चौकस रहियो।
म्हारे महलो गे ऊचे-ऊचे पैडें
रे बाना चौकस रहियो।

वहाँ की समग्र औपचारिकताओं को पूरा करने के पश्चात् जब बारात किसी आँगन में बैठ जाती है तो एक ओर महिलाएँ मंगल गीत गाती हैं तो दूसरी ओर 'ध्याइणें' हास-परिहास पूर्ण गीत 'शिठणे' गाकर बारातियों का उपहास करती हैं :–

हमने नी जाणा बरातु रे बी आवणा
जांगलो दा सातरा लाय राखो थी।
हमने नी जाणा बरातु रे बी आवणा

सूँरी रा दूध मँगाए राखो थी।

एक और हास्य-व्यंग्य देखिए :–

बराती आए हार के रे हार के

बैठे टाँगे पसार के।

इनकी बुआ नो बलाओ, इनकी टाँगे रे मलाओ

इनकी दादी नो बलाओ, इनके पाँव रे धलाओ।

इस प्रकार हास-परिहास पूर्ण व्यंग्य गीतों द्वारा बारातियों के साथ हँसी-मज़ाक चलता रहता है।

उधर बारात कन्या पक्ष के गाँव पहुँचती है तो इधर वर पक्ष में वर की माता गाँव की महिलाओं को 'पुड़ुआ' (महिला नृत्य) का निमंत्रण देती है। शाम को गाँव की महिलाएँ इकट्ठी होकर इस प्रकार गाती हुई उस घर में प्रवेश करती हैं :–

बाने री माता न्योंगणे नो चली है

जय-जय कार आओ बीबी स्यारन।

इस प्रकार के गीत गाती महिलाएँ विवाह सदन में प्रवेश करने के पश्चात् लगभग सारी रात नाचती रहती हैं। उनका यह शुभकामनाओं भरा गीत अवलोकनीय है :–

झमाझम होवे रे संइया इस घर शादी।

झमाझम आवे रे संइया इस घर डोले।

इस प्रकार के कुछ अन्य गीतों के साथ नृत्य करती महिलाओं को जब घर की मुख्य स्त्री बधाईस्वरूप पाँच-दस अथवा सामर्थ्यानुसार अधिक रुपये भी प्रदान करती है तो महिलाएँ आशीर्वाद स्वरूप यह गीत गाती हैं :–

आय बादले छाँय, छाँय रे नारणा।

दश दिते रुपये शिरो कोलगे लाय

लाय रे नारणा।

तेरे जाणी बागो दे धोले चुगो रे घोड़ी

घोड़ी रे नारणा।

म्हारे होय चेई हीसे तेरे पोचे रे जोड़ी

जोड़ी रे नारणा।

इस प्रकार के विविध गीतों पर नृत्य करती महिलाएँ विवाह का पूरा आनंद प्राप्त करती हैं।

उधर बारात कन्या के गाँव पहुँची होती है तो वहाँ जलपान के पश्चात् मुहूर्त के अनुसार लाड़ा कन्या के गृहद्वार पर बने 'माँडे' को छूता है। 'माँडा' छूना एक प्रकार से स्वयंवर की प्रक्रिया (लक्ष्यभेद) का परिचायक कहा जा सकता है। 'माँडा' भी मुहूर्त विशेष में तैयार करवाया जाता है। तब उसे मुख्य द्वार पर ऊँचाई पर टाँगा जाता है, जिसे वर को तलवार से छूना होता है। क्योंकि यह काफ़ी ऊँचाई पर होता है, अतः इसे सरलता से छुआ नहीं जा सकता,

अतः वर को उनकी ओर का कोई व्यक्ति कंधे पर उठाता है और तब वर उसे तलवार से छूने का प्रयास करता है। यहाँ भी ग्राम बालाएँ मज़ाक-परिहास करने से नहीं चूकतीं। अतः जैसे ही वर उसे छूने की कोशिश करता है, वैसे ही छत पर बैठी ये बालाएँ उसे ऊपर खींच लेती हैं और ऊपर से कोई पाउडर आदि गिराती हैं, जिससे उसे देखने में असुविधा हो। आखिर दूल्हे को कुछ धनराशि देनी पड़ती है और तब ध्याइणे इस खेल को बंद करती हैं और दूल्हा भी इस औपचारिकता को पूरा करता है।

'मिलणी' (मिलाप) के पश्चात् विवाह मंडप में आकर वर-कन्या जयमाला तथा वरमाला डालकर एक-दूसरे के हो जाते हैं तथा अग्नि को साक्षी मानकर सात फेरे की प्रक्रिया पूरी की जाती है और वर-वधू परस्पर वचनबद्ध हो जाते हैं। इस अवसर पर वर पक्ष द्वारा लाई गई 'सुहाग पिटारी' खोली जाती है, जिसमें 'बरी' (वर पक्ष द्वारा दुलहन के लिए लाई गई प्रसाधन सामग्री) होती है। इस सामग्री में कमियाँ ढूँढते हुए 'ध्याइणे' (ग्राम बालाएँ) इस प्रकार गाती हैं :–

मरीए बरीए रे बरातुओ तुम क्या ले आए?
मरीए बरीए रे ये तो सड़ा हुआ माल ले आए।
और नज़र मेरे सब कुछ आया
कड़ा तो पुराणा ल्याया।
और नज़र मेरे सब कुछ आया
हार-चाक तो पुराणा ल्याया।

इसके पश्चात् 'बरी' में लाई मिठाइयाँ, मेवे आदि वहाँ उपस्थित लोगों में बाँटे जाते हैं तथा दुलहन की सखियाँ उसकी माँग भरती हैं तथा उसे ज़ेवर-आभूषण आदि पहनाती हैं। आभूषणों में 'सुहाग तिल्ली' का विशेष महत्त्व होता है, क्योंकि यह वधू के अखंड सुहाग की प्रतीक होती है। अन्य आभूषणों में चाक, दुरेटु, बाली, मुँदड़ी, गलहार, अँगूठी, पाजेब आदि आभूषण पर्याप्त मात्रा में दुलहन को पहनाए जाते हैं।

'कन्यादान' की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया में जहाँ माता-पिता षष्ठी तत्पुरुष समास के अनुरूप कन्या का दान करते हैं, वहीं इन्हीं के साथ अन्य परिजन तथा सगे संबंधी चतुर्थी तत्पुरुष के अनुसार कन्या के लिए दान देते हैं। परिवार के लोग अपनी सामर्थ्यानुसार लोटा-थाली-गिलास-बंटा आदि बर्तनों के साथ चारपाई-बिस्तर आदि यथासंभव सभी अत्यावश्यक वस्तुएँ दान करते हैं, वहीं अन्य लोग सामर्थ्यानुसार धनदान व वस्त्रदान आदि करते हैं। इस अवसर पर भी महिलाओं द्वारा बराबर गीत गाए जाते रहते हैं।

जब बारातियों को भोजन के लिए बिठाया जाता है, उस समय 'ध्याइणें' एक बार फिर हास-परिहास की फुहारों से भरी 'शिठणे' गाकर ख़ूब ठिठोली करती हैं। सामूहिक रूप से सभी बारातियों को संबोधित करते हुए इस प्रकार व्यंग्य बाण छोड़े जाते हैं :–

बरातु बैठे रोटी खाणे
इनकी बुआ पड़ गई घुघड़िया।

हायड़े करदे मिनती करदे
बकरे सुखदे चार मुइए
उतर जा पणमेसरिया।
लोटे ऊपर लोटड़ी
उसके ऊपर पिप्पलियाँ।
सात सेरा रा पीन लाँदे
आँखें रह गई निक्कलियाँ।

किसी व्यक्ति विशेष का नाम लेकर इस प्रकार 'शिठणी' गाई जाती है :–

मुंडा लाडला रे धोए भातो माँगो आलू
हाय-हाय धोए भातो माँगो आलू।
(नाम लेकर) एरा बैठ रा रे जेरा जाँवटे दा भालू
हाय-हाय जेरा जाँवटे दा भालू।

किसी व्यक्ति की चमकीली आँखें दिखी नहीं कि गा उठी 'ध्याइणें' :–

एसी (नाम) री आखी री म्हारे बेटरी बणाणी
म्हारे बेटरी बणाणी
सारे (उस व्यक्ति के गाँव का नाम लेकर) दी बिकी आवणी।

किसी अन्य व्यक्ति को लक्ष्य बनाकर इस प्रकार हास्य गीत निकलता है :–

थोड़ा खाइयो रे (नाम) थोड़ खाइयो
न तो फाटे जाता पेट
ऊबा बिऊज (अन्य नाम) खिंदड़ा लपेट।

व्यंग्य बाण की एक और छटा देखें :–

बादा भात कोई भी न खावें
बादा भात गाधा खावें।
गाधे रा जूठा कोई न खावें
गाधे रा जूठा (नाम) खावें।

कई बार इस प्रकार के शिठणे इतना अधिक मज़ाक बन जाती हैं कि अत्यधिक शर्मीले स्वभाव के लोग तो भरपेट भोजन भी नहीं कर पाते।

रात्रिकालीन भोजन के बाद बाराती लगभग सारी रात 'नाटी' लगाते हैं, जबकि महिलाएँ 'पुड़आ' नृत्य में मस्त रहती हैं।

सिरमौर जनपद में विवाह का यह सिलसिला लगभग चार दिन चलता है, जिसमें पहले दिन मेहमान आते हैं, दूसरे दिन बारात प्रस्थान कर कन्या ग्राम में निवास करती है, तीसरे दिन बारात वधू को लेकर वापस होती है और चौथे दिन बड़ी 'धाम' का आयोजन किया जाता है। परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं को देखते हुए [illegible] बारात [illegible] लेकिन उसी दिन भी वापस होती है। जो भी हो, विवाह के [illegible] पर [illegible] प्रभाव, [illegible] विदाई [illegible] होता है।

इस अवसर पर स्त्रियाँ इस प्रकार गाती हैं :—

उड़े तो उड़े ऊचे झामे री चिड़िया
अब तो रे मुइए म्हारे परदेशो के जाणा।

दुलहन की ओर से कोई महिला गाती है :—

एब क्यों रोए रे माता मेरी
कल क्यों सामी थी सगाई?
अब क्यों रोए रे पिता मेरे
कल क्यों सामी थी सगाई?
चुपे तो रो रे चुपे ढोली शहनाइया
शुणने तो देओ आमा बापू री शीख।

इस प्रकार के कुछ कारुणिक गीतों के साथ *'बाबुल की दुआएँ लेती जा...'* धुन सहित डोली प्रस्थान कर जाती है और गाँव की महिलाएँ वहाँ 'पुड़आ' नृत्य करती हैं।

दुलहन को लेकर बारात जब वर पक्ष के यहाँ पहुँचती है तो दूर से ही गोलों-पटाखों की आवाज़ सुनकर महिलाएँ गाती हैं :—

अब तो री बाना बागो में पहुँचे
गोले रे धमाके शणाये मेरे रामा।

निकट पहुँचने पर दुलहन के स्वागतार्थ महिलाएँ दूध का गिलास हाथ में थामे आगे जाती हैं और इस प्रकार गाती हैं :—

म्हारा बाना जीत के आया रे म्हारा
बानी जी को जीत के लाया रे म्हारा।

'ध्याइणें' इस प्रकार गाती हैं :—

आई रे मैं तो डोला वेखणे आई
डोले दा क्या वेखणा मैं बानी देखणे आई।
बानी दा भी क्या देखणा
मैं तो बानी दे भाई नू लूटण आई।

वहाँ स्वागत-सत्कार सहित दूध आदि पिलाने के पश्चात् 'लाड़ो', उसके भाई तथा अन्य कुछ विशिष्ट जनों के विवाह के आँगन में पहुँचने पर स्त्रियाँ गाती हैं :—

बाहर निकलो बाने दी माता जी रे माता
त्हारा लाडला ब्याह करी आया रे आया।
बाहर निकलो बाने दी बुआ जी रे बुआ
त्हारा भतीजा ब्याह करी आया रे आया।

इस प्रकार के गीतों के साथ घर पहुँचने पर उनके जलपान व अल्पाहार की व्यवस्था के पश्चात् वधू को गृह प्रवेश करवाया जाता है, जहाँ पुरोहित अपना विधान करता है और महिलाएँ मंगल गीत गाती रहती हैं। लगभग पूरी रात्रि पुरुष वर्ग 'नाटी' में झूमता रहता है तथा

महिलाएँ 'पुड़आ' में मस्त रहती हैं। अगले दिन निमंत्रित रिश्तेदार तथा अन्य संबंधी निमंत्रण प्रक्रिया पूरी करते हैं, जिसे 'न्योंदा डालना' कहा जाता है। गाँवों में सभी की स्थिति को देखते हुए अभी भी केवल दो रुपये इस व्यवहार में देने की प्रथा है। इस अवसर पर महिलाएँ इस प्रकार गाती हैं :–

मामा आया रे न्योंदार हाथी-घोड़े रे सवार
घोड़े बाँधे रे घुड़साल नेउँदा पड़ गया रे।

यदि कोई ऐसा व्यक्ति न्योंदा डाल रहा हो, जिससे हँसी-मज़ाक किया जा सकता हो तो महिलाएँ उससे भी नहीं चूकतीं :–

जीजा आया रे न्योंदार हो के कुत्ती पै सवार
कुत्ती बाँधे रे दरबार इसको डंडे मारो चार।

इस प्रकार शिष्टाचार एवं हास-परिहास का सम्यक् ध्यान रखते हुए गीत-संगीत के मध्य यह प्रक्रिया पूरी की जाती है।

नवागत वधू को उस गाँव की बावड़ी आदि जलस्रोत तक ले जाया जाता है। इस प्रक्रिया को 'छाइंजल' कहते हैं। इसमें वर तथा वधू एक डोर में कमर से बँधे होते हैं तथा दुलहन के सिर पर दो लोटे रखे होते हैं, जिन्हें बावड़ी से भरकर लाना होता है। दुलहन के साथ उसकी पथ प्रदर्शिका के रूप में जेठानी या देवरानी चलती है। इनके ऊपर गाँव की महिलाएँ चादर ताने इन्हें चारों ओर से घेरे जलस्रोत की ओर बढ़ती हैं तथा इस प्रकार गाती हैं :–

आगे-आगे राम चले पीछे लक्ष्मण भाई
उनके पीछे सीता चले जो राजा जनक की जाई।
रामो रों सीया पाणी के चाली।

दुलहन की ओर से इस प्रकार गीत गाया जाता है :–

घोड़े (घड़े) जे माटी रे थागू लोक कुम्हारी बोलला
घोड़े (घड़े) जे लोहे रे थागू लोक लोहारी बोलला।

इस प्रकार के गीत गाते हुए यह जत्था जलस्रोत की ओर बढ़ता है और वहाँ पहुँचकर पुरोहित के निर्देशानुसार वरुण पूजनादि की प्रक्रिया पूरी कर उन कलशों को भरकर दुलहन उन्हें सिर पर उठाए वहाँ 'सिरनी' (मिष्टान्न) बाँटकर जत्थे सहित वापस घर पहुँचती है और वहाँ आकर ये कलश 'सास' को थमाए जाते हैं। गीत-संगीत का यह सिलसिला यहाँ भी निरंतर जारी रहता है और महिला संगीत के अतिरिक्त 'नाटी', 'रासा' की भी धूम रहती है।

इसके बाद विवाह की विशाल 'धाम' का आयोजन होता है। वैसे तो स्वाभाविक रूप से विवाह के सभी दिनों मधुर व्यंजन तथा विशेष पकवान बनाए जाते हैं। 'पटंडा' (विशेष प्रकार के तवे पर पकाई गेहूँ की पतली रोटी, जिसे शक्कर-घी अथवा खीर के साथ खाया जाता है) और 'खीर' सिरमौरी विवाह की विशेष पहचान है। 'पटंडा' पवित्रता तथा शुभ का द्योतक माना जाता है, अतः इसे अवश्य बनाया जाता है और [illegible] जाता है। मीठे में खीर-पटंडा, शक्कर-भात या हलवा बनाया जाता है, [illegible] सब्ज़ियाँ।

सारा भोजन गाँव के स्थानीय रसोइये ही सहयोग की भावना से मिल-जुलकर तैयार करते हैं। भोजन लंबे खेत, खलिहान या आँगन में पंक्तियों में बैठकर किया जाता है। सौ-सौ व्यक्तियों की एक ही लंबी पंक्ति बैठती है और भोजन पत्तलों में परोसा जाता है। शक्कर-भात अथवा खीर के साथ शुद्ध देसी घी प्रचुर मात्रा में दिया जाता है। घी देने वाले व्यक्ति के हाथ में घी का एक छोटा बंटा अथवा बड़ी लोटड़ी होती है और वह पंक्ति के एक छोर से दूसरे छोर तक बिना धार तोड़े घी देता रहता है। इस तरह यद्यपि काफ़ी घी धरती पर गिरकर बेकार भी चला जाता है, किंतु इसे आन-बान का प्रतीक समझा जाता है। वर्तमान परिस्थितियों में यह सत्य अविश्वसनीय लगता है, किंतु यह है एकदम सच। इन पंक्तियों के लेखक के पिता के विवाह में ग्यारह टीन शुद्ध घी (11x16=176 किलो) लगना इस सत्य का प्रबल उदाहरण है।

बड़ी 'धाम' में वर पक्ष की ओर से मांसाहारी लोगों के लिए मांस की विशेष व्यवस्था की जाती है। इस निमित्त बकरों को प्रचुर मात्रा में काटा जाता है। बकरे भी जितने बड़े तथा स्थूल हों, देने वाले की उतनी ही अधिक शान समझी जाती है। शाकाहारी लोगों के लिए इस दिन विशेष सब्ज़ियों के साथ पूड़े या जलेबी आदि की व्यवस्था भी की जाती है।

इस सुस्वादु 'धाम' के पश्चात् एक बार फिर गीत-संगीतमय 'पुड़ुआ' तथा 'नाटी' का दौर चलता है। इस नृत्य में प्रायः सभी उपस्थित लोग शिरकत करते हैं। तदुपरांत एक बार फिर से वर तथा वधू के प्रति अपनी शुभकामनाएँ भेंट करके सभी रिश्तेदार व सगे-संबंधी अपने-अपने घरों को प्रस्थान करते हैं और नवयुगल शुभारंभ करते हैं अपने नवजीवन का।

अब यहाँ कुछ ऐसी जानकारियाँ दी जा रही हैं, जो समय की परिवर्तनशीलता के अनुरूप यहाँ भी बदल चुकी हैं या बदलने लगी हैं। आलेख के आरंभ में जिस 'हार', 'बहुपत्नी' अथवा 'बहुपति' प्रथा का नामोल्लेख किया गया है, उनमें 'हार' हरण का स्पष्ट द्योतक रहा है, जो आज के प्रेम प्रसंगाधारित 'लव मेरिज' की समानता रखता है। जब कभी दो युवा दिल एक-दूसरे को पसंद कर लेते हैं और पारिवारिक अथवा सामाजिक किन्हीं कारणों से विवाह न कर सकते हों तो उस स्थिति में युवक चुपके से रात को अथवा कहीं मेले-घेले से भगाकर युवती को अपने घर ले आता है। यद्यपि बाद में कुछ ग्राम प्रमुखों की सलाह से दोनों पक्षों में समझौता भी करा लिया जाता है और तब उन दोनों का अत्यंत संक्षेप में विवाह संस्कार भी करा दिया जाता है। कई बार बात आसानी से न बनने पर लड़की पक्ष वालों को 'रूश' (रूठने) का बकरा भी देना पड़ता था, मगर जैसे-तैसे मामला सुलझा लिया जाता।

कई घरों में एक ही भाई की शादी की जाती और अन्य भाई पांडव-द्रोपदी की तरह रमण करते। कई बार एक व्यक्ति का विवाह होने पर यदि उसके संतान न होती तो वह संतति प्राप्ति की लालसा में दूसरी-तीसरी-चौथी शादी भी कर लेता, मगर दोनों परिस्थितियों (बहुपति/बहुपत्नी) में सभी भाई भी परस्पर प्रेम से रहते और वे एक ही पति की अनेक पत्नियाँ भी मिल-जुलकर रहतीं। निःसंदेह वर्तमान में इन दोनों प्रथाओं पर लगभग पूर्ण विराम लग चुका है।

जो लोग अपनी परिस्थितियों के कारण धूमधाम से विवाह नहीं कर सकते थे, वे बहुत

छोटे रूप में इस संस्कार को संपन्न करवाते, जिसे यहाँ 'जाजड़ा' कहा जाता था। इस स्थिति में दूल्हे के साथ मुश्किल से चार-पाँच बाराती ही होते और भोजनादि की व्यवस्था भी उसी घर अथवा बहुत ही नज़दीकी लोगों तक सीमित होती। कई बार ऐसा भी होता था कि गाँव के दो-चार लोग ही आकर वधू को अपने साथ ले आते और तब वहीं उसे 'सुहाग' आदि लगाकर इस संस्कार को पूरा करवाया जाता, किंतु ये सारी बातें अब शून्य हो गई हैं।

किन्हीं कारणों से पति-पत्नी में तकरार हो जाती या ससुराल में किन्हीं अन्य कारणों से विवाहिता को रह सकने में भारी कठिनाई आ जाती तो उन परिस्थितियों में वह विवाहिता अपने मायके बैठ जाती (आकर ठहर जाती) और तब वापिस ससुराल नहीं जाती। स्त्री अपनी नाराज़गी से मायके बैठी होती तो स्वयं पति या उसके घर का कोई अन्य वरिष्ठ व्यक्ति उसे लेने आता, जिसे 'बोइदु' कहा जाता। नाराज़गी यदि पति की ओर से होती तो वह स्वयं तो मनाने नहीं जाता, किंतु उसका कोई भाई उसे मनाकर वापिस लेने जाता, जिसकी पुष्टि इस लोक गीत से होती है— *'भाइया न आँवदा बोइदु रे चाल भाभीए घोरे के...'* आपसी मतभेद के कोई छोटे-मोटे कारण रहे होते तो इस तरह की मान-मनौअल के बाद वह स्त्री पुनः अपने ससुराल चली जाती और परिस्थितियों से समझौता करके अपना जीवनयापन करती।

कई बार तकरार यदि इस क़द्र बढ़ जाती कि उसके समाधान की संभावनाएँ नहीं रह जातीं तो गाँव के अन्य 'ठगड़े' (मुखिया) सुलह कराने की कोशिश करते, किंतु यदि वे भी इस तरह के समझौते में सफल न हो पाते तो वह स्त्री पूरी तरह आकर अपने मायके बैठ जाती। इस स्थिति में उस स्त्री के माता-पिता का चिंतित होना स्वाभाविक होता। अतः वे उसे अन्यत्र दूसरे विवाह का परामर्श देते। दूसरे ऐसे पुरुष, जिनकी अपनी पत्नी नहीं होती या किन्हीं अन्य कारणों से उन्हें स्त्री की आवश्यकता होती, वे इस तरह की मायके बैठी स्त्री से पुनर्विवाह कर लेते, किंतु इसके लिए उन्हें महिला पक्ष वालों को कुछ राशि देनी होती थी, जिसे 'खीत' कहा जाता था। वास्तव में 'खीत' की यह राशि उस महिला का पूर्व पति लेता था। यदि पूर्व पति अपनी उस पत्नी से रुष्ट होता तो उस स्थिति में वह अधिक 'खीत' की माँग भी कर लेता, किंतु उस स्थिति में गाँव के 'ठगड़े' उस विवाद को सुलझा देते। उन दिनों वह राशि 'छः बीशे' (6X20 = 120) रुपए, 'आठ बीशे'(8X20 = 160) रुपए इस रूप में निर्धारित होती।

आलेख के अंतिम चरण की 'जाजड़ा', 'हार', 'खीत' जैसी बातें सिरमौर के संदर्भ में भी अब इतिहास 'इति-ह-आस' का विषय रह गई हैं। यद्यपि 'लव मेरिज' परक 'गांधर्व विवाह' अब यहाँ भी प्रवेश कर गया है, तथापि जैसा कि अन्यत्र कहा गया है सिरमौर जनपद में आज भी विवाह बहुतायत में 'ब्राह्म' अथवा 'प्राजापत्य' पद्धति से ही होते हैं तथा 'डी.जे.' आक्रमण के बावजूद लोक गीत-संगीत एवं नृत्य को ही महत्त्व दिया जाता है।

प्राध्यापक,
राजकीय महाविद्यालय, पाँवटा साहिब,
ज़िला सिरमौर, हिमाचल प्रदेश

महासुई क्षेत्र की विवाह परंपरा

● ध्यान सिंह भागटा

हिमाचल प्रदेश की संस्कृति पर आर्य तथा अनार्य दोनों ही संस्कृतियों का प्रभाव है। यहाँ का ऊपरी क्षेत्र बाह्य संपर्क से अधिकतः अछूता रहा, जिसके कारण यहाँ के जन-जीवन में अनार्य संस्कृति का अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इस प्रदेश के ज़िला शिमला का ऊपरी भाग 'महासुई' क्षेत्र के नाम से विख्यात है, जिसका नामकरण यहाँ पर प्रचलित सशक्त महासू देव परंपरा से हुआ है। इस क्षेत्र में महासू देवता के लगभग सौ से अधिक मंदिर हैं तथा इस देवता का प्रभाव उत्तरांचल तक फैला हुआ है। कुछेक अंतर को छोड़कर लगभग पूरे हिमाचल में अधिकांशतः एक जैसे रीति-रिवाज हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक एक ही प्रकार की प्रथाएँ हैं, केवल विवाह संबंधी नियम कुछ पृथक् हैं। विवाह मानव समाज का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्कार है, जिसका सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक तथा आर्थिक महत्त्व भी है। चिरकाल से ही भारतीय समाज में विवाह की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं। महासुई क्षेत्र में भी यहाँ की विशिष्ट भौगोलिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के दृष्टिगत विविध विवाह पद्धतियाँ प्रचलित रही हैं। प्रदेश के निम्न भाग में विवाह हेतु जहाँ कन्या के माता-पिता द्वारा अपनी बेटी के लिए योग्य वर की खोज की जाती है, वहीं इसके विपरीत महासुई क्षेत्र में पुत्र के माता-पिता द्वारा वधू की तलाश की जाती है, जिसमें उसके निकट संबंधियों तथा कुल पुरोहित की अहम भूमिका रहती है। योग्य वधू के चयन के पश्चात् लड़के के पिता द्वारा उक्त परिवार को इस आशय की सूचना दी जाती है। तब यदि लड़की वाले भी सहमत हो जाएँ तो एक निश्चित तिथि को लड़के का पिता, दो-तीन निकट संबंधी तथा कुल पुरोहित के साथ लड़की के घर जाता है और शुभ मुहूर्त में किसी सुहागिन स्त्री के द्वारा लड़की को नाक तथा कान में गहने पहनाए जाते हैं। इस प्रथा को स्थानीय भाषा में 'वरनी डालना' कहा जाता है। यह प्रथा उच्च कुल तथा संपन्न परिवार द्वारा अपनाई जाती है। अन्य सामान्य प्रथा के अनुसार लड़के का पिता अपने दो-तीन निकट संबंधियों, विशेषकर लड़के के मामा के साथ लड़की के घर जाता है तथा चूल्हे पर चाँदी का रुपया रखकर अपनी मनशा व्यक्त करता है। यदि लड़की के परिवार वाले इसे स्वीकारते हैं तो यह बात पक्की मानी जाती है। इस प्रथा को 'सोता' अथवा 'बांदा' (प्रतिबंध) कहा जाता है। इस प्रकार की प्रथा का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि जब विवाह संपन्न होता है तो वही रुपया वधू प्रवेश के बाद वर के घर के चूल्हे पर रखा जाता है, जो इस बात का परिचायक है

कि दोनों पक्षों द्वारा अपने वचनों का पालन किया गया है। समय परिवर्तन के साथ आजकल लड़के तथा लड़की की जन्मपत्री मिलाने की परंपरा भी आरंभ हो गई है। 'बांदा' अथवा 'सोता' विशेष परिस्थितियों में ही वापिस किया जाता है, जो दोनों ही पक्षों के लिए अच्छा नहीं माना जाता, जिसे स्थानीय भाषा में 'कुठोण लगना' कहते हैं।

इस क्षेत्र में विवाह की एक अन्य परंपरा भी प्रचलित रही है, जिसे स्थानीय भाषा में 'बटा-सटा' अर्थात् विनिमय कहा जाता है, जिसके अंतर्गत लड़के का पिता लड़की के पिता को यह वचन देता है कि वह अपनी बेटी का विवाह उसके बेटे के साथ करवाएगा। कई बार यह शृंखला छह-सात संबंधों अथवा पीढ़ियों तक चलती है, परंतु इस प्रकार की परंपरा अधिक स्वस्थ नहीं मानी जाती, क्योंकि एक युगल के संबंध विच्छेद से पूरी शृंखला के संबंधों के टूटने की आशंका के साथ-साथ आपसी संबंधों में भी कड़वाहट पैदा होती है। महासुई क्षेत्र में मामा अथवा बुआ के बेटे-बेटियों के साथ भी विवाह किए जाने के उदाहरण विद्यमान हैं। यह परंपरा अब धीरे-धीरे समाप्त हो रही है। प्रदेश के अन्य भागों की अपेक्षा इस क्षेत्र में भी विवाह के बंधन काफ़ी कड़े हैं। प्रायः अपनी जाति विशेष में विवाह को अधिमान दिया जाता है तथा सगोत्रीय विवाह को अच्छा नहीं माना जाता। विवाह के लिए उच्च कुल तथा संस्कारी परिवार को अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसके साथ ही निश्चित आयु में ही विवाह संपन्न करने की परंपरा है।

प्रदेश तथा देश के अन्य भागों में अधिकांशतः प्रचलित शास्त्रसम्मत विवाह पद्धति यद्यपि महासू क्षेत्र में भी दिन-प्रतिदिन व्यापक रूप धारण कर रही है, जिसमें समस्त विधि-विधान के अनुसार विवाह संस्कार संबंधी सभी प्रथाएँ संपन्न की जाती हैं तथापि अभी भी बहुत से क्षेत्रों में प्राचीन पद्धतियाँ अपने मूल रूप में विद्यमान हैं, जिनका उल्लेख करना समीचीन होगा :–

गाडर

महासुई क्षेत्र में यह प्रथा प्राचीन समय से निरंतर चली आ रही है और आजकल भी अधिकतर विवाह इसी पद्धति से संपन्न होते हैं। निश्चित तिथि के दिन वर पक्ष की ओर से पाँच-सात-नौ या ग्यारह लोग विशेष लग्न में कन्या के घर की ओर प्रस्थान करते हैं, जिन्हें 'बोदाल' कहा जाता है। इनमें वर का छोटा भाई, जिसे 'लाड़सु' कहा जाता है, तथा कुल पुरोहित आवश्यक रूप से शामिल रहते हैं। कन्या के घर पहुँचने पर उनका विधिवत् स्वागत किया जाता है तथा निर्धारित समय पर वर पक्ष की ओर से कुल पुरोहित द्वारा लाए गए गहने कन्या को पहनाए जाते हैं। यह रस्म कुछेक मंत्रोच्चारण, विशेष रूप से गणपति पूजन के पश्चात्, सभी का मुँह मीठा करवाकर अदा की जाती है। दूसरे दिन कन्या पक्ष की ओर से उसकी सखी-सहेलियाँ, बहनें, रिश्तेदार तथा गाँव के लोग वधू के साथ वर पक्ष की ओर रवाना होते हैं, कई बार इनकी संख्या दो से तीन सौ तक रहती है। वर के घर में पहुँचने से पहले ही एक विशेष प्रकार की मोटी रोटी, जिसे 'रोट' कहा जाता है, से वधू का पूजन किया जाता है। यह मान्यता है कि ऐसा करने से मार्ग में वधू के ऊपर [illegible] आत्माओं का प्रभाव समाप्त हो

जाता है। घर के प्रवेश द्वार पर सास द्वारा वधू के गले में 'मौली' डालकर उसे घर के भीतर ले जाया जाता है। द्वार पर पानी अथवा अन्न का पूर्ण पात्र रखकर गणेश पूजन किया जाता है तथा इसके पश्चात् चूल्हे की पूजा की जाती है, जिसे 'चूल पूजना' कहते हैं। वर पहले ही चूल्हे के पास बैठा है, यहाँ वर और वधू द्वारा एक-दूसरे को गुड़ तथा घी खिलाने की रस्म अदा की जाती है और विवाह संपन्न माना जाता है। यदि विवाह 'सोता' के आधार पर निश्चित किया गया हो तो उस समय लड़की के घर में चूल्हे पर रखा गया रुपया वापिस लड़के के चूल्हे पर रखा जाता है, जो लक्ष्मी के घर आगमन का सूचक माना जाता है।

इस प्रक्रिया के पश्चात् परिवार के सभी वरिष्ठ सदस्य एक स्थान पर बैठ जाते हैं। नई नवेली बहू सभी के चरण स्पर्श करती हुई उनका आशीर्वाद लेती है। ऐसा करते हुए वह सभी को कुछ रुपये भेंट स्वरूप देती है, जिसे 'ढलोकरा' कहा जाता है। यद्यपि बाद में सभी लोग यह राशि उसे आशीर्वाद स्वरूप लौटाते हैं। वास्तव में यह परंपरा परिवार के वरिष्ठ सदस्यों का परिचय तथा उनके आदर का सूचक है।

दूसरे दिन वधू के मायके की ओर से एक सदस्य कुछ अनाज लेकर आता है, जिसे 'दोपहरी की रोटी' कहा जाता है। इस प्रथा के पीछे संभवतः यह कारण रहा होगा कि वे जान पाएँ कि उनकी बेटी ससुराल में ख़ुश है या नहीं। तीसरे, पाँचवें या सातवें दिन वर, वधू सहित उसके मायके यानी अपने ससुराल जाता है, जहाँ वर द्वारा 'ढलोकरे' की रस्म अदा की जाती है। इस प्रकार दोनों पक्षों की ओर से आपसी संबंध पुष्ट माना जाता है। यह परंपरा दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। इसे पहले ही दिन सूक्ष्म रूप से संपन्न किया जाता है।

हार

यदि किसी विवाहित स्त्री को कोई अन्य व्यक्ति बलपूर्वक अथवा आपसी सहमति से अपने घर लाकर उससे विवाह संबंध स्थापित करके उसे अपनी पत्नी बनाता है, तो उसे हार (पराजय) कहा जाता है। ऐसी स्थिति प्रायः अनमेल विवाह अथवा किसी पुराने प्रेम प्रसंग के कारण उत्पन्न होती है। यह प्रथा धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है। हार के दो दिन पश्चात् उक्त व्यक्ति अपने पिता अथवा अन्य बुज़ुर्ग व्यक्तियों, जिनकी संख्या तीन से पाँच हो सकती है, को हार के रूप में लाई गई स्त्री के पूर्व पति के घर भेजता है, जो उससे इस अपराध के लिए क्षमा याचना करते हैं। बहुत विचार-विमर्श तथा बहसबाज़ी के पश्चात् उनके बीच समझौता हो जाता है तथा दंडस्वरूप बकरा व 'अंडा' (इज़्ज़त) की राशि अदा करके समझौता हो जाता है। ऐसी स्थिति में पूर्व पति द्वारा 'रीत' अथवा 'ढेरी' भी ली जाती है, जिसका वर्णन आगे किया गया है। महासू के रोहड़ू क्षेत्र में 'सिंगिया वजीर' का गीत आज भी प्रचलित है, जिसने सिरमौर के क्षेत्र से हार पद्धति से ब्याह किया था।

धाड़ा

ऐसी घटना प्रायः मेले अथवा अन्य उत्सवों के दौरान घटित होती है, जब किसी लड़के द्वारा अपने सहयोगियों अथवा मित्रों की सहायता से किसी लड़की को भगाकर अपने घर लाया जाता है तथा 'चूल' (चूल्हा) पूजकर उससे विवाह रचाया जाता है। इस विवाह को 'धाड़ा' कहा

जाता है। ऐसी स्थिति प्रायः प्रेम प्रसंग अथवा माता-पिता द्वारा विवाह की अनुमति न दिए जाने के कारण उत्पन्न होती है। 'धाड़ा' पद्धति के अनुसार किया गया विवाह हार की अपेक्षा अधिक सरल होता है तथा समझौता भी शीघ्र हो जाता है। जब तक समझौता नहीं हो जाता, ऐसी लड़की को घर के बुज़ुर्गों की देख-रेख में सुरक्षित रखा जाता है। ऐसे मामलों में कभी समझौते में कई वर्ष भी लग जाते हैं तथा आपसी कड़वाहट तथा शत्रुता भी पैदा हो जाती है। दंडस्वरूप राशि (इज़्ज़त) तथा बकरा देकर समझौता किया जाना आम बात है।

ढेरी अथवा रीत

इस क्षेत्र में 'ढेरी' अथवा 'रीत' की प्रथा का भी बहुत समय तक प्रचलन रहा है, जो अब प्रायः समाप्त होने के कगार पर है। ऐसी स्थिति में वर पक्ष द्वारा कन्या के माता-पिता को अपनी पुत्री के लालन-पालन में हुए व्यय की प्रतिपूर्ति के रूप में धन दिया जाता है, क्योंकि इस क्षेत्र में कभी भी कन्यादान जैसी प्रथा नहीं रही है। किसी समय तो वर पक्ष द्वारा लड़की के भार के बराबर चाँदी के सिक्के दिए जाने का भी प्रचलन रहा है। ऐसा आमतौर पर बेमेल विवाह और प्रायः किसी संपन्न वृद्ध व्यक्ति द्वारा किसी कम आयु की लड़की से विवाह रचाने पर घटित होता रहा है। विवाह संबंध विच्छेद होने पर भी रीत दी जाती है, जो पूर्व पति के परिजनों द्वारा वसूल की जाती है।

चूल पूजावणे

इस प्रथा के अनुसार कई बार किसी लड़की से उसकी सहमति से ही लड़के द्वारा अपने घर के चूल्हे का पूजन करवा कर उसे अपनी पत्नी बनाया जाता है। ऐसा विवाह अकसर किसी विवाह के दौरान दुलहन के साथ आई उसकी बहन, सहेली अथवा अन्य लड़की द्वारा स्वेच्छा से 'वर धारण' करने पर किया जाता है। बाद में दोनों पक्षों के मध्य हुए समझौते के आधार पर इस प्रकार के विवाह को मान्यता प्रदान की जाती है। यह प्रथा अब लगभग समाप्त हो चुकी है। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में भी देश के अन्य भागों की भाँति 'कोर्ट मैरिज' की घटनाएँ भी यदा-कदा होती रहती हैं।

बहुपति प्रथा

महासुई क्षेत्र में कुछ स्थानों में बहुपति प्रथा, जिसे स्थानीय भाषा में 'मुश्तरका शादी' कहा जाता है, का प्रचलन रहा है। इस प्रथा के अनुसार एक पत्नी के एक से अधिक पति हो सकते हैं, परंतु शर्त यह है कि वे आपस में सगे भाई हों। विवाह सबसे बड़े भाई के साथ होता है, जिसे सभी भाइयों के साथ शादी हुई माना जाता है। संतान को भी बड़े भाई का नाम दिया जाता है। कुछेक स्थिति में अलग-अलग बच्चों को अलग-अलग पिता का नाम दिया जाता रहा है। इस क्षेत्र में प्रचलित बहुपति प्रथा के पीछे आर्थिक तथा सामाजिक कारण रहे हैं। एक मुख्य कारण यहाँ की सशक्त संयुक्त परिवार प्रथा माना जाता है। लोगों का मानना है कि इस प्रथा से आपसी भाईचारे तथा तालमेल की भावना बनी रहती है। इसके पीछे श्रम-विभाजन की भावना भी रही है, क्योंकि मूलतः यहाँ के लोग कृषि तथा पशुपालन व्यवसाय से जुड़े रहे हैं। कृषिजोत के बिखरे तथा दूर-दूर तक ऐसा होने के कारण श्रम विभाजन की

दृष्टि से भी यह व्यवस्था कारगर सिद्ध हुई है। जहाँ एक भाई 'दोगरी' (घर से दूर बना छोटा घर, जो फ़सल की रखवाली और पशु रखने के लिए बनाया जाता है) में रहता है, दूसरा सुदूर जंगल में भेड़-बकरियों की देखरेख करता है व अन्य कहीं नौकरी-पेशे अथवा व्यापार से जुड़े होते हैं। ऐसी स्थिति में घर की व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहती है। यहाँ के लोग इसे पांडव-द्रौपदी के आपसी स्नेह से भी जोड़ते हैं। ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा है, आर्थिक संपन्नता बढ़ रही है, त्यों-त्यों संयुक्त परिवार टूट रहे हैं, अतः यह प्रथा भी लुप्तप्राय हो रही है।

बहुपत्नी प्रथा

इस क्षेत्र में एक से अधिक पत्नी की परंपरा आज भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। इस प्रथा का मूलाधार यहाँ की विकट भौगोलिक स्थिति तथा श्रमसाध्य जीवन पद्धति रहा है। कृषि जोत का बिखरा तथा अधिक मात्रा में होना भी इसका एक कारण हो सकता है। अतः अलग-अलग भूखंडों में नौकर-चाकर रखने की अपेक्षा एक और पत्नी रखना अधिक व्यवहार्य माना जाता रहा है। कई बार ऐसा करना पहली पत्नी के कोई संतान न होने के कारण भी आवश्यक माना जाता है। ऐसे भी मामले सामने आए हैं, जब पहली पत्नी के मात्र कन्या होने के कारण पुत्रोत्पत्ति की इच्छा से वह अपने पति को दूसरी पत्नी लाने के लिए प्रोत्साहित करती है। कुछेक मामलों में पहली पत्नी द्वारा अपनी छोटी बहन को अपने पति की दूसरी पत्नी बनाने की परंपरा रही है, ताकि दोनों बहनें संयुक्त रूप से अपना जीवन-यापन कर सकें।

विवाह विच्छेद

महासू क्षेत्र में विवाह परंपरा जितनी सरल है, विवाह विच्छेद भी अपेक्षाकृत सामान्य रहा है। यद्यपि धीरे-धीरे इसमें जटिलताएँ उत्पन्न हो रही हैं। विवाह विच्छेद की प्रक्रिया बिलकुल आसान है। यदि आपसी सहमति से यह विच्छेद हो रहा हो तो इसमें कोई कठिनाई नहीं होती। वर पक्ष द्वारा वधू के गहने आदि लौटाए जाते हैं तथा यह संबंध हमेशा के लिए टूट जाता है। यदि लड़के की ओर से यह विच्छेद किया जाना है तो वह अपने किन्हीं निकट संबंधियों को लड़की के घर भेजता है, जो चूल्हे पर पत्थर के चार-पाँच कंकर, जिन्हें स्थानीय भाषा में 'शाकरी' कहा जाता है, रखते हैं तथा संबंध तोड़ने की बात कहते हैं। कुछ क्षेत्र में यह प्रक्रिया चूल्हे के पास लकड़ी या तिनका तोड़कर भी निभाई जाती है, जिसे 'डिंगी चोड़ना' अथवा 'काठा चोड़ना' भी कहा जाता है। ऐसी स्थिति में लड़की के परिवारजन किसी प्रकार की 'रीत' अथवा 'ढेरी' अदा करने के लिए बाध्य नहीं होते। यदि यह प्रस्ताव लड़की की ओर से आता है तो लड़के वाले क्षतिपूर्ति के रूप में 'रीत' अथवा 'ढेरी' प्राप्त करने के हक़दार होते हैं।

विधवा विवाह तथा पुनर्विवाह इस क्षेत्र की एक विशेषता है। एक आम कहावत है कि पहाड़ में औरत कभी विधवा नहीं होती। वह अपनी इच्छानुसार कितने ही विवाह संबंध जोड़ सकती है, समाज में इसकी पूरी छूट है। कुछेक स्थितियों में एक विधवा का विवाह मृत पति के कनिष्ठ भाई से भी करवाया जाता है, जिसके लिए आपसी सहमति पूर्व शर्त मानी जाती है।

दहेज प्रथा

महासू क्षेत्र में दहेज जैसी परंपरा कभी भी नहीं रही है। पुराने समय में लड़की को मात्र तीन कपड़ों में विदा किया जाता था, जिसे वह विवाह के समय अपने साथ ही ढाठू (सिर पर बाँधा जाने वाला रूमाल) में बाँधकर स्वयं अपने ससुराल ले जाती थी। आर्थिक संपन्नता तथा आधुनिक चकाचौंध के कारण इस क्षेत्र में भी दहेज प्रथा निरंतर बढ़ती जा रही है।

सती प्रथा

महासू क्षेत्र में बाहर की आदिम जातियों का किसी न किसी रूप में आगमन तथा वर्चस्व रहा है। यहाँ के राजपूत लोग अपने आपको राजस्थान के राजपूताना क्षेत्र के वंशज मानते हैं तथा इस क्षेत्र में इस जाति के लोगों की विभिन्न परंपराएँ तथा रीति-रिवाज देखने को मिलते हैं। इसी श्रृंखला में सती प्रथा भी एक है। इस प्रथा के अनुसार विवाहित स्त्री अपने पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी चिता में जीवित जलकर इस परंपरा का निर्वहन करती रही है। इसीलिए उसे 'मास्ती' अथवा 'महासती' कहा जाता है। महासू क्षेत्र के विभिन्न भागों में चैंखी, नरजी, लोता तथा भागीरथी आदि के सती होने की गाथाएँ आज भी बड़े चाव एवं सम्मान के साथ गाई जाती हैं। इस प्रथा की प्रशंसा में लोक कवि द्वारा बहुत ही सुंदर पंक्तियाँ गाई गई हैं :–

सास डेओ सरगा, मास भोगा ले आगा।
हाड़ा रा लागा जुगटु, न माटी रा भागा।

उपर्युक्त पंक्तियाँ भगवद्गीता के इस भाव की पुष्टि करती हैं कि आत्मा कभी नहीं मरती, मात्र शरीर मरता है। स्वर्ग में आत्मा का मिलन होता रहता है।

विवाह गीत

महासू क्षेत्र में विवाह गीतों की कोई विशेष परंपरा नहीं रही है। मात्र 'लामणू' (लामन) गीत अवश्य ही प्रचलन में रहे हैं। बारातियों को जब कन्या का गाँव नज़र आता है तो वे अपने आगमन की सूचना इस 'लामण' के माध्यम से देते हैं :–

चिट्टे छापटे दिशों गाँवटु तेरे
टीरा हाँडा दवारिया बाले शाहटे मेरे।

अर्थात् तुम्हारे घरों की सफ़ेद छतें देखकर तुम्हारे गाँव के बारे में यह आभास हो रहा है कि जिस घर में तुम (नायिका) रह रही हो, उसकी खिड़की तथा दरवाज़े पर मेरी बाल-सुलभ आत्मा मँडरा रही है। लेकिन धीरे-धीरे प्रदेश के निम्न भाग में प्रचलित विवाह गीत यहाँ भी गाए जाने लगे हैं, जिन्हें स्थानीय भाषा में 'लाणा' कहा जाता है।

महासू के रामपुर बुशहर में परशुराम द्वारा शनेरी, डन्सा, लालसा व शिंगला में 'चार ठहरी' (जहाँ वे कुछ समय के लिए ठहरे) तथा पाँच स्थान (सिद्ध स्थान) काव, ममेल, निरमंड, दत्तनगर व नीरथ स्थापित किए गए, जहाँ मूलरूप में ब्राह्मणों का निवास स्थान है। इन स्थानों में अवश्य ही आज भी विवाह गीतों की परंपरा है, जो शास्त्रीय संगीत पर आधारित हैं तथा राजपूत जाति के लोगों द्वारा भी गाए जाते हैं, परंतु उनकी धुन तथा विषयवस्तु अपेक्षाकृत भिन्न रही है। इन गीतों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रस्तुत है :–

निमंत्रण गीत

नगरे बसंतिओ धरीओ गृहे अपनी बेदो बड़ाए
तिना-वेदो-वेदो पंडिता जसो बिना घड़ीए न होए
गृहे हमरिए बेदो बेठाए तिना बेदो।

यह शगुन गीत शुभ कार्य प्रारंभ करने के समय गाया जाता है, जिसका भाव है कुल पुरोहित घर में शांति स्थापना करे, ताकि मंगल कार्य बिना किसी बाधा के संपन्न हो जाए।

शांति स्थापना गीत

शांति स्थापना के समय यह गीत गाया जाता है, जिसमें पृथ्वी, ब्रह्मा, विष्णु और शिव की महिमा का गुणगान किया जाता है :–

आकाशे थापो जो सूरज, तिनि किओ आकाशो राजो आँजी
पैताला थापो जो भागसू, तिनि किओ पेताड़ो राजो आँजी
ब्राह्मा नहीं तो विशनु नहीं तो बशेंद्रा देओ आँजी
गोयले आणो बशेंद्रा थापे माए अँगनियाँ कुँडे आँजी।

स्वागत गीत

कुणजे आए छत्रे जमाणे
कुणजे आए चढ़ घोड़ी बे।
मामे जे आए छत्रे जमाणे
मामू जो आए चढ़े घोड़ी बे।

इस स्वागत गीत के द्वारा मामा-मामी तथा उनके साथ आने वाले सभी मेहमानों का स्वागत किया जाता है।

तेल बटणा गीत

तेलु केरी तेलनी द्रुब केरी डालिए
विनायक सिरे तेलो पाए।
कुण सपुरूषा कुण सपुरूषा
विनायक सिरे तेलो पाए आं।
तेरो मामु सपुरूषा, मामु सपुरूषा
विनायक सिरे तेलो पाए आं।

यह विवाह गीत वर तथा वधू दोनों को तेल डालते समय गाया जाता है। सर्वप्रथम मामा तथा मामी द्वारा यह रस्म अदा की जाती है। इसके पश्चात् अन्य सभी सगे संबंधी तेल डालते हैं। सर्वप्रथम दूर्वा से सिद्धि विनायक गणपति को तेल डाला जाता है। इसके बाद वर/वधू को तेल डाला जाता है।

कन्या दान गीत

त्रीणा छेदे, त्रीणा छेदे बापुआ
छेदे हरे द्रुबु केरे डाले।

इज़ी बापुका उऋण हुए
धौरा बौणा का उऋण हुए।
त्रीणा छेदे, त्रीणा छेदे बापुआ।

कन्या का पिता दूर्वा या मुँजी की डाली जमाई के हाथ में पकड़ाकर, उसे बीच से काट देता है तथा कन्या को वर के हाथ सौंप देता है। इस प्रकार कन्या पिता के घर से विदा लेकर अन्य घर की सदस्या बन जाती है।

विदाई गीत

उड़े-उड़े मेरी कुँजरिए, आज मेरे आमा न मिले बे
मिले-मिले मेरी आमीएँ, आज मेरे शाऊरे जाणा बे।
मिले-मिले मेरे बापुआ, आज मेरे शाअरे जाणा बे
उड़े-उड़े मेरी कुँजरिए, आज तेरे शाउरे जाणा।

इस मार्मिक गीत में कन्या द्वारा अपने माँ-बाप तथा अन्य सगे संबंधियों से विदा लेने का चित्रण प्रस्तुत होता है तथा माँ-बाप व अन्य सभी लोग उसे अपना आशीर्वाद देकर भारी मन से विदा करते हैं।

वधू प्रवेश गीत

किदे आओ लाड़ी केरो जुगो जमाणा
किदे आओ लाड़ी केरो भाए
आगे आओ लाड़ी केरो जुगो जमाणा
पाछे आओ लाड़ी केरो भाए।

जब वधू अपने ससुराल पहुँचती है, तब वहाँ की महिलाओं द्वारा यह गीत गाया जाता है, जिसका भाव है– वधू की डोली कहाँ आई है? वधू का भाई कहाँ आया है? उत्तर में गाया जाता है– पहले पहले वधू की पालकी आई है तथा उसके साथ पीछे उसका भाई भी आया है।

फ़ेयर व्यू, परिमहल एन्कलेव,
कुसुंपटी, शिमला-171009

बारात वापसी में नमकीन चाय पीते दूल्हा-दुलहन व अन्य, अनुष्ठान के लिए थालियों में रखीं सत्तू की पिन्नियाँ (लाहुल घाटी)

छाया चित्रकार : तोबदन

बारातियों में शामिल महिलाएँ जलपान करती हुई (ज़िला किन्नौर)

छाया चित्रकार : डॉ. अश्विनी कुमार

दुलहन को ब्याह कर डोले में लाते हुए, पीछे सुखपाल (पालकी) में दूल्हा (जिला मंडी)

छाया चित्रकार : बीरबल शर्मा

बारातियों के स्वागत के लिए खड़ी युवतियों के साथ पूजा करते हुए लामा (ज़िला किन्नौर)

छाया चित्रकार : डॉ. अश्विनी कुमार

ब्याह कर लौटती बारात का एक दृश्य
आगे वधू का डोला, पीछे वर का सुखपाल (पालकी), साथ में पचेकड़ (वधू के संबंधी) और जनेतड़ (बाराती) [ज़िला कांगड़ा]
छाया चित्रकार : डॉ. गौतम शर्मा 'व्यथित'

'विवाह-वेदी' का एक दृश्य (महासू क्षेत्र)
छायाचित्र सौजन्य : ध्यान सिंह भागटा
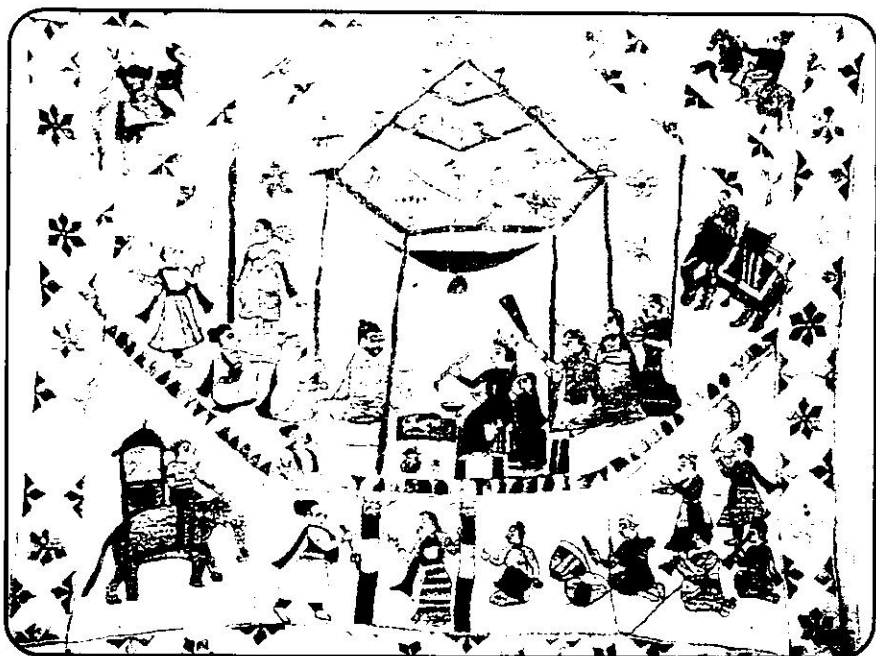
विवाह अनुष्ठान संबंधी चंबा रूमाल
छायाचित्र सौजन्य : विजय शर्मा

रलि विवाह के अवसर पर रलि और शंकर की मृण्मूर्तियाँ
छायाचित्र सौजन्य : डॉ. गौतम शर्मा 'व्यथित'

कुल्लू क्षेत्र में प्रचलित विवाह पद्धतियाँ

● एम. आर. ठाकुर

विवाह शब्द संस्कृत के 'वि' तथा 'वाह' दो शब्दों के संयोग से व्युत्पन्न हुआ है। 'वाह' का अर्थ 'ले जाना, उठा कर ले जाना, आनंद या ख़ुशी मनाना है' तथा 'वि' उपसर्ग मूल शब्द के अर्थ को विशिष्टता, विलक्षणता, विशालता प्रदान करता है। इस तरह विवाह का अर्थ शादी है और मूल रूप में विधाता ने सभी जीवधारियों को जिस प्रकार केवल दो स्वाभाविक जातियों में विभक्त कर रखा है, उन्हीं पुरुष-स्त्री दो व्यक्तियों का भावी जीवन का संयोग ही विवाह है। इस संयोग से न केवल नर-नारी के बीच की एक विशेष प्रकार की भूख की संतृप्ति होती है, अपितु प्रगतिशील सांसारिक उत्तरदायित्व की प्रतिपूर्ति भी होती है। पति-पत्नी का यह दांपत्य जीवन सर्वदा ख़ुशी और प्रसन्नता से भरपूर रहता होगा, ऐसी आशाएँ और संभावनाएँ अनेक बार धराशाही होती हुई देखने को मिलती हैं। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। एक कारण जबरन विवाह हो सकता है।

ज़ोरा-ज़बरी रा ब्याह

हर समाज में इस तरह के विवाह के उदाहरण देखे जा सकते हैं। लाहुल-स्पीति की साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका 'चंद्रताल' के किसी अंक में प्रबुद्ध समाजसेवी विदुषी साहित्यकार शकुंतला का 'लाहुल के माथे पर कलंक' शीर्षक से लाहुल क्षेत्र में प्रचलित 'कूज़ी' विवाह का विस्तार से उल्लेख आया है। बाद के अनेक अंकों में इसकी प्रतिक्रियाएँ प्रकाशित हुई हैं। कुछ विद्वान तो इसे विवाह का नाम देना भी उचित नहीं समझते, जबकि इस विवाह पर ख़र्च की पुष्टि स्वयं लेखिका के विश्लेषण से हो जाती है। जहाँ इनका कहना है कि कुछ ही दिनों के अंदर 'लड़के वालों को जुर्मानास्वरूप एक मोटी रक़म भरनी पड़ती है, जिसे 'छेती' कहते हैं, और यह राशि बीस-पचीस हज़ार तक ली जाने लगी है (चंद्रताल, अंक 14, पृ. 18-19)। कुल्लू क्षेत्र में इस विवाह को 'ज़ोरा-ज़बरी रा बियाह' कहते हैं। मनु महाराज ने जब ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, गांधर्व, आसुर, राक्षस तथा पैशाच आदि आठ प्रकार के विवाहों का निर्धारण किया है तो निश्चय ही उस समय में भी इस प्रकार के विवाहों का प्रचलन था।

बराड़-फुक ब्याह

जबरन विवाह की तरह का एक और विवाह 'बराड़-फुक' नाम से प्रचलित रहा है। जब कभी लड़का अथवा लड़की वाले विवाह में रुकावट डाल रहे हों तो वे दोनों किसी दूर जंगल

में एक स्थान पर जाकर बराड़ नाम की झाड़ियाँ इकट्ठी करके उनमें आग लगा देते थे और उसके गिर्द सात फेरे लगा कर अपने विवाह की घोषणा कर दिया करते थे। इस विवाह ने बाद में घोर अपराध का रूप धारण कर लिया था। चूँकि अनेक बार विवाहित स्त्री को कोई भगा कर ले जाता था और बाद में 'बराड़ फुक' विवाह रचा कर किसी भी प्रकार के उत्तरदायित्व से वह अपने-आपको बरी समझता था।

वास्तव में इस रीति का बहुत बुरी तरह से दुरुपयोग किया गया है और समाज-विरोधी कुछ-एक अय्याश व्यक्तियों ने इसके अंतर्गत विधिवत् रूप से हुए विवाह को तोड़ने का प्रयास किया है। अनेक बार इस रिवाज ने बड़ा भयानक रुख अपनाकर कई जानें ली हैं और यह कहावत प्रसिद्ध हुई थी कि *'जिंदी मेरी फुकी तेरी'*। यह मनु द्वारा दर्शाये पैशाच विवाह का एक रूप है। यद्यपि इस विवाह को कानूनन बंद कर दिया गया है, फिर भी इसका प्रचलन पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ है। इस प्रकार के झगड़ों को आजकल प्रायः पूर्व पति को 'रांध' अर्थात् हर्जाना देकर ही निपटाया जाता है।

चुल्ह-पूज ब्याह

कुल्लू के कुछ क्षेत्रों में जहाँ लोगों की माली हालत बहुत अच्छी नहीं है, वहाँ विवाह बड़े ही साधारण रूप से हो जाते हैं। लड़के-लड़की के बीच पहले ही बात हो जाती है, उनके माता-पिता की भी स्वीकृति होती है, अतः किसी मेले-त्योहार के अवसर पर जब लोग ऐसे आयोजनों को मनाने के लिए इकट्ठे हुए होते हैं, तब कुछ अँधेरे में लड़का अपने मित्रों के साथ लड़की को अपने घर ले आता है। लड़की की सखी-सहेलियाँ भी साथ होती हैं। घर में दरवाज़े के निकट पहुँचने पर साथ-साथ खड़े लड़का और लड़की के सिर पर से एक भेड़े या बकरे को फेंक कर काट लिया जाता है। घर के अंदर प्रवेश करने पर लड़की सबसे पहले धूप-दीप द्वारा चूल्हे की पूजा करती है। वह चूल्हे के दोनों ओर कुंगू (कुमकुम) का तिलक लगाकर दोनों हाथों को जोड़ती हुई वंदना करती है। उसके बाद वह लड़के के माता-पिता सहित अन्य सभी बड़ों के पैर छूती है। इस रस्म को 'पैर बोंदणा' कहते हैं।

शटामी ब्याह

समाज में अनेक बार नई परंपराएँ भी उभर आती हैं। ये समय की माँग या आवश्यकता पर स्वतः सर्जित होती हैं। यह कहा गया है कि 'फ़ैशन में हम अपने सहयोगियों की नकल करते हैं और परंपरा में हम अपने पूर्वजों का अनुसरण करते हैं।' परंतु यदि कोई फ़ैशन अपने गुणों के कारण समाज में बहुत देर तक चले व लाभदायक सिद्ध हो तो वह धीरे-धीरे परंपरा बन जाती है। ऐसी परंपरा में एक 'शटामी ब्याह' है।

यदि पति-पत्नी में झगड़ा हो जाए और न्यायालय तक जाने की नौबत आ जाए तो अदालत में सीधे तौर पर केवल दो तरह के विवाह ही मान्य हैं-- वैदिक विवाह और कोर्ट मैरिज। परंतु स्थानीय रिवाज के अनुसार दो तरह के अन्य विवाह भी मान्यता प्राप्त हैं– एक 'देऊ ब्याह', जिसकी प्रक्रिया लगभग वैदिक विवाह के समान है तथा दूसरा 'शटामी ब्याह', जो न्यायालय से बहुत दूर किसी गाँव में बैठकर, [illegible] के व्यक्तियों की [illegible] में फैसला किया

जा सकता है। होने वाले पति-पत्नी में से एक, ख़ज़ाने से दो रुपये का स्टैंप पेपर ख़रीद कर लाता है। गाँव में आकर कोई जानकार पढ़ा-लिखा व्यक्ति दोनों की ओर से विवाह की शर्तें निर्धारित करके एक अनुबंध पत्र तैयार करता है। उस पर दोनों हस्ताक्षर अथवा अँगूठा लगाते हैं, दो अन्य विश्वसनीय व्यक्ति साक्षी के रूप में हस्ताक्षर करते हैं और विवाह संपन्न हो जाता है। वर्तमान परिस्थितियों में 'शटामी ब्याह' बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ है। इसमें कुछ ख़र्च नहीं होता। हज़ारों-लाखों रुपयों की बचत होती है, समय की भी बचत है। 'शटाम' ख़रीदा, समझौता किया, अँगूठा-हस्ताक्षर किए और विवाह हो गया। विवाह भी पक्का विवाह। झगड़ा होने पर कोई विवाह से इनकार नहीं कर सकता।

हिमाचल प्रदेश के देवभूमि होने तथा हर गाँव में देवता, देवता का मंदिर, मंदिर में मेले-त्योहारों के आयोजन, नाच और गाने जैसे प्रचलन के कारण प्रदेश से बाहर के लोगों में देवता के बारे में कुछ ग़लत विचारों और भ्रामक संदेशों ने जन्म लिया है। लोगों का विचार है कि यदि यह सब कुछ सच है तो ये लोग काम कब करते हैं, उनकी खेती-बाड़ी कैसी चलती है, परंतु यह सब कुछ सही नहीं है। देवास्था प्रधान इस पहाड़ी क्षेत्र में देव-समाज एक अनुशासित संस्था है और उसका सारा संचालन नियमबद्ध और परंपरा के अनुसार संपन्न होता है।

विधवा ब्याह

हिमाचल प्रदेश के एक बड़े भूभाग में आदिकाल से विधवा विवाह स्वीकृत है। उसे कोई भी नीची निगाह से नहीं देख सकता। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम लागू होने से पहले से वह अपने पति की संपत्ति की पूरी तरह हक़दार होती थी, चाहे वह बाद में कहीं भी पुनर्विवाह कर ले। इस तरह क्योंकि विधवा के साथ उसके मृत पति की चल एवं अचल संपत्ति का अटूट संबंध है, इसलिए यह भी रिवाज रहा है कि वह अपने मृत पति के किसी छोटे या बड़े भाई से विवाह कर लेती है, ताकि ज़मीन उसी परिवार में रहे और परिवार से बाहर न जाए।

इस तरह मृत पति के भाई से पुनर्विवाह को 'कड़ेवा' कहते हैं और यदि किसी अन्य से ऐसा विवाह हो जाए तो उसे 'झंजराड़ा' या 'रीत' कहा जाता है। 'कड़ेवा' में कड़ा पहनाया जाता है और 'झंजराड़ा' में झांजर। परंतु यों लगता है कि मृत पति के भाई से विवाह पारिवारिक सुख-सुविधा में सहायक होने की अपेक्षा बाधक अधिक रहा है, क्योंकि ज़मीन की मालकिन होने के कारण विधवा का प्रभुत्व रहा है, जिससे पारिवारिक जीवन में कड़वाहट रही है। यही कारण है कि समाज में इस तरह के विवाह को अधिक अच्छा नहीं समझा गया है और उसे ऐसा ही कष्टदायक समझा गया है, जैसे भेड़-बकरी पालने का धंधा या अधिक बच्चों के पालन-पोषण का दुख, जैसा कि कहावत प्रसिद्ध है :—

भेड़ा जिन्हा री बिनती, भाबी जिन्हा री जो
पँज-सत जिन्हा रे पुत्र, तिन्हारे न कुशल हो।

यदि विधवा का मृत पति किसी संपत्ति का मालिक न रहा हो और उसके कोई पुत्र-पुत्री हो तो नए पति को बच्चे पालने की ज़िम्मेदारी लेनी पड़ती है, क्योंकि इस परंपरा के रूप में कहा गया है कि *'जु मेरी माओ नीला सो मींखे बी धाचोला'*।

दहेज प्रथा के विपरीत वरीणा

हिमाचल के अनेक भागों में विवाह पर दहेज की कभी प्रथा नहीं रही। इसके विपरीत निम्नवर्गीय संप्रदायों में लड़की के होने वाले पति या उसके अभिभावकों से भारी रक़म लेने का रिवाज रहा है, जिसे 'वरीणा' कहते हैं। अर्थात् वर ग्रहण करने की क़ीमत। इसे पुत्री का मूल्य तो नहीं कहा जा सकता, परंतु विवाह को पक्का करने की एक रस्म हुआ करती है, ताकि यदि कभी बाद में विवाह-विच्छेद हो जाता है तो लड़की के लिए जीवन-यापन का साधन बना रहे। माँ-बाप आज भी विवाह के अवसर पर अपनी सुविधा के अनुसार अपनी लड़की को कुछ धनराशि और खेती-बाड़ी के औज़ार, जैसे– दाँती, किलण (छोटी कुदाली), बर्तन आदि देते हैं, जिसे 'छेती' कहते हैं। इस 'छेती विवाह' के बाद पति के घर में भी उस लड़की की अपनी संपत्ति होती है। इस पर पति या पति के माँ-बाप का कोई हक़ नहीं होता। वह जैसा चाहे, इसका प्रयोग करती है।

बहुपति एवं बहुपत्नी प्रथा

जहाँ हिमाचल प्रदेश के 'खश' राजपूतों में बहुपतित्व का रिवाज है, वहाँ कनैत समुदाय में बहुपत्नी रिवाज प्रचलित है। एक पति के एक से अधिक पत्नियाँ होने का पुराना नियम चला आया है। वह इसलिए कि अधिक पत्नियाँ होने से ज़मीन के काम-काज में सुविधा रहती है। प्रत्येक पत्नी के बच्चों का बाप की जायदाद पर बराबर का हक़ रहता है। किसी एक पत्नी के बच्चों का दूसरी पत्नियों के बच्चों से अधिक हिस्सा नहीं होता। न ही पत्नियों की संख्या के आधार पर संपत्ति का बँटवारा होता है अर्थात् यहाँ 'चूंडा-बंड' (संपत्ति के विभाजन का एक नियम, जिसमें बाँट पत्नियों के आधार पर होती हैं) न होकर 'पगबंड' का अधिकार है, जिसके अंतर्गत सब बच्चों को बराबर हिस्सा मिलता है। स्त्रियाँ क्योंकि ज़मीन के काम में अधिक भूमिका निभाती हैं, इसलिए उनका परिवार और समाज में भी ऊँचा स्थान रहा है। वह प्रायः स्वतंत्र रही है। यदि पति अथवा सास-ससुर उसके साथ दुर्व्यवहार करे तो वह अपना पति छोड़ कर दूसरा घर आबाद कर सकती है। ऐसी स्थिति में पहला पति नए पति से हरजाना ले सकता है, जिसे 'रांध' कहते हैं। इस 'रांध' की कोई सीमा नहीं है। भले ही पहले पति ने उसके साथ विवाह में कुछ भी ख़र्च न किया हो तो भी वह दूसरे पति से कई हज़ारों की 'रांध' ले सकता है। क्योंकि एक स्त्री को एक से अधिक विवाह करने की छूट है। इसलिए विवाहित पुत्री के पीहर को यहाँ मायका नहीं कहते। चूँकि यदि लड़की की माँ ने दूसरा विवाह कर लिया हो तो उसका नया घर लड़की के लिए मायका नहीं हो सकता, इसलिए पहाड़ी समाज में लड़की के पीहर को 'पेऊका' कहा जाता है अर्थात् पिता का घर, जो स्थायी है।

किसी समाज के स्वचलित नियम, जिनके अंतर्गत उस समाज की सारी गतिविधियाँ और जीवन-पद्धतियाँ चलती हैं, रिवाज कहलाते हैं। ये ऐसे नियम हैं, जिनके पीछे किसी कानून की किसी धारा का उपबंध नहीं होता, परंतु इन्हें तोड़ना इतना ही मुश्किल है, जितना किसी कानून की अवहेलना करना कठिन है। प्रत्येक रिवाज के पीछे सामाजिक स्वीकृति एक प्रबल शक्ति है, जिसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। पहाड़ के एक बहुत बड़े भाग में मामा या

बुआ की लड़की से विवाह करने का रिवाज है, परंतु चाचा या मासी की पुत्री से शादी नहीं की जा सकती। पहली स्थिति में वह रिश्ते में मलेरी या बुबेरी है, दूसरी स्थिति में बहिन या मसेरी। इसलिए यहाँ मसेर भाई तो हो सकता है, परंतु मलेर भाई या बुबेर भाई नहीं हो सकता। यदि किसी ने इस रिवाज का उल्लंघन किया तो वह समाज से बहिष्कृत हो सकता है।

बंदोबस्त के अनेक प्रलेखों में से दो प्रलेखों का संबंध इस लेख से है– पहला, 'रिवाजे-आम' और दूसरा, 'वाजिब-उल अर्ज़'। रिवाजे आम में केवल संस्कारों से संबंधित परंपराओं का उल्लेख है। यों तो जन्म से मरण तक के संस्कारों का विवरण दिया गया है, परंतु मूल रूप में विवाह के विभिन्न रूप, विधवा-विवाह, विरासत, भूमि विभाजन तथा चल और अचल संपत्तियों का विस्तृत विवरण ही रिवाजे-आम के विषय हैं। शेष किसी तरह की परंपराओं का रिवाजे-आम में उल्लेख नहीं है। इस रिवाजे-आम का क्षेत्र सारा ज़िला है अर्थात् समस्त ज़िला का एक ही संग्रह है।

इसके विपरीत 'वाजिब उल अर्ज़' का क्षेत्र सीमित है। प्रत्येक 'महाल' या 'कोठी' (ग्राम प्रशासन में कुछ 'फाटियों' का समूह, 'फाटी' यानी ज़िला प्रशासन की एक इकाई, जो कुछ गाँवों को मिलाकर बनाई गई है) के लिए अलग-अलग 'वाजिब उल अर्ज़' के संग्रह हैं। ये वे परंपराएँ हैं, जिन्हें वहाँ के लोगों ने अर्ज़ या विनती करके वाजिब या उचित ठहराया है। एक महाल या कोठी का 'वाजिब-उल-अर्ज़' दूसरी कोठी या महाल के 'वाजिब उल अर्ज़' से भिन्न होती है। उदाहरणार्थ, देवताओं से संबंधित पूर्व कथित उपबंध 'रिवाजे-आम' के हिस्से हैं, परंतु 'जुआणी आदि महादेवों' द्वारा शव के कफ़न का उपयोग 'वाजिब-उल अर्ज़' का विषय है। मुर्दे पर शव-वस्त्र चढ़ाते समय इन देवताओं द्वारा एक बार कहा जाता है कि महादेऊ की चद्दर पड़ने वाली है, जो डालना चाहे अपनी ओर से चद्दर डाल दें। बाद में महादेऊ की चादर से नीचे की सभी चादरें पुजारी बाँध कर शंख से पानी छिड़का कर शुद्ध करता है और मंदिर में देवता के प्रयोग के लिए रखता है। बाद में ग़रीब लोग इन चादरों को 'ड़ाछ' अर्थात् नाम मात्र की क़ीमत देकर ख़रीद भी लेते हैं। अन्य देवताओं के पास ऐसी प्रथा नहीं है। वहाँ कफ़न के हक़दार 'नड़' (एक जाति विशेष, जो काहिका उत्सव में देवता और उसके आदमियों को 'छिदरा' द्वारा पाप से मुक्त करवाता है। 'छिदरा' यानी मंत्रादि पढ़कर पाप काटने का संस्कार) होते हैं। इसी तरह यह भी रिवाज है कि सर्दी के बाद बसंत ऋतु आने पर कम से कम प्रथम वैशाख तक गेहूँ-जौ के पौधों या हरी घास को दरांती से नहीं काटा जाएगा, परंतु पहली बार किस दिन दरांती का प्रयोग किया जाए, यह रीति का विषय है। कहीं वैशाखी के दिन और कहीं सलाहर (एक त्योहार, जिस दिन पहली बार खेत में दाँती से फ़सल काटी जाती है) या अन्य त्योहार के दिन पहली बार दरांती चलाई जाती है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि जिन परंपराओं को सरकार के लिखित दस्तावेज़ों या नियमावलियों में स्थान मिला है, उन्हें रिवाज कहा गया है।

देवप्रस्थ भवन, ढालपुर,
ज़िला कुल्लू, हिमाचल प्रदेश

कांगड़ा जनपद के वैवाहिक संस्कार : वर पक्ष

● डॉ. पीयूष गुलेरी

कांगड़ा जनपद का वर्षों पुराना इतिहास है, जो इसके ऐतिहासिक और भौगोलिक निर्माण, विध्वंस के सिलसिले में इसकी सीमाओं को बढ़ाता-घटाता और विकसित-संकुचित करता रहा। वैसे कांगड़ा का पुरातन नाम त्रिगर्त है, जिसका भारतवर्ष के मानचित्र पर वीरता-प्रदर्शन के कारण एकांत बहुचर्चित और बहुसंज्ञित स्थान रहा है। उस समय त्रिगर्त राज्य की सीमाएँ कांगड़ा से लेकर आजकल के पाकिस्तान के मुलतान राज्य तक फैली हुई थीं। कहना न होगा कि त्रिगर्त राज्य प्रारंभ ही से शूरवीरों की धरती रहा है। एक समय प्राचीन काल में यहाँ जालंधर दैत्य का शासन रहा, इसी कारण इस क्षेत्र को जालंधर पीठ से भी संज्ञित किया जाता है। इतिहास की गतिमानता के क्रम और राजनैतिक उथल-पुथल के साथ कांगड़ा के नाम, सीमा, क्षेत्र और भूगोल के संकोच-विस्तार में यहाँ की जनपदीय संस्कृति के आकलन के आयाम भी बदलते रहे। आंगल शासन काल के आयाम भी बदलते रहे। आंगल शासन काल में अंग्रेज़ों ने जब भूतपूर्व रियासतों का नियंत्रण हाथ में लिया तो सन् 1849 ईसवी में पंजाब के अंतर्गत पर्वतीय इलाकों की शृंखला को ज़िला कांगड़ा के नाम से प्रशासनिक इकाई के रूप में स्थिर कर दिया गया।

युग के बदलते प्रभाव और सीमा सुरक्षा की दृष्टि से नये-नये दुर्गों के निर्माण आदि के कारण कांगड़ा को नगरकोट, भीमकोट, भीमनगर और सुशर्मपुर आदि नामों से भी जाना जाता है। अंग्रेज़ी शासन काल में प्रशासनिक इकाई के रूप में उभरे कांगड़ा जनपद में निवर्तमान कुल्लू और लाहौल स्पिति के ज़िले भी सम्मिलित थे। प्रथम नवंबर, 1966 में जब विशाल हिमाचल अस्तित्व में आया तो कांगड़ा जनपद से कुल्लू और लाहौल-स्पिति दो अलग ज़िले बनाए गए। बाद में सितंबर, 1972 में इसी जनपद को वर्गीकृत करके ज़िला हमीरपुर और ऊना का गठन हुआ। कुछ भी हो, यह एक अकाट्य सत्य है कि वर्तमान कांगड़ा की सभ्यता, संस्कृति, लोक विश्वासों, लोक मान्यताओं, लोकाचारों तथा लोक संस्कारों में अनेक वर्षों की गतानुगतिकता से चली आ रही वृहद् संस्कृति समाई हुई है, जिसका अपना विशुद्ध अकंटक इतिहास है।

जनपदीय संस्कारों की जन्मदातृ संस्कृति स्वयं में वृहद् एवं अनेकार्थों को समेटे रहती है। कहना अत्युक्ति न होगा कि संस्कृति यदि अपने इस वृहद् अर्थ में संस्कार, शुद्धि, प्रक्षालन, सुधार, सफ़ाई, पालन-पोषण, भोजन व्यवस्था, मानसिक शिक्षा, शब्दों-वाक्यों की शुद्धता, पवित्रीकरण, पापादि का प्रक्षालन करने के लिए [illegible] का विधान, कृषि, संवर्द्धन, निर्माण,

आचरण, परंपरा, आमंत्रीकरण, पुण्यकृत्य, पहल करना, अपने साथ रखना, सभ्यता, भाषा, बोलचाल, लोकाचार, व्रत, कथा, कीर्तन, त्योहार, पर्व, साहित्य, खान-पान, वेशभूषा, ललित कलाएँ, लोक कलाएँ, पारंपरिक कलाएँ आदि को स्वयं में सन्निविष्ट करती है तो संस्कृति के निर्माण, इतिहास और परंपरा की एक लंबी धरोहर है, जो उसमें जन्म लेने, पलने-बढ़ने वाले प्राणियों की निर्मिति में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने में समर्थ है। इसीलिए कहा गया है कि संस्कृति और संस्कारों तथा संस्कारों और संस्कृति का बड़ा गहरा, प्रगाढ़ एवं अन्योन्याश्रित संबंध है।

कांगड़ा जनपद के लोकमानस में संस्कारों के प्रति अटूट आस्था और विश्वास अब भी विद्यमान है। भले ही समाज में आधुनिकीकरण का प्रभाव अवश्य पसरा है, किंतु लोक समाज में मान्य संस्कारों की अनुपालना में कोई कोताही नहीं की जाती। वस्तुतः संस्कारों की कुल संख्या में भी शास्त्रोक्त एवं लोकोक्त संस्कारों में मत वैभिन्य है। मनु के अनुसार बारह– गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, केशांत, समावर्तन और विवाह संस्कार हैं। इसके अतिरिक्त लोकोक्त अन्य चार संस्कार– कर्णवेध, विद्यारंभ, वेदारंभ तथा अंत्येष्टि और आ जुड़ते हैं। वर्तमान में कुछ अन्य लोगों द्वारा ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम को भी संस्कारों में गिनाया जाने लगा है। वैसे हमारे धर्म, लोक, समाज, संस्कृति एवं संपूर्ण जनपद में ब्रह्मचर्य आश्रम से लेकर संन्यास आश्रम की वर्णाश्रम व्यवस्था में प्राणी के संस्कारित, पवित्रीकरण, शुद्धिकरण, ज्ञानार्जन और सीखते रहने की प्रक्रिया की अलग-अलग व्यवस्थाएँ और विधि-विधान हैं। ये विधि-विधान संस्कारित होते रहने वाले लोक एवं समाज-व्यवस्था के संस्कारों ही का उपक्रम माने जाएँगे। वास्तव में औपचारिक शिक्षा विधान के संस्कार में ब्रह्मचर्याश्रम का विशेष महत्त्व है। प्रतीत ऐसा होता है कि ब्रह्मचर्यावस्था में संस्कारित होना गृहस्थाश्रम का सुदृढ़ आधार है, जबकि गृहस्थाश्रम के संस्कार प्राणी को भली भाँति वानप्रस्थी जीवन और संन्यास आश्रम की सम भावावस्था का सच्चा सुख एवं पूर्ण आनंद में आलोड़ित होते रहने की उच्चतम स्थिति के लिए उद्यत एवं उन्मुख करते हैं।

लोक, वेद, शास्त्र, धर्म, संस्कृति, रीति एवं नीति में कहा यह गया है कि गृहस्थाश्रम का दर्जा चारों आश्रमों में सर्वश्रेष्ठ है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश से पूर्व लोक एवं समाज ने व्यक्ति के लिए ऐसे संस्कारगत नियमों के विधि-विधान की संरचना की है, जो अनादिकाल से स्वयं के स्वरूप में स्थिर रहकर अनेक परिवर्तनों से संस्कारित होकर समाज व्यवस्था का अप्रतिहत मार्गदर्शन कर रहे हैं। गृहस्थाश्रम में प्रवेश को दो प्राणियों का, पति-पत्नी के कच्चे धागे के रिश्ते में बँधकर सांसारिक व्यवस्था में योगदान देना और अच्छे नागरिकों के निर्माण-क्रम-प्रक्रिया में भागीदारी समझी जानी चाहिए। दो प्राणियों का यह जीवन-बंधन युग-युगांतरों से चले आ रहे विवाह संस्कार द्वारा प्रतिष्ठित एवं मान्य होता है। विवाह संस्कार एक रुचिकर एवं सर्वमान्य ऐसी सामूहिक समाज व्यवस्था है, जिसमें सभी सगे संबंधी, मित्रगण, परिचित, जानकार, प्रेमी सज्जन, जनपदीय लोग तथा पूरी बिरादरी अपने भागीदार होने की सक्रिय उपस्थिति दर्ज कराती है। उनका बढ़-चढ़ कर भाग लेना न केवल विवाह संस्कार को लोक एवं समाज की मान्यता का उदाहरण प्रस्तुत करता है, प्रत्युत उस विवाह का प्रत्यक्ष साक्षी भी बनता है।

कांगड़ा जनपद के वैवाहिक संस्कारों का यह क्रम इसी साझीदारी से प्रारंभ हो जाता है, जब एक-दूसरे के संबंध जोड़ने में पूरा समाज अपनी-अपनी भागीदारी का निर्वहण करने में कोई कोर कसर नहीं उठा रखता। विवाह योग्य वर, कन्या के लिए संबंध जोड़ने, उचित रिश्ता तय करने-करवाने और बातचीत को आगे बढ़ाने में मध्यस्थता करना पुण्य कार्य माना जाता है। इस दृष्टि से सभी नर-नारियाँ वर-कन्या के घर-परिवार, शिक्षा-दीक्षा, वंश-परंपरा, संस्कार-प्रकृति, क़द-काठ, गुण-दोष आदि को ध्यान में रखकर एक-दूसरे को समुचित रिश्ता सुझाते हैं। दो परिवारों में मिलन करवाना जहाँ पुण्य कार्य माना जाता है, वहाँ मध्यस्थता करने वाले लोग उस परिवार से उम्र भर के लिए धर्म के रिश्ते से जुड़ जाते हैं। कांगड़ा जनपद में यह धर्म का संबंध अकसर ख़ूनी रिश्ते से बढ़कर सुदृढ़ रूप से निभता हुआ देखने में आया है। दो परिवारों में वैवाहिक रिश्ता स्थापित करवाने के लिए लोकवाणी में कहा जाता है— *'दूं जणेयाँ दा हथ मलोआणा जां दूं परोआराँ दे हथ मलोआणा बड़े ई पुन्ने दा कारज ई।'* अर्थात् दो आत्माओं अथवा दो परिवारों में वैवाहिक संबंध स्थापित करवाना एक महान पुण्य कार्य है। इस प्रकार व्यक्तियों के वैवाहिक संबंध स्थापित करवाने में समाज का जो सामूहिक संस्कार सम्मिलित हो जाता है, वह व्यक्ति और समाज की मधुरता, मेल-मिलाप तथा एकता के सूत्र को सुदृढ़ बंधनों में सुग्रंथित कर देता है। आजकल भले ही ये वैवाहिक संबंध-सूत्र अख़बारों और वैवाहिक एजेंसियों द्वारा भी बँधवाए जाते हैं तथा आवागमन की सुविधा और रोज़ी-रोटी के सिलसिले में कुछ लड़के-लड़कियाँ स्वयं ही प्रणय बंधन में बँधकर इसका ख़ुद निर्वहण करने लग गए हैं तो भी कांगड़ा जनपद में वैवाहिक संबंध स्थापित करवाने की यह सामाजिक साझीदार की प्रक्रिया और संस्कार अब भी अहम भूमिका निभा रहे हैं। कहना अत्युक्ति न होगा कि गार्हस्थ्य जीवन के ये संबंध-तंतु यहीं से जुड़ने-बँधने और संस्कारित होने प्रारंभ हो जाते हैं।

वैवाहिक संस्कारों में यद्यपि वर-वधू के तारतम्य-नुमा संबंध सूत्र दोनों परिवारों से संबद्ध होते हैं, तथापि वर और वधू पक्ष के वैवाहिक संस्कार काफ़ी हद तक अलग-अलग ढंग से संपन्न किए जाते हैं। यहाँ केवल वर पक्ष के वैवाहिक संस्कारों का विवेचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन करना हमारा अभीष्ट है। यों तो संबंध स्थापित होने तक दोनों पक्षों के मेल-मिलाप, जान-पहचान, कुल-परिवार संबंधी जानकारी हासिल करना तथा अपने-अपने निकटवर्ती सगे-संबंधियों से सलाह-मशविरा आदि से ही ये संस्कार अपना कर्म-धर्म निभाना शुरू कर देते हैं तो भी इसका प्रथम चरण दोनों पक्षों द्वारा कुंडली मिलान से माना जाना चाहिए। जैसा कि हम ऊपर कह आए हैं कि जैसे ही दो पक्षों में आपसी वैवाहिक रिश्ते की बातचीत प्रारंभ होती है, तभी से वर-कन्या के मन में प्रेमभाव की हल्की-सी सुगबुगाहट दस्तक दे देती है। उनके मनों में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष ढंग से इक-दूजे के लिए कोमल भाव पलने लगते हैं और यदि बातचीत की प्रक्रिया कुंडली मिलान में बदल जाती है तो यही भाव संबंधी-संबंध के हामी भरते ही अंकुर रूप में प्रस्फुटित हो जाते हैं।

वर्तमान में भले ही दोनों पक्षों के हामी भरते लड़का-लड़की आपस में मिलने लगते हैं और एक-दूसरे से बातचीत भी कर लेते हैं, किंतु कुछ दूरवर्ती क्षेत्रों में वर-कन्या का यह

मिलन लुक्का-छिप्पी से होता है। कुंडली मिलान के पश्चात् वर पक्ष वाले विधिवत् पंडित जी को बुलाकर विवाह 'सुधाते' हैं अर्थात् विवाह को निश्चित करते हैं। जब पंडित जी घर में आकर औपचारिक रूप से कुंडलियों के मिलान के अनुसार विवाह संस्कार की तिथि का निर्धारण करते हैं तो इससे पूर्व ही आस-पड़ोस में ग्राम नारियों को 'गीतों' का निमंत्रण दे दिया जाता है। घर के बड़े-बुज़ुर्ग बरामदे में बैठकर जहाँ पंडित जी के साथ ग्रहानुसार तिथि निर्धारण में व्यस्त होते हैं, वहाँ ग्राम नारियाँ गणेश, भगवती, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवी-देवताओं के प्रति धन्यवाद जताते हुए भजन भेंटों के लोक गायन से समस्त वातावरण को गुँजायमान करते हुए गाती हैं :—

पैह्लैं आदि गणेश मनाया करो, फिर भोले जी दे दर्शन पाया करो
भोले अंग विभूत रमाई होई ऐ, गल़ सर्पां दी माल़ा पाई होई ऐ।
पैह्लैं आदि गणेश मनाया करो, फिर भोले जी दे दर्शन पाया करो
भोले अद्‌भुत तेरी माया ऐ, तेरा भेद किसी नैं नां पाया ऐ।
पैह्लैं आदि गणेश मनाया करो, फिर भोले जी दे दर्शन पाया करो
भोले गौरी जी दे संग विराजे नं, सौग्गी गणपति बाला साजे नं
पैह्लैं आदि गणेश मनाया करो, फिर भोले जी दे दर्शन पाया करो।

भेंट या भजन गाने वाली एक आगू महिला अपना भजन-भेंट जब समाप्त कर चुकती है तो दूसरी महिलाएँ कोई अन्य भेंट अथवा भजन गाने का अन्य महिलाओं से अनुरोध करती हैं और तब दूसरे छोर से सोत्साह अन्य महिला माँ की भेंट प्रारंभ करने से पूर्व सहेलियों से साथ निभाने का आग्रह करती हुई गाती है :—

हौआ चलदी तां लाल झंडे झुल्लदे माँ
हौआ चलदी तां लाल झंडे झुल्लदे माँ
मैं तां मंदराँ-मंदराँ ढूँढ आई माँ, तेरी सूरत नज़र नां आई माँ
तेरी मूरत नज़र नां आई माँ, हौआ चलदी तां लाल झंडे झुल्लदे माँ
तैनूं अकबर नैं अजमाया माँ, तैनूं सोयने दा छत्तर चढ़ाया माँ
तैनूं जंगलाँ-जंगलाँ ढूँढ आई माँ, तेरी सूरत नज़र नां आई माँ
हौआ चलदी तां लाल झंडे झुल्लदे माँ, हौआ चलदी तां लाल झंडे झुल्लदे माँ।

इस प्रकार जैसे ही पंडित जी द्वारा विवाह का मुहूर्त तय कर दिया जाता है तो वर पक्ष के सगे संबंधियों और गाँववासियों को विवाह संबंधी सूचना एक-दूसरे के माध्यम से प्रचारित-प्रसारित हो जाती है। बस फिर कब, क्या, कौन-सा संस्कार संपन्न होगा, इसकी 'लिखणोतरी' पंडित जी द्वारा निश्चित कर दी जाती है।

मुहूर्त संबंधी लिखणोतरी को लुहान (लाल कपड़े) में बाँधकर लाल डोरी (मौली) से लपेट दिया जाता है। लिखणोतरी पर लाल टीके के छींटे भी दिए जाते हैं, जो शुभ कारक एवं शुभ सूचना के सूचक हैं। इस लिखणोतरी की एक प्रति कन्या पक्ष वालों को भी पहुँचा दी जाती है, जिससे समय-समय पर दोनों पक्ष अपने-अपने 'लगचार' (कुलाचरण) विधि-विधान से तय

समय पर पूरा कर लें। यही नहीं कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को और वर पक्ष की ओर से कन्या पक्ष को जो-जो सामान समय-समय पर भेजना होता है, वह भी बिना चूक भिजवाया जाता है। कुछ संस्कार ऐसे होते हैं, जो वर पक्ष द्वारा भिजवाए गए सामान से ही कन्या पक्ष वालों को पूरे करने होते हैं। कन्या पक्ष वालों के घर 'लिखणोतरी' लेकर जब पंडित अथवा अन्य कोई जाता है तथा शुभ सूचक हरित दूर्वा भेंट करता है तो हँसी-मज़ाक में 'कुड़मों' के घर से आए ब्राह्मण का स्वागत भी होता है और प्रकारांतर से पुरुष समाज से हँसी-ठिठोली भी हो जाती है। यह हँसी-ठिठोली लोक गीत के माध्यम से यों उजागर होती है :–

गल गुलेरे दा ब्राह्मण आया, लेई आया द्रुब्बा दियाँ सरियाँ
हट्टिया बैठे दादू रुस्से जी, दादी लेई लै द्रुब्बा दियाँ सरियाँ।
गल गुलेरे दा ब्राह्मण आया, लेई आया द्रुब्बा दियाँ सरियाँ
हट्टिया बैठे बापू रुस्से जी, माँ लेई लै द्रुब्बा दियाँ सरियाँ।

इस प्रकार ताया, चाचा, भाई आदि अन्य संबंधी, जो-जो उपस्थित हों, का नाम लेकर यह गीत गाया जाता है और सभी की शुभ उपस्थिति को सोल्लास स्वीकार किया जाता है। 'मंगनी' के शुभ संस्कार पर वर पक्ष के घर इस रीति की संपन्नता स्वरूप लोक गीत के माध्यम से महिलाएँ भाव-विभोर होकर यों गाती हैं :–

उच्चैं ठेह्रैं हिरण चुगैंदा, थल्लैं चुगैंदी हिरणी
बे हरि नाम लै।
हरि नाम लै, भई किसे दैं घर लड़का जाया, किसे दैं घर लड़की
बे हरि नाम लै।
फलाणैं (अमुक) दैं घर लड़का जाया, फलाणैं (अमुक) दैं घर लड़की
बे हरि नाम लै।

कन्या पक्ष द्वारा भेजे गए शगुन के समय जब 'टिक्का चढ़ाने' (टीका) का संस्कार संपन्न होता है तो विधिवत् कन्या पक्ष की ओर से शगुन को लेकर आए हुए भाई, नाई, पुरोहित और अन्य संबंधियों के आगमन पर खूब चहल-पहल रहती है। धूम-धड़ाका, साज-सज्जा, खान-पान, ढोल-ढमाका और गीत गायन से घर-परिवार, आस-पड़ोस और पूरे गाँव के माहौल में गर्मजोशी देखने को मिलती है। 'शगुन' का यह संस्कार सामूहिक रूप से सभी की उपस्थिति में धूमधाम से संपन्न होता है। आमतौर पर लड़की का भाई आए हुए नाई-पुरोहित की सहायता से वर के माथे पर रोली का टीका लगाकर उसे व अन्य सगे-संबंधियों को उपहार भी अर्पण करता है। उस समय लोक और वेद की संस्कृति की युगलबंदी देखते बनती है। एक ओर जहाँ पंडित जी वेद मंत्रोच्चारण करते हैं, वहाँ दूसरी ओर महिला-समाज अपनी मधुर ध्वनि में लोक गीतों के माध्यम से यों चार चाँद लगाता है :–

बल्ल कुंगुआ, बल्ल कुंगुआ, किधर देस्से तैं आया, वे बल्ल कुंगुआ
बल्ल कुंगुआ, बल्ल कुंगुआ, केहड़ा पत्तण लंघेया, वे बल्ल कुंगुआ
बल्ल कुंगुआ, बल्ल कुंगुआ, किहड़ें राहें आया, वे बल्ल कुंगुआ

बल्ल कुंगुआ फलाणे (नाम) दैं मत्थैं लाया, वे बल्ल कुंगुआ।

लोक गीत परंपरा के मुताबिक 'बल्ल कुंगुआ' के स्थायी के साथ जब तक चाहें नाम जोड़ कर गीत को गाते रहें।

कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को 'शगुन' देने और 'टीका' चढ़ाने की परंपरा संपन्न होने के साथ-साथ अन्य वैवाहिक संस्कारों की शुरुआत हो जाती है। आजकल वर को 'टिक्का चढ़ाने' की रस्म के साथ-साथ संयुक्त रूप से 'रिंग सेरिमनी' की चाल भी चल निकली है। 'रिंग सेरिमनी' के अवसर पर जहाँ वर-कन्या उपस्थित जन-समाज के समक्ष एक-दूसरे को अँगूठी पहनाते हैं, वहाँ वर पक्ष की ओर से कन्या को 'चुन्नी चढ़ाने' की रस्म भी अदा कर दी जाती है। यद्यपि यह समारोह किसी सहूलियत वाले स्थान पर दोनों पक्षों द्वारा संयुक्त रूप से संपन्न किए जाने की परंपरा लोकप्रिय होने लगी है, तथापि कांगड़ा जनपद में अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार कन्या और वर पक्ष वाले शगुन और चुन्नी चढ़ाने की परंपरा का अलग-अलग निर्वहण करने में विश्वास रखते हैं।

पंडित जी द्वारा ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जैसे ही विवाह 'सोध' (शोधन) दिया जाता है तो वर पक्ष वाले 'लिखणोतरी' के अनुसार अलग-अलग दिन, वार और तय समयानुसार 'साइयाँ' देने तथा 'लेई-छेई' रखने की परंपरा को भी पूरा कर लेते हैं। 'साइयाँ' देना अर्थात् समाज के जिस-जिस वर्ग को विवाहोत्सव में जब-जब जो-जो कार्य संपन्न करना है, उसे दक्षिणा रूप में कुछ रुपये देकर 'साई' देने की रीति के साथ बाँध लिया जाता है। ये 'साइयाँ' बाजे वाले, रसोइये, पानी भरने तथा बर्तन माँजने वाले, पत्तलें बनाने वाले, कुंभकार, बढ़ई, नाई, पुरोहित आदि को विवाह से यथेष्ट समय पूर्व इसलिए दे दी जाती हैं, जिससे एक ही 'लग' (लग्न) में अनेक विवाह होने से किसी प्रकार की दिक्कत पेश न आए। काफ़ी समय पहले तो कुछ रुपये देकर मौखिक रूप से 'साई' देने से काम चल जाता था, किंतु समय के बदलाव के साथ अब ये साइयाँ लिखित रूप में भी संपन्न होने लगी हैं। 'लेई-छेई' की परंपरा कुछ पवित्र वृक्षों, जैसे— आम, अनार, आड़ू आदि की लकड़ी लेकर पंडित जी द्वारा विधि-विधान से मौली बाँधकर 'मुहूर्त' में सँभालकर रखने की रीति है। फिर धाम के लिए वृक्षों की छेई (लकड़ी) काटने की छूट रहती है और सुविधानुसार आवश्यकता के मुताबिक रसोई के लिए 'छेई' (शुभ कार्य में जलाने की लकड़ी को लकड़ी न कहकर मंगलकारी 'छेई' शब्द का प्रयोग किया जाता है) एकत्र की जा सकती है।

विवाह संस्कार की विधिवत् तिथि निर्धारण के साथ वर पक्ष के घर मंगलगान का विधान भी प्रारंभ हो जाता है। घर के काम-काज से फ़ारिग होकर आस-पड़ोस एवं गाँव की महिलाएँ त्रिकाल संध्या में वर पक्ष के घर एकत्र होकर प्रतिदिन नियमित रूप से मंगलगान गाती हैं। इस कार्यक्रम में वर पक्ष द्वारा उन्हें विधिपूर्वक 'न्यूंदर' देकर पूर्व ही से बुलावा दिया गया होता है। वर को दूल्हा, वर, लाड़ा, बन्ना शब्दों से संबोधित किया जाता है। ये मंगलगान 'सेहरा' गीत से संज्ञित होते हैं। विवाह की 'पस्ताई' (तैयारी) से पूर्व आमतौर पर वर को 'बन्ना' कहकर गाँवों में संबोधित किया जाता है। 'सेहरा गायन' विवाह से लगभग महीना भर पूर्व ही

से शुरू हो जाता है, जिसकी मंगलध्वनि गाँव भर में गुँजायमान होती है, जो सभी गाँववासियों को 'अमुक' के घर में विवाहोत्सव की सूचना देती रहती है। मंगल गायन का प्रारंभ सदैव देवी-देवताओं के स्तुतिगान ही से होता है, तत्पश्चात् 'सेहरे' गाए जाते हैं, जिनमें वर के 'सेहरे' की स्तुति, दादी, माता, तायी, बहिन, भाभी, मामा-मामी, नाना-नानी और सगे संबंधियों के संबंध-स्मरण और सेहरे से 'बन्ने' की सज-धज एवं सुंदरता का वर्णन चित्रण रहता है। 'सेहरे' की बनावट, कौन, कैसे, कैसा और कहाँ से सेहरा लाया है, कई बार इसका विश्लेषण भी गीतों द्वारा किया जाता है। यह 'सेहरा गायन' रोज़ लगभग दो-तीन घंटे चलता है। सेहरा गान की कालावधि में जहाँ महिला जगत आनंद मंगल मनाता है, चुहुल करता है, सूचनाओं का आदान-प्रदान होता है, वहीं वर पक्ष के घर अन्न की छान-बीन, सूत बनाने आदि के अन्य प्रकीर्ण कार्यों को मिल-जुलकर सामूहिक ज़िम्मेदारी से सहेजा-समेटा जाता है। जलपान की व्यवस्था के साथ-साथ मंगल गायन के समापन के पश्चात् निमंत्रित महिलाओं को अंकुरित चनों, गुड़ और बताशों आदि को बाँटकर विदा किया जाता है। बाँटने का काम घर में प्रायः जठेरी द्वारा किया जाता है। जठेरी की उपाधि कुल परिवार में उम्र में सबसे बड़ी महिला को दी जाती है। पूरे परिवार में महिला समाज में सबसे बड़ी महिला के प्रति ग्राम्य-समाज के श्रद्धा भाव प्रदर्शन का यह नायाब उदाहरण है।

विवाहोत्सव की मंगल गायन परंपरा में 'सेहरा गायन' के साथ 'घोड़ियाँ' अर्थात् घोड़ी गायन भी संयुत रहता है। इसीलिए इस मंगलगान को 'सेहरे कनैं घोड़ियाँ' गायन से भी जाना जाता है। शायद भाई को समुचित 'सेहरा' नहीं दे पाई, इसीलिए बहन का 'बन्ना भाई' रूठ गया है। बहिन की 'बन्ने' के प्रति कुछ ऐसी भावनाएँ निम्नलिखित ढंग से अभिव्यक्त हुई हैं :–

अंब दी डाली कोयल बोल्ले, कोयल बोल्ले
ताड़ी मार उड़ान्नीआं, हैई-शाबा, ताड़ी मार उड़ान्नीआं, हैई-शाबा।
वीर मेरा केढ़े कारण रुस्सेया, सेहरे कारण रुस्सेया
सेहरा तेरा जम्मू तों मँगवान्नीआं, हैई शाबा।
अम्ब दी डाली कोयल बोल्ले, कोयल बोल्ले...

एक अन्य सेहरे में बहिन के इन भावों का आनंद लीजिए, जिनके द्वारा वह अपने भाई को बड़ी रीझ से सेहरा ले आने का विश्वास दिलाती है :–

सेहरा मैं लाहौर तैं मँगवान्नीआं वीरा, मुकट रेहई गेया दूर रामा
घर तपस्वियाँ दैं ब्याहणा जाणा, लगन सिंदूरिया लैणा रामा
वेदी तम्हारिया सोयने कलश लग्गे, मंडल धुरियाँ छाया रामा
वर्दी मैं लाहौर तैं मंगवान्नीआं वीरा, मुकट रेहई गेया दूर रामा
घर तपस्वियाँ दैं ब्याहणा जाणा, लगन सिंदूरिया लैणा रामा

अन्यच्च

सेहरा तां भाइये जो मैं लेई दिंदियाँ, तेरे मुकटे नैं लग्गीरियाँ लाचियाँ
औयाँ नी मछलिए तूं जाणाँ मेरी बैड़ी, मेरे भाइये जो पार लंघायाँ

अधी-अधी रात सवेरे दा तड़का, मेरे भाइये लेई लेइयाँ लौआँ
गैहणे तां भाइये जो मैं लेई दिंदियाँ, तेरे नामें नैं लग्गीरियाँ लाचियाँ
सेहरा तां भाइये जो मैं लेई दिंदियाँ, तेरे मुकटे नैं लग्गीरियाँ लाचियाँ।

सेहरा गायन में कई बार 'बन्ने' की 'पस्ताःई' अर्थात् बारात चढ़ने की तैयारी में साज-सज्जा के वस्त्राभूषण आदि का भी वर्णन टंकित रहता है। 'बन्ने' की सजावट में बहिन का बड़ा हाथ होता है। विवाह संस्कार में जिस प्रकार भाभियों की काजल लगाने में विशेष भूमिका होती है, ठीक उसी प्रकार 'पस्ताःई' के समय बहिन का प्रभुत्व रहता है। सेहरा गीत का एक अन्य उदाहरण देना समुचित प्रतीत होता है :—

सेहरा तैनूं मैं लेई दिन्नीआं वीरा पहन के जा।
मैं कीहंयाँ पैहनाँ भैनड़िए मेरा लश्कर जाए।
लश्कर नूं वीरा मोड़ ल्या, वीरा पहन के जा।
बाले तैनूं वीरा मैं लेई दिन्नीआं, वीरा पहन के जा।
मैं कीहंयाँ पैहनाँ भैनड़िए, मेरा लश्कर जाए।
लश्कर नूं वीरा मोड़ ल्या, वीरा पहन के जा
'कंठा' तैनूं वीरा मैं लेई दिन्नीआं, वीरा पहन के जा।
मैं कींह्याँ पैह्नाँ भैनड़िए मेरा लश्कर जाए
लश्कर नूं वीरा मोड़ ल्या, वीरा पहन के जा।

जैसा कि पूर्व विवरण है कि सेहरा गायन में 'घोड़ियाँ' भी गाई जाती हैं, क्योंकि जब 'बन्ना' ब्याहने के लिए निकलता है तो वह घोड़ी पर सवार होता है। आमतौर पर घोड़ी, उसकी सजावट, स्हीस (घोड़ीवान) और 'बन्ने' के रूप-रंग का घोड़ी गायन में वर्णन-चित्रण रहता है। 'बन्ना' किस प्रकार और किस फुर्ती से घोड़ी पर सवार होता है, इस सबका विवेचन भी घोड़ी गायन की विषय-वस्तु होती है। घोड़ी-गायन का एक रूप देखिए :—

निक्की-निक्की घोड़ी, मेरा श्रीरंग पतला
आण बन्हीं मेरे बावे दैं वेहड़ैं
बावा कैंह्दा मेरा मोतियाँ दा दाणा, माई कैंह्दी मेरा बाल न्याणा।
मार फराट्टी लाड़ा घोड़िया चढ़ेया, धरत कंबी सारा लोक जी डरेया
नां डरै धरती नां डरा लोक्को, शाह जी दा बेटड़ा ब्याहणा चढ़ेया।

वैवाहिक संस्कारों का यथार्थ और साकार स्वरूप मामाओं के 'मैन्ने परंपरा' से प्रारंभ होता है। जैसे ही मामा-मामियाँ, मासड़-मासियाँ और मामा-कुल के अन्य वंशज वर के घर प्रवेश करते हैं, वैसे ही मानो विवाह की अनुगूँज से सारा वातावरण गुँजायमान हो उठता है। हँसी-मज़ाक, चुहल-मुहल, प्रसन्नता-ख़ुशी जैसे घर के हर प्राणी का अनुभाग बनकर नृत्यमय वातावरण का सृजन करती हों। मामियाँ, मासियाँ और उनकी सखी-सहेलियाँ पूरे जोश-ख़रोश में सामूहिक पंचम स्वर में हँसी-मज़ाक को माध्यम बनाकर गाती हुईं वर पक्ष के घर धड़ल्ले से प्रवेश करती हैं :—

दस्सो जी! किस्से दा एह बेहड़ा, सान्नूं दस्सो जी

असाँ दड़बड़ लाणा डेरा, सान्नूं दस्सो जी।
दस्सो जी! किस्से दी लाड़ी लम्मी, सान्नूं दस्सो जी
असाँ कोठैं लाणी थम्मी, सान्नूं दस्सो जी।
दस्सो जी! किस्से दी लाड़ी गोरी, सान्नूं दस्सो जी
असाँ जोबन लैणा टोली, सान्नूं दस्सो जी।

ऊपर लिखित लोक गीत में वातावरण का चित्रण, हास्य रस का विशुद्ध स्वरूप, आंतरिक प्रसन्नता भाव के दर्शन, वर पक्ष की ख़ुशियों में ख़ुशी का दिग्दर्शन आदि देखते ही बनते हैं। लोक कवि की काव्य रचना क्षमता और वह भी अत्यंत स्वाभाविक और सरल शब्दों में, आधुनिक रचनाकारों के लिए आज भी अनुकरणीय है। शब्द चयन और रचना स्वरूप ऐसा जो नित्य और अनंत। कहा जाता है कि विशुद्ध हास्य-सृजन प्रत्येक युग में रचनाकारों के लिए टेढ़ी खीर है। हास्य रचना के नाम पर जो लोग व्यंग्य अथवा व्यंग्य-जनित हास्य परोसते हैं, उन्हें ऊपर लिखित लोक गीत में हास्य रस और हँसी-मज़ाक में शब्दों की तीखी मार से सीख लेनी चाहिए।

अभी मामाओं की ओर से यह हँसी-मज़ाक चल ही रहा होता है कि वर पक्ष की लोक नारियाँ एकत्र होकर मामियों-मासियों की हँसी का उसी गर्मजोशी के साथ प्रत्युत्तर देती हैं। वे सब उनका स्वागत भी उसी अंदाज़, अंग-संचालन, हाव-भाव प्रदर्शन और नृत्य-मुद्राओं में देती हैं। यह अवसर एक उत्सवीय माहौल की संरचना और प्रदर्शन का ऐसा प्रसंग है, जो उपस्थित जन समाज के तन-बदन को रोमांचित कर जाता है। ऐसा रोमांच कि कोई भी उपस्थित व्यक्ति स्वयं को उस प्रसन्नता-प्रदर्शन का अंग बनाए बिना नहीं रह पाए। दोनों दलों में हास्य, गायन, अंग-संचालन, हाव-भाव प्रदर्शन, नृत्य और छीना-झपटी सब चलता है। जैसे ही वर पक्ष की ओर से मामियों-मासियों को चिढ़ाती हुई नारियाँ 'गूदड़ का गुड्डानुमा नानू का प्रतीक' बनाकर नाचती हैं, वैसे ही मामाओं की ओर वाली स्त्रियाँ उनसे उस 'प्रतीकनुमा नानू' को छीनने का प्रयास करती हैं। यह सारा नृत्यमय माहौल 'झमाकड़ा' बन जाता है। 'झमाकड़ा' यानी झूमना-नाचना, खेलना-कूदना, चिढ़ाना-बनाना, विशुद्ध हँसी-मज़ाक करना और विवाहोत्सव को मंगलमय बना देना। वर पक्ष की ओर से झमाकड़े की तीरंदाज़ी यों होती है :–

नानू गोहरैं आया बो झमाकड़या, झमाकड़या नंगा नाला आया
बो झमाकड़या, इन्हां धीयाँ नूं सरम न आई बो झमाकड़या
इन्हां घघरुआँ हेठ लुकाया बो झमाकड़या
इन्हां नूहाँ नूं सरम न आई बो झमाकड़या, झमाकड़या
एह नंगा नाला आया बो झमाकड़या।

थोड़ी देर तक दोनों दलों में 'प्रतीकात्मक नानू' को हासिल करने और न हासिल करने देने के लिए छीना-झपटी होती रहती है। बाद में हँसी-ख़ुशी दोनों दल हिल-मिल जाते हैं और वही झमाकड़ा एक सम्मिलित सामूहिक नृत्यगान में बदल जाता है। दोनों ही दल बारी-बारी एक-दूसरे का नामोच्चारण करके गाने-नाचने लगते हैं। अब 'झमाकड़ा' क्या कहता है, सुनिए

और विचारिए :—

झमाकड़्या बोऽ, झमाकड़ा बोलदा नचणे जो, नचाणे जो
नैंईं बसणे जो, नैंईं रैह्णे जो, झमाकड़्या बोऽ...
लाड़े दिया माऊ! मेरा मन बोलदा, तेरा मन बोलदा
नचणे जो, नचाणे जो, नैंईं बसणे जो, नैंईं रैह्णे जो
झमाकड़्या बोऽ...
लाड़े दिए ताइये! मेरा मन बोलदा नचणे जो
तेरा मन बोलदा नचाणे जो, नैंईं बसणे जो, नैंईं रैह्णे जो
झमाकड़ा बोऽ... ।

यही नहीं मिल-जुलकर मामियों और मासियों को संबोधित करके भी यह झमाकड़ा चरम सीमा की ओर अग्रसर होता है :—

लाड़े दिये मामिए! मेरा मन बोलदा, तेरा मन बोलदा नचणे जो, नचाणे जो
नैंईं खाणे जो, नैंईं पीणे जो, झमाकड़ा बोऽ
झमाकड़ा बोलदा, नचणे जो, नचाणे जो, नैंईं बसणे जो, नैंईं रैह्णे जो
झमाकड़ा बोऽ... ।

यह 'झमाकड़ा' ऐसा नृत्य गान समागम है, जिसे तब तक गाते जाइए और नाचते रहिए, जब तक आपमें दम-खम है, क्योंकि बारी-बारी संबंध में सभी स्त्रियों का नाम लीजिए और कीजिए 'झमाकड़ा'। फिर लीजिए नाम और फिर नाचिए। जब तक मज़ा आ रहा है और समय अभी है तो नामों को दोहरा-दोहरा कर गाते जाइए और नाचते ही रहिए। कमाल का है न यह लोक-नृत्य गान का स्वरूप!

झमाकड़ा नृत्य के पश्चात् आगंतुक 'मैन्नों' (मामा कुल के लोगों) की भोजन और आवास व्यवस्था की जाती है। इससे पूर्व विवाहोत्सव के लिए वर पक्ष के संबंधी अन्य 'न्यूंदरू' (निमंत्रित लोग) जैसे-जैसे आते जाते हैं, उनका वर पक्ष की नारियाँ बाहर निकल कर आँगन द्वार तक जाकर गीतों से स्वागत करते हुए लिवा लाती हैं। इस समय 'कोयलें' गाई जाती हैं। 'कोयल गीत' एक प्रकार से स्वागत गीत है। कोयल का नमूना देखिए :—

कोयले कौण प्रौहणा आया बोल कोयले!
एह् बूआ प्रौहणी आईऐ बोल कोयले!

यह 'कोयल' गायन सभी रिश्तेदारों के नाम ले लेकर गाया जाता है और इस गायन के साथ झुँड बनाकर वर पक्ष के कुल की महिलाएँ 'न्यूंदरुओं' को विधिवत् स्वागत के साथ 'अंदरेरती' (घर के अंदर ले आती) हैं।

मामा कुल की ओर से वर पक्ष के लिए तोरण, सेहरा तथा अन्य आवश्यक सामान एवं सामग्री भी लाई जाती है, जिसका वैवाहिक संस्कार में अनिवार्य रूप से उपयोग किया जाता है। मामा कुल वालों के 'अंदरोण' के पश्चात् विवाह के शेष 'अह्रोचार' (कुलाचरण) प्रारंभ हो जाते हैं। इनमें शांति हवन एक है। शांति हवन पितृ हवन से संबद्ध है। 'पितरलोक' में बैठे

हुए 'पितरों' को स्मरण करके शांति हवन किया जाता है, जिसमें लोक और वेद दोनों ही की मर्यादा का मिश्रण देखने को मिलता है। पितृ हवन द्वारा 'पितर शांति' इसलिए भी आवश्यक है कि उनका आशीर्वाद मिलता रहे तथा कुल परिवार पर उनकी कृपा से उत्तरोत्तर बढ़ोतरी भी होती रहे। एक ओर जहाँ पंडित जी वेद मंत्रों के साथ पितृ शांति हवन करवाते हैं, वहाँ महिलाएँ भी लोकवाणी में वेदोक्त मंत्रों का सार यों प्रकट करती हैं :—

सुरगे तैं उतरे नं देवते, सांदी आई बौओ
स्हाढ़ा तां औमणा नैंइयों होंदा, ब्रह्मा, विष्णु बौओ
सुरगे तैं उतरे नं देवते, सांदी आई बौओ
स्हाढ़ा तां औमणा नैंइयों होंदा, कुले दा प्रोहृत बौओ। सुरगे तैं...
स्हाढ़ा तां औमणा नैंइयों होंदा, सूरज चंदर बौओ। सुरगे तैं...
स्हाढ़ा तां औमणा नैंइयों होंदा, लाड़े दा बापू बौओ। सुरगे तैं...
स्हाढ़ा तां औमणा नैंइयों होंदा, लाड़े दे गोत्री बौओ। सुरगे तैं...
स्हाढ़ा तां औमणा नैंइयों होंदा, लाड़े दा मामा बौओ
सुरगे तैं उतरे नं देवते, सांदी आई बौओ।

इस क्रम में जितने भी उपस्थित-अनुपस्थित संबंधी हैं, उन सबका नाम ले-लेकर गायन चलता रहता है। विशेष बात यह है कि अपने 'पितरों' के प्रति कृतज्ञता का भाव तथा उनके आशीर्वाद की याचना वर्तमान पीढ़ी का पुरानी पीढ़ियों के प्रति स्नेह-संबंध-भाव की अनुपम युति है। कांगड़ा जनपद में यह लोक विश्वास है कि 'पितरकोप' के कारण कुल परिवार की सुख शांति नष्ट हो जाती है। उधर गीत के माध्यम से 'पितर' भी स्वयं इस 'कारज' (उत्सव) में स्वयं उपस्थित न होकर कुल परिवार, सगोत्रियों एवं पुरोहित आदि द्वारा इस हवन यज्ञ को संपन्न कर लेने की अनुमति प्रदान करते हैं।

वैवाहिक संस्कार व्यक्तिगत अथवा एक कुल परिवार का उत्सव न होकर सार्वजनिक व सामूहिक उत्सव है। यही कारण है कि इस उत्सव में शरीक होने वाले 'साईदारों' (जिन्हें साई देकर बुलाया गया है) की उचित देखभाल और मान प्रतिष्ठा रहती है। शांति हवन करवाने वाले पंडित के लिए भी लोक गीत में समुचित मान-सम्मान का विधान है :—

सांदी लखैंदेया बाह्मणा, कोठे खूब भरेयाँ
रेत ओ म्हारैं भतेरड़े, कोठे खूब करी भरेयाँ। सांदी लखैंदेया...
चौल ओ म्हारैं भतेरड़े, कोठे खूब करी भरेयाँ। सांदी लखैंदेया...
समधाँ ओ म्हारैं भतेरड़ियाँ, कोठे खूब करी भरेयाँ। सांदी लखैंदेया...
तिल ओ म्हारैं भतेरड़े, कोठे खूब करी भरेयाँ। सांदी लखैंदेया...
जौ ओ म्हारैं भतेरड़े, कोठे खूब करी भरेयाँ। सांदी लखैंदेया...
अक ओ म्हारैं भतेरड़ा, कोठे खूब करी भरेयाँ। सांदी लखैंदेया...
दाल तां म्हारैं भतेरड़ी, कोठे खूब करी भरेयाँ। सांदी लखैंदेया...
गुड़ घ्यो ओ म्हारैं भतेरड़ा, कोठे खूब करी भरेयाँ। सांदी लखैंदेया...।

शांति हवन के साथ ही विशेष रूप से एक 'कंजका' (कन्या) को प्रतिष्ठित करके कंगन बाँधा जात है। उसे भगवती स्वरूपा मानकर सुंदर सूहे वस्त्र और चुन्नी आदि भेंट करके विवाहोत्सव संस्कार के समापन होने तक विवाह के सभी विधि विधान और परंपराएँ पूर्ण की जाती हैं। विवाहोत्सव संस्कार की प्रत्येक परंपरा के निर्वाह में वह 'कंजका' ही कार्यक्रम की धुरी रहती है।

शांति हवन के साथ-साथ लाड़े का उबटन मलने का संस्कार 'बुटणा लाणा' प्रारंभ हो जाता है। 'बुटणा' तैयार करने, मलने-मलवाने का काम नाई-नाइन का होता है। 'बुटणा रीति' के साथ-साथ सिर में तेल लगाने की रस्म भी अदा की जाती है। 'बुटणा' मलते समय जहाँ दूल्हे को 'बुटणा' मला जाता है, वहाँ इस बहाने पुरुष-स्त्रियाँ एक-दूसरे के मुँह पर 'बुटणा' मलना, लगाने वाले से बचना, दूसरे को पकड़ कर 'गचमंड' (बिल्कुल गीला) कर देना, होशियारी और चालाकी दिखाना, लुक्का-छुप्पी दूसरे पर धावा बोलना आदि हँसी-मज़ाक का वातावरण बड़ा ही लुभावना और आपसी प्रेमभाव का अद्‌भुत दृश्य उपस्थित करता है। नाई से 'बुटणा' लेते समय दान, दक्षिणा अथवा दामस्वरूप कुछ सिक्के उबटन की थाली में डाले जाते हैं, जिन पर नाई-नाइन का अधिकार होता है। बुटणा मलते समय घर का 'उआन' (बड़ा कमरा—ड्राइंग रूम) गीतों से गूँज उठता है। गीतों और एक-दूसरे को शरारती ढंग से बुटणा मलने की चीख-पुकार और चुहलबाज़ी मिश्रित हंसी के ठहाके खूब गूँजते हैं। महिलाएँ गाती जाती हैं :—

बाए बा कि बुटणा चौलाँ दा, बाए-बा मलैंदियाँ दो जणियाँ। बाए-बा...
द्राणी जठानड़ियाँ, सक्किया भैनड़ियाँ! बाए-बा...
लाड़े दिया माऊ दा नखरा नाणी दा, बाए-बा कि बुटणा चौलाँ दा।
लाड़े दिया माऊ दा नखरा झीरिया दा, बाए-बा कि बुटणा चौलाँ दा।

इस गीत में जैसे-जैसे जो महिला बुटणा मलती है, उसी का नाम लेकर उसके नखरे को पंडित्याणी, झीरी, नाइन, डूमनी, रौलन आदि अनेक संज्ञाओं के साथ टंकित करके हँसी-मज़ाक चलता रहता है। यही नहीं, यहाँ नाई को भी इस ख़ुशी में शामिल करके उसकी अहमियत को बढ़ाया जाता है, क्योंकि यह संस्कार बिना उसके संपन्न हो ही नहीं सकता। लोक नारियाँ गाती हैं :—

नाइया बो नाइया मेरे धर्मे देया भाइया, लाड़े नूं बुटणा मलैणा ऐं।
नाइया बो नाइया, मेरे धर्मे देया भाइया, थोड़ा जेह्या बुटणा लैणा ऐं।
लाड़े जो बुटणा मलैणा ऐ। नाइया बो नाइया, मेरे धर्मे देया भाइया।

बुटणा क्रमशः पैरों, हाथों, भुजाओं, टाँगों, गालों, माथे और फिर बाकी शरीर पेट-पीठ आदि पर लगाया जाता है। बुटणा मलने के बाद 'तेल शांति' कराई जाती है। लाड़े के सिर पर तेल लगाने की यह प्रक्रिया बारी-बारी सभी लोगों द्वारा संपन्न की जाती है। नाई के हाथ में कटोरी में तेल और दूर्वा रहती है। तेल की कटोरी में चंद सिक्के डाले जाते हैं और दूर्वा के साथ लाड़े के सिर के बालों में तेल लगाया जाता है। यह समय भी एक-दूसरे के साथ चुहल भरे गाने गाकर खुशियाँ साझा करने का है। हास्य रस में सृजित गालीनुमा लोक गीतों से हास्य

रस का संचरण होता है। नमूना देखिए :—

ठणकेयाँ सोन कटोरड़िये, कुनीं पाया तेल बे।
ठणकेयाँ सोन कटोरड़िये, मामियाँ पाया तेल बे।
पैसा धेला सरेया नीं तां, अप्पूं तेलैं पेई बे
नाई-पुरोहत राजी होए, घरे जो कामी आईबे
नाई-पुरोहतैं झगड़ा पाया, अद्धो अद्ध बंडाई बे।

बारी-बारी सभी का नाम ले-लेकर यह गीत गाया जाता है। स्थायी 'अंतरों' को लेकर व्यक्ति विशेष का नाम लेकर जब तक चाहें गाते रहिए, सभी का मन लुभाते रहिए। ऊपर लिखित गीत में नाई-पुरोहित के माध्यम से आपसी झगड़े की सृष्टि करके और फिर मामी अथवा किसी अन्य स्त्री को आधा-आधा बाँटने की बात करके विशुद्ध हास्य रस का स्वरूप निश्चित ही लोक गीतकार की वंदनीय कल्पना है।

कांगड़ा जनपद के वैवाहिक संस्कारों में मामाओं की मुख्य भूमिका रहती है। जिस प्रकार 'कंगणाबँधी-कंजका' (कन्या जिसके हाथ में कंगना बँधा होता है) हर प्रक्रिया में हाज़िर चाहिए, ठीक वैसे ही विवाह की संपन्नता तक मामा पक्ष पूर्णतया सक्रिय दिखता है। यही कारण है कि एक दिन पूर्व ही 'तरकाल़ बेल्लैं' (त्रिकाल संध्या) मामा पानी को न्यूंदर (निमंत्रण) देता है। इस लोक रीति को 'पाणी न्यूंदरना' कहा जाता है। एक प्रकार से जैसे हम विवाह से पूर्व निमंत्रण पत्र भेजने से पहले देवी-देवताओं को निमंत्रण लिखते हैं और फिर सगे-संबंधियों को 'न्यूंदरें' भेजी जाती हैं, ठीक वैसे ही विवाह के सभी कार्य सफलतापूर्वक निर्विघ्न संपन्न हों, जल देवता को विधिवत् लोक गीतों के माध्यम से मामा न्यूंदर दे आता है। दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में स्त्रियों की टोली गीत गाती हुई मामा को पानी भरने के लिए ले जाती है। सायंकाल जिस जलाशय को 'न्यूंदर' दी हुई होती है, मामा वहाँ से जल ले आता है। सुबह-सुबह महिलाओं का वह लोक गीत बड़ा ही सुहावना और मनमोहक लगता है। वे जैसे प्रकृति के कण-कण को आप्लावित कर अपने हर्षोल्लास में उन्हें भी सम्मिलित कर लेती हैं। पानी 'न्यूंदरने' का यह गीत दर्शनीय है :—

जागा बोऽऽऽ चिड़ुओ-पखेरुओ मामा पाणियैं आया ऐ
भली कित्ती जिन्नीं मुंडुए दे मामैं, फलियैं खूहा दुआया ऐ।

और फिर स्त्रियाँ 'मामी' पर हास्य मिश्रित व्यंग्य की पिचकारी छोड़ती हुई गाती हैं :—

मामा है किसी राजे का बेटा, मामी तेरो ताल़ी ऐ।

इस पर मामा पक्ष की महिलाएँ प्रतिवाद करती हुई गाती हैं :—

मामा है किसी राजे का बेटा, मामी राजे की राणी ऐ।

जब तक पानी भरने की प्रक्रिया जारी रहती है, तब तक मामा पक्ष की स्त्रियों का नाम ले लेकर पिचकारियाँ छूटती रहती हैं और उन द्वारा प्रतिवाद में प्रत्युत्तर। निम्नलिखित एक अन्य गीत में ऐसे ही शुद्ध हास्य और हल्के व्यंग्य का रसास्वादन कीजिए :—

एह् छण कैंदड़ा पाणी भर ल्याया, एह् छण कैंदड़ा पाणी भर ल्याया।
देखी भई मासेयाँ तेरी बड़ियाई, आप [illegible] हट बिकाई।

लूणे दैं कारण हट बिकाई, तंबाकुए दे कारण हट बिकाई।
एह् छण कैंदड़ा पाणी भर ल्याया, एह् छण कैंदड़ा पाणी भर ल्याया।

बारात की 'पस्ताःई' (तैयारी) से पूर्व दूल्हे को आँगन में ले जाया जाता है और वहाँ वह काला कंबल ओढ़े (काली कंबली वाला कन्हैया का स्वरूप) स्नान करता है। स्नान करते समय लोक गायन होता है :–

नां अंबर बदली, नां अंबर बरखा
अँगणैं चिक्कड़ किंह्याँ होया ऐ...
न्होए धोएगा दादे दा पोतरा, नाने दा द्योह्तरा
बावे सरसिए दा पुत्तर बेऽऽ...
नां अंबर बदली, नां अंबर, बरखा, अँगणैं चिक्कड़ किंह्याँ होया ऐ...।

यह आँगन में 'चिक्कड़' होना दर्शाता है कि जिस समय ये लोक गीत सृजित हुए होंगे उस समय मिट्टी लिपे घर होते थे और थोड़ा सा पानी गिरने से कीचड़नुमा वातावरण हो जाया करता था। लाड़े के स्नानोपरांत उसे आँगन के बीचोंबीच 'मंदल़' में एक चौकी पर खड़ा करके माँ श्वेत सरसों से उसका 'त्रीड़ा' करती है। 'त्रीड़ा' करना अर्थात् नज़र उतारना और बुरी नज़र से बचाने की लोक परंपरा। दूल्हे की माता सफ़ेद सरसों पैरों, टाँगों, पेट, छाती और सिर तक छुआ कर 'बबरुओं' (तला हुआ मीठा पकवान) को सिर पर से वार कर चारों दिशाओं में बिखेर देती है। इस संस्कार के पश्चात् दूल्हे की पस्ताःई (तैयारी) शुरू हो जाती है। उधर बारातिये भी नए-नए वस्त्राभूषण पहन कर तैयार हो जाते हैं। बच्चों का बारात जाने का उत्साह तो देखते ही बनता है। लाड़े की 'पस्ताःई' का काम नाई-पुरोहित का होता है, विशेषकर नाई का। 'नाई भाई' से अनुरोध करती हुई जनपदीय नारियाँ गा उठती हैं :–

पीड़ी-पीड़ी लाड़े दिया पगड़िया बह्नदा
नाइये जो दोष नीं देणा।
नाइया नाइया बे मेरे धरमे-देया भाइया
तूं मेरी बणत बणाई जी, नाइया नाइया मेरे धरमे देया भाइया।
सिंजी-सिंजी लाड़ा कपड़ेयाँ पैह्नदा, तूं मेरी बणत बणाई
सिंजी सिंजी लाड़ा पटके पैह्नदा
भैणे-भैणे मेरिये चजलिए भैणे, तूं मेरी बणत बणाई जी।

इस प्रकार सभी रिश्तेदारों और वस्त्राभूषणों के नाम गिना-गिना कर गीत को बढ़ाया-घटाया जाता है। लाड़े की इस 'पस्ताःई' में मामा पक्ष की ओर से जब 'सेहरा चढ़ाया' जाता है तो उसमें समस्त समाज को सम्मिलित होने का आमंत्रण दिया जाता है कि वे सेहरे को स्पर्श करके दूल्हे के सफल भविष्य की कामना-स्वरूप अपना-अपना आशीर्वाद दें। गीत में आमंत्रण के बोल देखिए :–

लाड़े देयो गोत्रियो अंदर आओ, लाड़े दैं सेहरैं हथ लगाओ
लाड़े देयो गोत्रियो अंदर आओ, लाड़े दैं सेहरैं हथ लगाओ

हथ लगाओ कनैं जानियाँ जाओ, लाड़े देयो गोत्रियो अंदर आओ।

उधर बहिनें सोत्साह कहती हैं :–

घोड़ी बीरा है मुल्तानी, घोड़ी बीरा है मुल्तानी।

और दूसरी ओर से महिलाओं की ढोलक की थाप पर उनके स्वर यों गूँजते हैं :–

मत्थे दे चमकन बाल़ मेरे बनरे दे, मत्थे दे चमकन बाल़ मेरे बनरे दे।
लै बे बन्ना लै सगणा दी मैहंदी, मैहंदी दा रंग सूहा लाल मेरे बनरे दे
लै बे बन्ना लै सगणा दा सेहरा, सेहरे दियाँ लड़ियाँ चार मेरे बनरे दे
लै बे बन्ना लै सगणा दियाँ लौआँ, निक्की देइई बनरी तेरे नाल़
मत्थे ते चमकन बाल़ मेरे बनरे दे।

एक ओर 'पस्ताःई' हो रही होती है तो दूसरी ओर विवाहोत्सव पर बहू पक्ष के लिए 'बरी' आदि की सामग्री का कार्यभार बुआ या जीजा अथवा मामा आदि को दिया जाता है। जिसे भी यह कार्यभार मिलता है, वह पूरे विवाह में 'जजोइया' की पदवी से विभूषित रहता है। 'जजोइया' बहू के लिए वस्त्र, आभूषण, रीढ़ा, चुनरी, अरगजौल़, साज-सज्जा की सामग्री, लौंग-इलायची, कलीचड़ियाँ, रुपये-सिक्कों की थैली आदि संबंधित सामग्री को जठेरी, पुरोहित, नाई समेत सगे-संबंधियों की उपस्थिति में संभाल कर बरी के ट्रंक तथा (आजकल) अटैची केस आदि में तालाबंदी के साथ रख लेता है। वधू पक्ष के घर बारात पहुँचते ही समय-समय पर 'लिखणोतरी' के अनुसार आवश्यक सामग्री दी जाती है। बारात की वापसी पर सारा कार्य संपन्न होने पर ही 'जजोइया' 'बरी' के ट्रंक को सुरक्षित वर पक्ष के घर वालों के हवाले कर देता है।

'पस्ताःई' के पश्चात् जब दूल्हा पूर्णरूपेण प्रस्थान करने के लिए उद्यत हो जाता है तो उसके रूप सौंदर्य को देखकर बहिनों-भाभियों के 'लाग' प्रारंभ हो जाते हैं। बहिनें भाई को पंखा झलती हैं तो भाभियाँ आँखों में सुरमा लगाती हैं। इस संस्कार को किस प्रकार लोक गीत में सन्नद्ध कर दिया गया है :–

सेहरा लाहौरों आया निं, पसौरों आया, कगली दिल्ली शहर तों, हरयावल बन्ना
बन्ना मगैं चाँदी माई मंगल गाँदी, निं हरयावल बन्ना
भाभी कज्जल बांह्दी, पक्खा भैण झोल्लै, निं हरयावल बन्ना
वाल़े लाहौरों आए निं, पसौरों आए निं
मुरकी दिल्ली शैहरों निं, हरयावल बन्ना।

जैसे ही यह सारा कार्यक्रम पूरा हो जाता है तो दादी, माता, तायी, चाची, मामियाँ, मासियाँ तथा सभी संबंधी महिलाएँ दूल्हे को 'तमोल़' लगाती हैं। 'तमोल़' लगाने की रस्म में सारा गाँव और बिरादरी भी सम्मिलित होती है। यह परंपरा आपसी संबंधों, मेल-मिलाप और 'बर्तण' (बर्ताव, लेन-देन) पर निर्भर करती है। 'तमोल़' में दूल्हे को वस्त्र, तौलिया अथवा अपने-अपने 'बर्तण' के अनुसार वस्त्र आदि देने की रीति है। 'तमोल़' के समय लाड़े के माथे पर टीका किया जाता है और तौलिये समेत वस्त्र भेंटस्वरूप उसे नज़र किए जाते हैं। गरी का गोला विशेष रूप से शगुन का आवश्यक अंग रहता है। लाड़ा 'तमोल़' को सिर झुकाकर स्वीकार

करता है और 'तमोल़' की माथा स्पर्श करके वंदना करता है। यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि सेहरा पहनने के पश्चात् लाड़े द्वारा आदरस्वरूप चरण स्पर्श करना निषिद्ध है, इसीलिए सिर झुका कर अभिवादन अथवा वंदना की रीत है। 'तमोलों' को घर वाले संभाल कर एक छड़ (टोकरी) में रखते जाते हैं और किसने क्या दिया, इसका अंकन एक विशेष नियुक्त किया गया व्यक्ति एक कापी में करता जाता है। यह समय बड़ी गहमागहमी भरा होता है। जो-जो स्त्री लाड़े को 'तमोल़' लगाती है, उसके रिश्ते को जतलाकर गाया जाता है :–

तैनूं कौण लावे तमोल़ बे मैं वारी बन्नेयाँ
तैनूं माई लावे तमोल़ बे मैं वारी बन्नेयाँ
माई क्या त्वाह्ड़ा लाग बे मैं वारी बन्नेयाँ
उप्पर दस रुपइये रोक बे मैं वारी बन्नेयाँ
तेरी भाभी पुआए हार बे मैं वारी बन्नेयाँ
उप्पर पँज रुपइये होर बे मैं वारी बन्नेयाँ।

कहना न होगा कि इन लोक गीतों में 'मूल अंतरों' के साथ सभी संबंधियों-मित्रों आदि के दर्जा-बदर्जा नाम जोड़ कर पूरे संस्कार में ये गीत गाए जाते हैं और गाए जा सकते हैं। हाँ, एक बात ज़रूरी है और वह यह कि जब तक भाभियों द्वारा दूल्हे की आँखों में काजल आँजकर मुँह मीठा न करवा दिया जाए, तब तक दूल्हे के शृंगार को पूर्ण नहीं माना जाता।

बारात प्रस्थान से पूर्व माँ दूल्हे को अपने आँचल में लेकर दूध पिलाने के संस्कार की परंपरा को पूरा करती है। कदाचित् दूध पिलाने का प्रतीकार्थ माँ के दूध की लाज रखने से है। यहाँ 'जजोइया' बहिनों, भाभियों और माता को दूल्हे के पिता के संकेत पर पंखा झुलाने, काजल लगाने और दूध पिलाने के लिए भेंटस्वरूप शगुन प्रदान करता है। उधर कुल पुरोहित अपने हाथ में टीके की कटोरी लेकर सभी बारातियों के माथे पर टीका लगाता है और उसके पीछे-पीछे नाई शीशा दिखाता चलता है। इस शुभ कृत्य के लिए बारातियों द्वारा उन्हें उचित दक्षिणा देकर प्रसन्न किया जाता है। फिर गाजे-बाजे, शोर-शराबे, गीत-गायन, नृत्य-भंगड़े, नगाड़े-शहनाई तथा रणसिंघे की अनुगूँज में बारात प्रस्थान करती है। इसी अवसर पर बैंड-बाजे वालों की ख़ूब कमाई होती है और पटाखों-आतिशबाजी की मनोरम दृश्यावली।

वर पक्ष के वधू पक्ष वालों के स्थान पर पहुँचते ही दोनों पक्षों के नाई-पुरोहित 'तेल-तलाई' का सामान लेकर किसी निश्चित स्थान पर विधिवत् पूजा करवाते हैं और फिर 'मिलणी' की रीति का निर्वाह किया जाता है। 'मिलणी' के अवसर पर नाई-पुरोहित की मुख्य भूमिका रहती है। धरती पर एक पवित्र रंगीन वस्त्र बिछा कर दूल्हे वालों से पूछकर पहले से तय की गई 'मिलणियों' की संख्यानुसार 'मिलणियाँ' करवाई जाती हैं। इस अवसर पर कन्या पक्ष वाले वर पक्ष वालों को माल्यार्पण करके कंबल, दक्षिणा तथा आभूषण आदि भेंट करते हैं। दोनों पक्ष वाले एक-दूसरे पर इतरदानी से इतर का छिड़काव करते हैं और बाजे वाले बाजा बजाकर प्रत्येक 'मिलणी' की संपन्नता का स्वागत करते हैं। इस अवसर पर युवा पीढ़ी का नृत्य भंगड़ा और आतिशबाज़ी, बम-पटाखों का नज़ारा वातावरण को मेले-उत्सव जैसा बना देता है।

'मिलणी' में दूल्हा भी घोड़ी पर सवार रहकर यह सारा कौतुक देखता रहता है।

बारात से 'मिलणी' के बाद वर्तमान में नया संस्कार जुड़ गया है– वरमाला पहनाने का, जो पूर्व में नहीं था। कांगड़ा जनपद में पूर्वकाल में विवाह के अवसर पर कन्या वर को माल्यार्पण तो करती थी, किंतु विवाह मंडप में। आजकल परंपरा और संस्कार के इस नए संस्करण पर कई लोग नाक-भौं सिकोड़ कर टिप्पणी करते हैं– 'जब बारात के आते ही कन्या ने सार्वजनिक रूप से माला पहनाकर 'बन्ने' को वर लिया तो फिर वैदिक रीति से विवाह की पवित्रता कहाँ रही?' किंतु समाज तो सामूहिक निर्णयों से नई-नई परंपराएँ गढ़ता-बनाता है न। असल बात तो यह है कि समस्त महिला समाज और अन्य लोग भी सार्वजनिक रूप से वरमाला के इस नए संस्कार को सहर्ष स्वीकार कर चुके हैं और हर विवाह के अवसर पर इस 'मिलन-प्रसंग' की प्रतीक्षा करते हैं। यहीं कन्या दूल्हे को और दूल्हा कन्या को माल्यार्पण करते हैं तालियों की गड़गड़ाहट में। आजकल यहाँ 'डी.जे.' पर डांस की परंपरा भी चल निकली है। वर-कन्या को दोनों ओर के सगे संबंधियों द्वारा भेंट देकर आशीर्वाद दिया जाता है। फ़ोटो सेशन भी यहीं संपन्न होता है। एक ओर बारात का स्वागत, वरमाला का कार्यक्रम तो दूसरी ओर भोजन आदि की व्यवस्था। पंडित जी 'लिखणोतरी' के तयशुदा मुहूर्त के अनुसार वर-वधू के 'लग्न' लेने के संस्कार को पूरा करवाने का उपक्रम करते हैं। ज्योतिष और लोक विश्वास के मुताबिक लग्न का समय बड़ा महत्त्वपूर्ण है। लोक मान्यता है कि– *'ब्याहे दे लगन खुंजणा नीं चाइदे'* अर्थात् वैवाहिक संस्कार में हर हालत में तय मुहूर्त ही में लग्न लिए जाने चाहिए। तभी प्रकारांतर से व्यंजना में यह मुहावरा है– *'तेरे कुथू लगन खुंजा दे हन?'* कदाचित् इसीलिए 'लिखणोतरी' में पंडित लोग दो लग्न-मुहूर्त निकालते हैं, जिन्हें क्रमशः 'पहला लग्न' और 'दूजा लग्न मुहूर्त' (समय) कहा जाता है। कारणवश यदि पहला लग्न न लिया जा सके तो अवश्यमेव दूजा लग्न कभी न खोएँ। लग्न और वेद ही विवाह-संस्कार की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। लग्न और वेदिका के समय का सभी सगे-संबंधी विशेषकर स्त्रियाँ बड़ी लगन के साथ प्रतीक्षा करती हैं।

'लग्नों' में बैठने से पूर्व लड़की का भाई दूल्हे को अँगूठे से पकड़कर स्नानागार की ओर ले जाता है। पहले तो सार्वजनिक रूप से आँगन में स्नान करवाया जाता था, किंतु अब स्नानागार में स्नान करने की छूट मिल गई है। यहाँ दूल्हे को कन्या का भाई पीली-धोती, यज्ञोपवीत और कोरे वस्त्र पहनने को देता है। पीले वस्त्रों में दूल्हे को प्रतीकार्थ में विष्णु का रूप माना जाता है। विष्णुस्वरूप दूल्हे को भगवती स्वरूपा कन्या का दान दिया जाता है। तभी तो कन्या पक्ष के छोटे-बड़े सभी लोग दूल्हे को प्रणाम किया करते हैं। इन पंक्तियों के लेखक को बचपन में बड़ा विचित्र लगता था, जब बुआइया जी से उम्र में बड़े माधोराम जी आचार्य चरण स्पर्श करके उन्हें प्रणाम करते थे। बाद में पूछने पर ज्ञात हुआ कि सामाजिक मान्यता एवं लोक विश्वास है कि दूल्हा सारे गाँववासियों के लिए विष्णुस्वरूप पूज्य होता है। बारात के आगमन और मंडप में बैठते ही महिलाएँ सहर्ष गाती हैं :–

गाजेयाँ ब्हाले आए छनरिया, बाजेयाँ ब्हाले आए।

दूसरी ओर [illegible], शहनाई [illegible] और [illegible] की मधुर ध्वनि

माहौल को बड़ा ख़ुशनुमा बना देते हैं। इसी मध्य मंडप में लग्न संस्कार अर्थात् कन्यादान संस्कार संपन्न होता है। यहाँ दूल्हा-दुलहन और कन्या के माता-पिता स्नानादि करके पूर्णरूपेण पवित्रावस्था में अपनी कन्या को अग्नि को साक्षी बनाकर दान-स्वरूप दूल्हे को अर्पित करते हैं। तभी तो कन्यादान के अवसर पर महिलाओं का साथ निभाते हुए पंडित जी कहते हैं :–

'कन्यादान गंगा का स्नान, कन्यादान गंगा का स्नान' और महिलाएँ वेदिका पर से कटोरियाँ देने-लेने की परंपरा का निर्वाह करती हैं। महिलाएँ पंचम स्वर में गाती हैं :–

होमैं सैह् होमैं होमिए का होमिए?
होमैं सैह् आइए होमिए ध्यू होमिए।
होमैं सैह् आइए होमिए क्या होमिए?
होमैं सैह् आइए होमिए जौ होमिए। होमैं सैह् होमैं होमिए क्या होमिए?
होमैं सैह् आइए होमिए तिल होमिए। होमैं सैह् होमैं होमिए क्या होमिए?
होमैं सैह् आइए होमिए चौलाँ होमिए। होमैं सैह् होमैं होमिए क्या होमिए?
होमैं सैह् आइए होमिए भुर्ज पत्र होमिए, होमैं सैह् होमैं होमिए क्या होमिए?
होमैं सैह् आइए होमिए गुड़ होमिए। होमैं सैह् होमैं होमिए क्या होमिए?

इसी स्थायी अंतरे के साथ हवन सामग्री में प्रयुक्त होने वाली अन्य सभी छोटी-बड़ी वस्तुओं का नाम गिना-गिनाकर जब तक मर्ज़ी गाइए और दोहराइए। लोक गीतों की विशेषता यही है कि मनमर्ज़ी और समय को देखते हुए संबंधियों की संख्यानुसार इन्हें चिरकाल तक गाया जा सकता है। विशेषता तो यह है कि इनका भाव और आनंद भी चिरकाल तक वैसा ही रहता है, क्योंकि अगले संस्कार की शुरुआत के साथ ही लोक गीत बदल भी तो जाएगा न। इस सारे कार्यक्रम के दौरान सालियाँ-भाभियाँ दूल्हे के साथ जूते चुराने, उसके पहने हुए वस्त्र आसन आदि के साथ सिल देने जैसी अन्य छोटी-मोटी शरारतें करती हैं, जिनका उत्तर देने के लिए दूल्हे के मित्र पहले ही से तैयार रहते हैं। सालियों के लिए जीजा से कुछ विशेष भेंट लेने का यही अवसर होता है जब कन्या पक्ष के घर के प्रवेश द्वार पर रोककर गाती हैं और अपना 'लाग' दिलवाने का आग्रह करती हैं :–

साढ़ेयाँ लागाँ दुआई दे जी, साढ़ेया जीजा
साढ़ेयाँ लागाँ दुआई दे जी, साढ़ेया जीजा।

इसे वे तब तक गाती ही जाती हैं, जब तक दूल्हा स्वयं या 'जजोइये' द्वारा दक्षिणा दिलवाकर उनकी मनशा पूरी न कर दे। यहाँ 'लाग' की लेन-देन में ख़ूब तोल-मोल और भाव-ताव चलता है, जिसमें सालियाँ और सहेलियाँ तथा दूल्हे की ओर से उसके मित्र बहुत देर तक सवाल-जवाब करते रहते हैं। इस दौरान कई बार लड़के वालों की ओर से ज़बरदस्ती या होशियारी से बिना 'लाग' दिए प्रवेश करने की कोशिश भी की जाती है, जिसे सालियाँ और सहेलियाँ कभी-कभी अन्य लोग भी मिलकर नाकाम कर देते हैं। अंततः सालियों को उनका 'लाग' मिलता है और दूल्हे को हँसी-खुशी कन्या के घर में प्रवेश। 'लाग' की रकम सभी सालियाँ आपस में बाँटकर आनंद मंगलाचार मनाती हैं। वैसे इस अवसर पर वैवाहिक संस्कारों की

संपन्नता के दौरान सालियाँ बीच-बीच में कभी-कभार 'गाली गीत' भी गाती है :—

जीजा! रिह्न सरुआँ दा साग, मसाला मैं दिन्नियाँ
जीजा कर माऊ दा दान, कि बावा मैं दिन्नियाँ
जीजा कर बैहणी दा दान, भणोइया मैं दिन्नियाँ
जीजा कर मामी दा दान, कि मामा मैं दिन्नियाँ
जीजा! रिह्न सरुआँ दा साग, मसाला मैं दिन्नियाँ।

लोक गीत की रीति अनुसार स्थायी अंतरे को दोहरा-दोहरा कर बारी-बारी सभी महिला संबंधियों के नाम ले लेकर सालियाँ वातावरण की गंभीरता में हल्केपन का आभास करवाकर आनंद का संचार करती हैं।

लग्न और वेदिका के अवसर पर क्रमानुसार बारी-बारी आवश्यकतानुसार 'बरी' के वस्त्राभूषण मँगवाए जाते हैं, जिन्हें 'जजोइया' सावधानी से भिजवाता है। महिलाओं द्वारा वर पक्ष की 'बरी' को देखने की परंपरा भी है, जो अब धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। वैवाहिक संस्कारों में 'सींदी' (माँग) भरना, दुद्ध-लस्सी खेलणा, मुँह दृष्टा करना और छंद आदि सुनाना भी मनोरंजक विधि-विधान हैं। ये सभी विधि-विधान वेदोक्त और लोकोक्त परंपराओं में सुग्रंथित हैं। वेद और लोक संस्कृति का यह मेल अद्‌भुत, सुहावना, मनोरंजक और शिक्षाप्रद भी है। पूर्वकाल में अनपढ़ स्त्रियाँ भी आशु-शब्द-रचना करने में ऐसी प्रवीण थीं कि बड़े-बड़े पढ़े-लिखे भी दाँतों तले उँगली दबाकर रह जाएँ। 'देह्‌रे' के सम्मुख बिठाकर जब लाड़ा-लाड़ी 'दुद्ध-लस्सी' खेलते हैं तो नारियाँ दूल्हे से छंद सुनाने का आग्रह करती हैं। छंद विधान अर्थात् काव्य कला में पारंगतता। इन लोक संस्कारों में दूल्हे की प्रत्युत्पन्नमति, हाव-भाव, अंग-प्रत्यंग, बोल-चाल और विस्तार से शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिकता की जाँच-परख भी हो जाया करती थी। इन पंक्तियों के लेखक को विवाहोत्सव में छंद सुनाने के आग्रह की परंपरा की एक बड़ी मनोरंजक घटना स्मरण हो आती है, जिसका यहाँ उल्लेख करना अन्यथा न होगा। एक विवाह में किन्हीं बुज़ुर्ग महिलाओं ने दूल्हे से 'छंद' सुनाने का आग्रह किया तो शरारत के लिए दूल्हे को बारातियों ने जो छंद याद करवाया था, वही उसने झट से सुना दिया :—

'छंद पराके आइए जाइए, छंदे अगैं ताश
जे तुसाँ बौह्‌ते छंद सुणने, तां चलो जनेती पास।

फिर क्या था एक वृद्ध किंतु बहुत चतुर एवं कुशल महिला ने तुरंत उत्तर दिया :—

छंद पराके आइए जाइए छंदे अगैं कंगणा
जे एहोदेहे छंद सुणाए तां असाँ उस पिपले कनैं टँगणा।

वेचारा दूल्हा चुप, लाजवाब, क्योंकि वह तो रटंत तोतू था। उधर महिला समाज में हँसी-खुशी के माहौल में ख़ूब ऊँचा ठहाका लगा।

कन्या पक्ष की ओर से विदाई के समय 'तमोल' आदि लगते हैं और फिर उसे दान देकर विदा किया जाता है। कन्या पक्ष में एक हल्की उदासी वाला शांत वातावरण होता है तो दूल्हे के घर पुनः रौनक लौट आती है। यह [illegible] की [illegible] और [illegible]। वैसे ही दूल्हा अपनी

दुलहन के साथ घर में प्रवेश करता है और पालकी 'ठप्पी' (रखी) जाती है तो महिलाएँ खुशी में झूम-झूम कर गाती हैं :—

झिलमिल-झिलमिल पालकी जी स्हाढ़ैं अँगणैं आई
अम्माँ दा लाडला पुत्तर जी, ओह् ब्याही घर आया। झिलमिल...
भाऊए दा लाडला भाई जी, ओह् ब्याही घर आया। झिलमिल...
दादुए दा लाडला पोत्तरू जी, तैह् ब्याही घरैं आया
झिलमिल-झिलमिल पालकी जी, स्हाढ़ैं अँगणैं आई।

'झिलमिल-झिलमिल' स्थायी अंतरे के साथ सभी सगे-संबंधियों का नाम ले लेकर यह लोक गीत वातावरण को सुखद और आंनद पूर्ण बनाता है।

दूल्हे के घर अंदरोण, गुणे खेलने, थैलिया हथ पुआणा, जूठ कराणी, भड़ूआ, भरोणा, देई-देवताओं का परसणा, दाड़न फिरनी और बहू को 'गोतलै मलाणा' आदि लोक परंपराओं का निर्वाह किया जाता है। इन सभी कथित एवं अन्य छोटी-बड़ी लोक परंपराओं का सोदाहरण संगीत वर्णन-चित्रण पृथक् निबंध की दरकार रखता है।

'गोतलैं मलाणा' वैवाहिक संस्कार वर पक्ष की ओर से 'नव वधूटी' को अपने वंश, कुल, गोत्र में मिल जाने, मिला लेने के भाव-बंधन में बँधा हुआ है। इस संस्कार में सभी महिलाओं से परिचय, समाज-व्यवहार में भागीदारी और पुरुष-महिला समाज का सामूहिक भोज (धाम) करना सम्मिलित है। 'गोतलैं मलाणा' एक ऐसा प्रभावशाली संस्कार है, जो नव वधू को उसकी अहमीयत ही नहीं दर्शाता, प्रत्युत भविष्य में आयु भर उसके मन को रोमांचित करके उसे घर-परिवार की रीति-नीति, परंपरा और कुलाचार के प्रति जागरूक भी बनाए रखता है। इस परंपरा में सगोत्रीय पुरुष-महिलाएँ एक साथ धाम जीमने बैठते हैं। महिलाओं की पंक्तियों के मध्य 'नव वधूटी' को बिठाया जाता है। वधू के दायें-बायें बैठीं सभी महिलाएँ परोसी हुई धाम को अपनी-अपनी मुट्ठियों में ले लेकर डाक बाँधकर 'नव वधूटी' तक पहुँचाती हैं और 'नव वधूटी' उस सर्व-मिश्रित पकवान्न में से मुट्ठियाँ भर-भरकर सभी सगोत्रीय महिलाओं को वापिस लौटाती है।

पैंठ (पंक्ति) में बैठे-बैठे डाक बाँधकर सभी स्त्रियों द्वारा एक-दूसरे को इस प्रकार पकवान्न को पहुँचाने का यह कार्यक्रम बड़ा रोचक, मनोरम, सुहावना, दर्शनीय और अपनत्व भरा लगता है। भोजन ग्रहण करने से पूर्व पकवान्न के इस लेन-देन के समय महिलाओं का हर्षोल्लास भरे मन से यह सामूहिक गान आस-पास सभी को हर्षित करता रहता है :—

स्हाढ़ैं गोतलैं मिल़ ए बो, कुड़मा दीए बेटिए
स्हाढ़ैं गोतलै रल़-बो, कुड़मा दीए बेटिए
स्हाढ़ैं अगणैं बैह् बो, कुड़मा दीए बेटिए
स्हाढ़ैं व्हल ई रैह् बो, कुड़मा दीए बेटिए
स्हाढ़ा खाणा खा बो, कुड़मा दीए बेटिए
स्हाढ़ैं गोतलै मिल़ बो, कुड़मा दीए बेटिए।

अपर्णा-श्री, हाऊसिंग कॉलोनी, चीलगाड़ी, धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश-176215

चंबा ज़िला की वैवाहिक पद्धतियाँ और संबंध विच्छेद

● डी. एस. देवल

मानव समाज के लिए विवाह एक आवश्यक संस्कार है। हमारे देश और प्रदेश में कई पद्धतियों से विवाह होते हैं। प्रस्तुत लेखक के शोध के अनुसार चंबा ज़िला में लगभग बाईस-पचीस प्रकार के विवाह होते हैं। इस ज़िले में विवाह संबंध विच्छेद भी अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग प्रकार से होते हैं। यद्यपि आज के वैश्वीकरण युग में काफ़ी तबदीलियाँ आई हैं, तथापि चंबा ज़िले का अधिकांश हिस्सा आज भी ग्रामीण और जनजातीय क्षेत्र होने के कारण यहाँ कई प्राचीन परंपराएँ आज भी विद्यमान हैं। विवाह की जो परंपराएँ इस ज़िले में प्रचलित रही हैं और जो हैं, उनका वर्णन इस लेख में किया जा रहा है।

सामान्य विवाह

चंबा ज़िला के विभिन्न क्षेत्रों में लोकाचारों और रीति-रिवाजों में विभिन्नता होने के बावजूद यहाँ सामान्य विवाह वेद-विधि के अनुसार लगभग एक जैसा ही होता है। विवाह की प्रक्रिया निम्न प्रकार से होती है :—

रिवारा : प्रायः लड़के वाले और कई जगह लड़की वाले रिश्ते की बात चलाते हैं। जिस व्यक्ति के माध्यम से रिश्ते की बात चलाई जाती है, उसे 'रिवारु' कहते हैं तथा इस प्रथा को 'रिवारा'।

मंगणी : रिवारे द्वारा सहमति हो जाने पर लड़के का पिता अपने साथ कुछ गणमान्य व्यक्तियों को लेकर कन्या-पक्ष के घर पर जाता है और अपने लड़के के लिए लड़की का रिश्ता माँगता है। कई जगह रिश्ता पक्का करने से पहले लड़के और लड़की की जन्म कुंडली मिलाने की प्रथा भी है। रिश्ता पक्का होने को स्थानीय बोली में 'मंगणी' कहते हैं।

मँगवाली : मंगणी की रस्म पूरी हो जाने के उपरांत, दोनों पक्ष कुल पुरोहित से कोई शुभ दिन निश्चित करवा कर कन्या पक्ष के घर पर एक दिवसीय आयोजन रखते हैं, जिसमें लड़के का पिता, मामा तथा चार-पाँच अन्य परिजन शामिल होते हैं, जहाँ गाँव के सभी लोग तथा लड़की के परिजन उपस्थित रहते हैं। लड़की को लड़के वालों की ओर से गहना पहनाया जाता है तथा कुछ कपड़े इत्यादि भी उपहार में दिए जाते हैं। कई जगह जेठ अपनी होने वाली भावज को जेवर पहनाता है। उसके उपरांत लड़के का मामा एक शिला पर गुड़ तोड़ता है, जिसे स्थानीय बोली में 'गुड़-भनणा' कहते हैं। लड़के का मामा ही सभी उपस्थित जनों में गुड़ बाँटता है और बचा हुआ शेष गुड़ लड़की की माँ को दे देता है। इस प्रथा को 'मँगवाली' कहते हैं।

छोई : विवाह से कुछ दिन पहले वर और कन्या दोनों पक्ष वाले अपने तथा पड़ोसी गाँव वालों को किसी निर्धारित दिन के लिए लकड़ियाँ काटने का न्योता देते हैं। अतः उस दिन प्रत्येक घर से एक-एक व्यक्ति अपनी कुल्हाड़ी तथा रस्सी इत्यादि लेकर जाता है। आयोजक द्वारा चयनित किसी पक्की लकड़ी के पेड़ को काट कर उसके जलाने योग्य टुकड़े बनाए जाते हैं। उसी दिन शादी की रसोई के लिए सारी लकड़ियाँ आयोजक के घर पहुँचा दी जाती हैं। इस प्रथा को 'छोई' कहते हैं।

लग्नोत्री : विवाह से एक सप्ताह पूर्व वर पक्ष का कुल पुरोहित लग्न कुंडली बनाता है, जिसमें ग्रह-नक्षत्रों की गणना अनुसार यह लिखित में दिया जाता है कि किस समय विवाह का कौन सा अनुष्ठान होगा। वर का पिता तथा उसके दो-तीन अन्य बाँधव कुल पुरोहित सहित कन्या के घर जाते हैं, जहाँ उस पक्ष के बाँधव भी उपस्थित रहते हैं। वर पक्ष का पुरोहित उस लग्नपत्री को पढ़कर सुनाता है। उसके उपरांत एक धागे की डोर में पुरोहित द्वारा वर और कन्या दोनों के पिता से गाँठ लगवाई जाती है, जो विवाह निश्चित हो जाने का सामाजिक इकरार होता है। इस प्रथा को स्थानीय बोली में 'लग्नोत्री' कहते हैं।

नगाड़ा पूजन : विवाह वाले दिन आयोजक के घर सर्वप्रथम कुल पुरोहित और साज़िंदे पहुँचते हैं। कुल पुरोहित सभी घर वालों से विधि-विधान से नगाड़ा पूजन करवाता है, जिसे 'नगाड़ा पूजणा' या 'शिव-पूजणा' कहते हैं। उसके उपरांत साज़िंदे, गाँव के प्रत्येक घर के प्रांगण में बधाई राग बजाते हैं, जहाँ से उन्हें बधाई भेंट मिलती है।

गाली : विवाह के प्रत्येक संदर्भ पर कुछ निपुण महिलाएँ गीत गाती हैं, जिन्हें स्थानीय बोली में 'गाली' कहते हैं। एक ओर कुल पुरोहित मंत्रोच्चारण करता है तो दूसरी ओर पारंपरिक साज़िंदे साज़ बजाते हैं।

तोरण पूजा : यद्यपि साधारण बोल-चाल में तोरण स्वागत गेट को कहते हैं, तथापि विवाह के लिए इसे वेद-विधा से स्थापित किया जाता है। कुल पुरोहित आयोजक से उस तोरण का पूजन करवाता है, जिस पर लकड़ी से बनाए हुए रंग-बिरंगे तोते लगाए होते हैं।

छक : लड़की-लड़के के ननिहाल वाले साज़-बाज के साथ भानजे-भानजी की शादी में आते हैं। साथ ही उनके गाँव वाले अपने-अपने घरों से अनाज इत्यादि इकट्ठा करके मामा के घर पर पहुँचाते हैं। सारा अनाज तथा अन्य वस्तुएँ घोड़ों पर लादकर अथवा गाड़ी में भरकर सभी ननिहाल वाले धूम-धाम से विवाह में सम्मिलित होते हैं। उनके आगमन पर आयोजक अपने बाँधवों सहित तोरण के बाहर उनका धूप-दीप से गर्मजोशी से स्वागत करता है और उन्हें आदर-सत्कार सहित घर में प्रवेश कराता है। सर्वप्रथम उन्हें चाय-पान और नाश्ता इत्यादि करवाया जाता है। उसके उपरांत पारंपरिक वेश-भूषा में मामा-मामी अपने साज़िंदों सहित गाँव के पनिहारे (जलस्रोत) पर जाते हैं। मामा जल का कुंभ भरता है तथा मामी उसे अपने सिर पर उठाती है। उसी जल से वर/कन्या को स्नान करवाया जाता है, जिसे 'नाहणा' कहते हैं। विवाह के प्रथम दिन की धाम ननिहाल वालों की ओर से होती है। उक्त सारी प्रक्रिया को 'छक' कहते हैं।

लड़ी : लड़के या लड़की की शादी में गाँव व पड़ोसी गाँवों वाले तथा सगे संबंधी आयोजक के घर अनाज तथा दालों इत्यादि का 'बर्तन' लगाते हैं, जिसमें चावल, दालें, गेहूँ, मक्की और तेल इत्यादि तोल कर दिए जाते हैं। प्रत्येक आयोजक द्वारा उस 'बर्तन' का अपने पास लिखित लेखा-जोखा रखा जाता है। जब इनके घर पर भी इस प्रकार का आयोजन होता है तो वह 'बर्तन' उन्हें लौटाना पड़ता है। इस प्रथा को 'लड़ी' या 'लुढ़ेक' कहते हैं। कई बार तो इतना अधिक अनाज इत्यादि इकट्ठा हो जाता है कि शादी का खर्चा 'लड़ी' से ही पूरा हो जाता है, बल्कि कई बार तो शादी के बाद भी काफ़ी अनाज शेष बच जाता है। यह एक बहुत अच्छी परंपरा है, जिसके चलते ग़रीब से ग़रीब घर के लड़के व लड़की की शादी भी बड़ी ही धूमधाम से हो जाती है।

बुटणा : हल्दी, चंदन और बेसन इत्यादि से उबटन तैयार किया जाता है। दूल्हे और दुलहन दोनों को उबटन लगाया जाता है। उबटन केवल महिलाएँ ही लगाती हैं। इस परंपरा को 'बुटणा लाणा' कहते हैं।

मेहंदी : वर और कन्या को उनकी परिजन महिलाएँ मेहंदी लगाती हैं। एक स्थानीय पत्तेदार झाड़ी, जिसे स्थानीय बोली में 'हल्लू' कहते हैं, के पत्तों में देसी हल्दी और लाल चंदन मिलाकर, फिर इसे पीस कर मेहंदी बनाई जाती है। आजकल अधिकतर बाज़ारू मेहंदी का प्रयोग किया जा रहा है। विशेषकर दुलहन के हाथों और पैरों में मेहंदी से की गई चित्रकारी बड़ी ही सुंदर होती है।

तेल सांद : सांद एक विशेष प्रकार के घास से बनाई हुई रस्सी होती है, जिसे स्थानीय बोली में 'बग्गड़' कहते हैं। पूजा के उपरांत मामा आयोजक के घर की चारदीवारी के भीतर छत के साथ उस रस्सी को लगाता है। इस प्रथा को 'सांद' कहते हैं। इसके पश्चात् वर/कन्या को किसी ऊँचे आसन पर बिठाया जाता है। मामा वर/कन्या के सिर के ऊपर कटार रखता है, जिसे 'कटारी पकड़ना' कहते हैं। एक थाली में सरसों का तेल और दूभ (दूर्वा) रखी होती है। प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति दूभ को तेल की कटोरी में भिगोता है और वर/कन्या के सिर पर तेल सींचता है तथा थाली में सिक्का या पैसे इत्यादि दक्षिणा डालता है। कुल पुरोहित मंत्रोच्चारण करता है, पारंपरिक साज़िंदे अपने साज़ बजाते हैं और महिलाएँ विवाह-संदर्भ गीत गाती हैं। इस प्रथा को 'तेल सिंजणा' कहते हैं।

जनेऊ : इस प्रथा में वर को यज्ञोपवीत धारण करवाया जाता है। कुल पुरोहित वर को मृगछाला धारण कराता है और उसके सारे शरीर पर भभूति मली जाती है। वर को एक झोली तथा एक दान-पात्र देते हैं। छः स्थानों पर वर के निकट संबंधी तथा सातवें स्थान पर वर की माता को खड़ा किया जाता है। वर प्रत्येक स्थान पर अलख बोलता है और 'भिक्षाम् देही' कहता है। भिक्षा देने से पहले उसे प्रत्येक स्थान पर पूछा जाता है कि 'आपने जोग क्यों लिया'? वर उत्तर देता है 'जनेऊ धारण करने के लिए'। फिर उसके दान पात्र में भिक्षा डाली जाती है। आख़िर में वर माँ से भिक्षा की याचना करता है और माँ से भिक्षा प्राप्त करने के उपरांत कुल पुरोहित वेदोक्त विधि से वर को जनेऊ धारण करवाता है। छहे स्थानों पर वर की मृगछाला के साथ

पानी से भरे और कुछ खाली लौकी के खोल बाँधे होते हैं, जिन्हें स्थानीय बोली में 'बीबड़े' कहते हैं। जब वर भिक्षा माँग रहा होता है तो उसकी भाभियाँ मज़ाक करती हैं और 'बीबड़ों' को डंडे से फोड़ देती हैं। इस प्रकार एक अच्छा हास-परिहास हो जाता है।

नाहणा : मामा और मामी द्वारा लाए गए जल से वर/वधू को पुनः स्नान कराया जाता है। यह स्नान महिलाएँ करवाती हैं। इस प्रथा को 'नाहणा' कहते हैं।

धाम : तेल सींचने वाले दिन की धाम ननिहाल पक्ष की ओर से होती है, जिसे 'मामेरी छक' कहते हैं। लड़की की शादी में वेदी मंडप का ख़र्चा लड़की का मामा वहन करता है तथा लड़के की बारात में होने वाला ख़र्चा भी वर पक्ष का मामा ही वहन करता है। कई जगह दो 'छकें' या अधिक 'छकें' भी आती हैं। मुंडन संस्कार में बना मामा भी कई जगह 'छक' लाता है। अन्यत्र वर/कन्या की अर्थ-संपन्न बुआ और बहनें भी अपनी अलग से 'छक' लाती हैं। कई बार तो शादी इन 'छकों' से ही संपन्न हो जाती है।

जानी : दूल्हे के साथ जो बारात जाती है, उसमें कई स्थानों पर बाराती अपनी पारंपरिक वेशभूषा में जाते हैं। बारातियों को स्थानीय बोली में 'जंज' या 'जंदड़' कहते हैं और बारात को 'जानी' या 'परसाई' कहते हैं।

पीठ : बारात के प्रस्थान से पहले दूल्हे को सेहरा बाँधा जाता है। उसके बाद उसे एक चौकी पर बिठाया जाता है। दूल्हे की बहनें अपने भैया को हवा झुलाती हैं, भाभी काजल लगाती है तथा दूल्हे के दोस्त और सगे-संबंधी उसे भेंट-स्वरूप मेवे, कपड़े और नक़दी देते हैं। दूल्हे की बहनें, बुआ और क़रीबी मित्र उसे फूलों और नोटों से गुँथी मालाएँ भी पहनाते हैं। इस प्रथा को 'पीठ' कहते हैं।

बरसुही : बारात के साथ कुल-पुरोहित और नाई भी जाता है। वर पक्ष वाले एक बक्से या अटैची में नव-वधू के लिए भेंट स्वरूप कुछ कपड़े और यथाशक्ति ज़ेवर भी ले जाते हैं। वह अटैची नाई के पास रहती है और वह बारात में शामिल होकर उस अटैची को दुलहन के घर पहुँचाता है। इस प्रथा को 'बरसुही' कहते हैं।

जानी बर्धणा : बारात के प्रस्थान करने की प्रथा को 'जानी बर्धणा' कहते हैं। जैसे ही वर अपना दरवाज़ा लाँघने लगता है, वैसे ही बंदूक से हवाई फ़ायर किया जाता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि बंदूक का फ़ायर करने से प्रेत आत्माएँ बारात से दूर रहती हैं। वर माँ के चरण छूकर घोड़ी पर सवार होता है।

अग्रीहण : जब बारात लड़की के घर के समीप पहुँचती है तो उस पक्ष वाले धूप-दीप इत्यादि लेकर बारात के स्वागत के लिए आते हैं। कई जगह वर पक्ष और कन्या पक्ष के साज़िंदों के मध्य साज़ वादन का मुक़ाबला भी होता है, जिसे 'मेला' कहते हैं। इस स्वागत प्रथा को 'अग्रीहण' कहते हैं।

मिलणी : अग्रीहण की रस्म के उपरांत कन्या पक्ष का कुल पुरोहित एक सफ़ेद कपड़ा बिछाता है और उस पर वर और वधू के पिता गले मिलते हैं और एक-दूसरे के सिर के ऊपर से पैसे घुमाकर उस चादर पर डालते हैं, जिसे 'वारंडे' कहते हैं। इस पूरी प्रथा को 'मिलणी' कहते हैं।

दोनों पक्षों के मामे, चाचे, ताये भी मिलणी करते हैं।

द्वार टपणा : जब बारात दुलहन के घर पहुँचती है तो दरवाज़े पर दूल्हे की सालियाँ दरवाज़ा रोके होती हैं। वे दूल्हे को गृह-प्रवेश करने से रोकती हैं। दूल्हा सालियों को पैसे देता है, परंतु माँग बढ़ती जाती है, अच्छा-ख़ासा आमोद-प्रमोद होता है। कई स्थानों पर दूल्हे की सालियाँ उसकी घोड़ी को पकड़ लेती हैं। दूल्हे को उन्हें भी लाग स्वरूप पैसे देने पड़ते हैं। इस प्रथा को 'द्वार टपणा' कहते हैं।

वेदी : कन्या पक्ष का कुल पुरोहित मंडप बनाकर वेदी तैयार करता है। वेदी के एक ओर वर पक्ष और दूसरी ओर कन्या पक्ष वाले बैठते हैं। वर और कन्या के मामा-मामी भी अपने-अपने पक्ष के साथ बैठते हैं। दोनों पुरोहित वेदी की प्रक्रिया संपन्न कराते हैं। अग्नि को साक्षी मानकर वर और कन्या वेदी के सात फेरे लेते हैं, जिसे 'वेदी फिरणा' कहते हैं।

सुवाज : कन्या पक्ष के गाँव वाले, सगे-संबंधी तथा ननिहाल वाले यथासामर्थ्य दुलहन को दहेज देते हैं। उस समय वर पक्ष के दो-तीन मोहतबर (साख रखने वाले) बाराती वहाँ पर उपस्थित रहते हैं। दहेज में दी गई प्रत्येक वस्तु का ब्योरेवार इंदराज किया जाता है, ताकि जब इनके घर में शादी हो तो उसी प्रकार से हर वस्तु लौटाई जा सके। केवल आयोजक के दहेज का इंदराज नहीं किया जाता है। इस प्रकार इस ज़िले में सामूहिक दहेज का प्रचलन है, दहेज की कोई माँग नहीं की जाती है। दहेज भराई के उपरांत सारा सामान बाँध कर कुछ व्यावसायिक लोगों की सिपुर्ददारी में दे देते हैं और वही लोग सारा सामान लड़की की ससुराल में पहुँचाते हैं। इस प्रथा को 'सुवाज' कहते हैं।

सुहानी : सुवाज भराई के उपरांत विवाह की आख़िरी धाम होती है और धाम के बाद सभी आमंत्रित लोग अपने-अपने घर की ओर से नक़दी रुपये दर्ज करवाते हैं। यह इंदराज इसलिए किया जाता है, ताकि इन्हें भी ऐसे ही मौक़े पर इतनी ही राशि लौटाई जा सके तथा कुछ राशि अपनी ओर से नयी लगाई जा सके। इस प्रथा को 'सुहानी' कहते हैं। कई जगह जब दूल्हा-दुलहन पहली बार दुलहन के मायके जाते हैं तो मायके वाले उस सारी एकत्रित राशि का कोई ज़ेवर बनाकर उन्हें दे देते हैं।

हेरा-फेरा : लड़की को विदा करने के बाद उसे पालकी में बिठाते हैं और वर को घोड़ी पर चढ़ाते हैं। लड़की के माता-पिता उन्हें उसी समय आमंत्रित करते हैं और पुनः घर के अंदर ले आते हैं। उन्हें भोजन कराया जाता है। फिर बारात की विदाई होती है। इस प्रथा को 'हेरा-फेरा' या 'हड़-फेरा' कहते हैं। कई जगह यह 'हेरा-फेरा' बाद में भी आयोजित किया जाता है। इसके लिए दोनों पक्षों द्वारा कोई दिन निश्चित किया जाता है। उस दिन वर पक्ष वाले मिठाई और पकवान इत्यादि बनाते हैं। लड़की अपने पति के साथ पहली बार अपने मायके जाती है। वर का छोटा भाई या चचेरा भाई उस सामग्री को उठाता है और अपने भैया और भावज के साथ जाता है। लड़की के मायके वाले उन मिठाइयों और पकवान को अपने गाँव के प्रत्येक घर में बाँट देते हैं। गाँव वाले भी नव दंपती को अपने घर पर भोजन इत्यादि के लिए बुलाते हैं। लड़की की विदाई पर मायके वाले भी उसी प्रकार मिठाइयाँ और पकवान लड़की की ससुराल भिजवाते

हैं और उन्हें भी उसी प्रकार ससुराल के गाँव के प्रत्येक घर में बाँटा जाता है।

सेहरा और कंगन उतारना : जब बारात वापस आती है तो वर पक्ष का पुरोहित वर के घर पर दूल्हा और दुलहन से 'अठलाई' (आठवाँ फेरा) करवाता है। उसके उपरांत वर का सेहरा तथा वधू का कंगन उतारा जाता है। जो पुरुष या महिला वर का सेहरा उतारता है, वह वर का भाई/बहन बन जाता है तथा जो वधू का कंगन उतारता है, वह वधू का भाई/बहन बन जाता है।

पंचेक : विदाई के दूसरे दिन लड़की का पिता, उसके गाँव वाले तथा अन्य परिजन इकट्ठे होकर लड़की की ससुराल जाते हैं। लड़की का पिता घर में तैयार किया हुआ भोजन भी अपने साथ ले जाता है, जिसे स्थानीय बोली में 'नुहारी' कहते हैं। लड़की की ससुराल पहुँचने पर उनका बड़ी गर्मजोशी से स्वागत किया जाता है। लड़की के पिता के साथ जो 'नुहारी' होती है, उसे मुख्यतः वर/वधू, उनके मित्रों और भाइयों-बहनों को परोसा जाता है। इस प्रथा को 'पंचेक' कहते हैं।

तमोल : वर पक्ष वालों की आख़िरी धाम को 'तमोली-छक' कहते हैं। इसे बड़ी धाम भी कहते हैं। इस धाम के उपरांत आमंत्रित व्यक्ति अपने-अपने घर की ओर से नक़दी दर्ज करवाते हैं। दो व्यक्ति वर के खुले प्राँगण में बैठ जाते हैं। एक व्यक्ति दी गई नक़दी का रजिस्टर में इंदराज करता है तथा दूसरा व्यक्ति एक थाली में रखे हुए तिल-चावल और गुड़ के मिश्रण को 'तमोल' देने वाले व्यक्ति को देता है। इस प्रथा को 'तमोल' कहते हैं। इस प्रकार सामान्य विवाह संपन्न हो जाता है।

जनेई विवाह

चंबा ज़िला की चुराह घाटी में एक ऐसी शादी होती है, जो एक ही दिन में संपन्न हो जाती है। इस आयोजन में सर्वप्रथम ननिहाल वाले आते हैं, जिसे 'छक' कहते हैं। मामा-मामी अपने पारंपरिक लिबास में गाँव के पनिहारे (जलस्रोत) से कुंभ में जल भरकर लाते हैं। उस जल से वर/वधू को स्नान करवाया जाता है, जिसे 'नाहणा' कहते हैं। उसके उपरांत वर को चोला-डोरा, चूड़ीदार पायजामा और पगड़ी पहनाई जाती है। पग के साथ कलगी लगाई जाती है, जो नील (मोनाल) के पंखों से बनाई गई होती है। ऐसा ही लिबास दूल्हे के छोटे भाई को भी पहनाया जाता है। स्थानीय बोली में दूल्हे को 'जंद्रा' और दूल्हे के छोटे भाई को 'पड़-जंद्रा' कहते हैं। दोनों को नंगी तलवारें दी जाती हैं। बारातियों का भी यही लिबास होता है, परंतु उन्हें कलगी नहीं पहनाई जाती है और न ही उन्हें तलवारें दी जाती हैं।

जब बारात प्रस्थान करती है तो दरवाज़े पर दूल्हे की माता उसे आशीर्वचन देती है और बाहर एक हवाई फ़ायर किया जाता है। इस विवाह में दूल्हे सहित सारी बारात पैदल ही जाती है। जब बारात कन्या के घर के समीप पहुँचती है तो कन्या का पिता तथा उसके बाँधव धूप-दीप से बारात का स्वागत करते हैं, जहाँ पर दोनों पक्षों के साज़िंदों में वाद्ययंत्रों का मुक़ाबला होता है। इन पारंपरिक साज़िंदों को स्थानीय बोली में 'बजंत्री' कहते हैं। इस प्रतियोगिता को स्थानीय बोली में 'मारू' और स्वागत समारोह को 'मेला' कहते हैं। दोनों

पक्षों के साज़िंदों की श्रेष्ठता का निर्णय उपस्थित जनसमूह ही करता है। इसके उपरांत बारात घर में प्रवेश करती है। भोजनोपरांत दहेज भरा जाता है, जिसमें प्रायः सामूहिक दहेज का प्रचलन है। सभी गाँव वाले तथा सगे-संबंधी बर्तन, कपड़े इत्यादि लड़की को दहेज में देते हैं। पारंपरिक व्यावसायिक लोग उस दहेज को वर के घर पहुँचाते हैं। वर पक्ष वाले दहेज पहुँचाने वालों का धूप-दीप से स्वागत करते हैं। इस विवाह में दूल्हे द्वारा दुलहन की माँग भरने की रस्म अदा की जाती है।

सामान्य धाम के उपरांत कन्या की विदाई होती है। कुल पुरोहित एक थाली में एक विशेष प्रकार की दीपमाला बनाता है और उसे प्रज्वलित करता है। विदाई के समय पुरोहित दरवाज़े पर वर और वधू से उस सप्तदीप-माला का पूजन करवाता है, जिसे स्थानीय बोली में 'आरती' कहते हैं। उसके साथ ही बारात लौट जाती है। इस शादी में दुलहन पैदल ही जाती है। गाँव के प्रत्येक घर का कम से कम एक व्यक्ति तथा अन्य परिजन लड़की को उसकी ससुराल छोड़ने जाते हैं। मायके से आए इन लोगों को स्थानीय बोली में 'जनेउ' कहते हैं। वर पक्ष वाले इनका धूप-दीप से स्वागत करते हैं तथा चरण स्पर्श करते हैं। चाय-पान के उपरांत इन्हें घी और शहद के साथ गेहूँ के आटे से तैयार की हुई एक विशेष प्रकार की रोटी परोसी जाती है, जिसे स्थानीय बोली में 'मंडे' कहते हैं। कन्या पक्ष की ओर से आए इन लोगों के पैर धुलाए जाते हैं, बड़े-बूढ़ों के पैरों की तेल से मालिश की जाती है। रात को 'मुसाहदा' गायन होता है, जिसमें पेशेवर गायक, जिसे 'गुराही' कहते हैं, रात भर मुसाहदा गाता है। इस प्रकार के विवाह को 'जनेई' कहते हैं।

नसवाई

यह एक प्रेम विवाह होता है। लड़के और लड़की में प्रेम संबंध स्थापित होने पर लड़का चुपके से लड़की को अपने घर ले आता है। यदि लड़के के माता-पिता की सहमति हो तो तीसरे दिन लड़के का पिता अपने साथ गाँव के तीन-चार प्रमुख लोगों को लेकर लड़की के मायके जाता है। कई जगह भेंट-स्वरूप एक बकरा भी ले जाते हैं, जिसे 'नज़र' कहते हैं। मोहतबर लोग दोनों पक्षों में सुलह करवा देते हैं। सुलह-सफ़ाई की इस प्रथा को 'पतियारा' कहते हैं। पतियारा हो जाने के बाद लड़के वाले कोई दिन निश्चित करके अपने गाँव वालों को तथा लड़की के मायके वालों को आमंत्रित करते हैं। उस दिन लड़की को वर द्वारा गहना पहनाया जाता है। गहना पहनाने की रस्म को 'मँगवाली' कहते हैं।

उपस्थित लोगों में गुड़ बाँटा जाता है और उसके उपरांत सहभोज होता है। इस प्रकार 'नसवाई' की इस शादी को सामाजिक मान्यता मिल जाती है। कई जगह पहला बच्चा होने पर लड़की को नवजात शिशु के साथ मायके में बुलाते हैं। माँ-बच्चे की विदाई के दिन मायके वाले अपने जमाई को तथा सगे-संबंधियों और अन्य गाँव वालों को भी आमंत्रित करते हैं और धाम देते हैं। मायके वाले दहेज इत्यादि देकर लड़की को विदा करते हैं। इस प्रथा को कई जगह 'रोटियोज' भी कहते हैं। आजकल प्रेम विवाह करके लड़का और लड़की अपने विवाह का पंजीकरण न्यायालय में भी करवाते हैं, जिसे 'कोर्ट मैरिज' कहते हैं।

माला-फेरे

लड़के और लड़की में प्रेम संबंध स्थापित हो जाने पर लड़का अपनी प्रेमिका को चुपके से भगा कर अपने घर ले आता है। लड़के का पिता लड़की वालों को तुरंत अवगत करवा देता है कि 'आपकी लड़की और हमारे लड़के ने प्रेम विवाह कर लिया है और इस प्रेम संबंध को हमने स्वीकार कर लिया है।' उसके उपरांत मायके वालों को मनाने के लिए लड़के वाले लड़की के मायके जाते हैं। लड़की के माता-पिता से सुलह-सफ़ाई हो जाने के बाद लड़के वाले अपने कुल पुरोहित से कोई दिन निश्चित करवा कर अपने घर पर शिव पूजन का आयोजन करते हैं, जिसे स्थानीय बोली में 'नवाला' कहते हैं। नवाले में ऊन और पुष्पों की माला को गूँथ कर चौरासी लड़ियों की माला बनाई जाती है। वर और वधू के लड़ बाँध कर (ग्रंथि बंधन) नवाले में स्थापित माला के सात फेरे लगवाए जाते हैं। इस प्रकार के विवाह को सामाजिक मान्यता प्राप्त हो जाती है। इस प्रथा को 'माला-फेरे' कहते हैं।

मंदिर विवाह

यदि किन्हीं कारणों से वर और कन्या के माता-पिता व्यवस्थित विवाह करवाने में असमर्थ हों तो दोनों पक्ष पुरोहित से कोई दिन निश्चित करवाते हैं और उस दिन वर और कन्या को मंदिर ले जाते हैं और उनके लड़ गाँठ कर मंदिर की परिक्रमा करवाते हैं तथा देवता को साक्षी मानकर विवाह की वैधता को मान लेते हैं। इस प्रकार के विवाह को 'मंदिर विवाह' या 'देहरे फिरणा' कहते हैं।

कुड़माई

कई क्षेत्रों में 'मंगणी' के बाद कुल-पुरोहित से कोई दिन निश्चित करवा कर कन्या पक्ष के घर पर एक दिन का आयोजन तय करवाया जाता है। निर्धारित दिन को वर पक्ष की ओर से तीन, पाँच या सात व्यक्ति कन्या के घर जाते हैं। पूजा-अर्चना के उपरांत कन्या को वर पक्ष वालों की ओर से गहना पहनाया जाता है तथा कपड़े इत्यादि भेंट किए जाते हैं। उसके उपरांत सभी उपस्थित लोगों में गुड़ और चावल बाँटे जाते हैं। कई जगह इसी अवसर पर पुरोहित से विवाह का दिन भी निश्चित करवा लिया जाता है। इस प्रथा को 'कुड़माई' कहते हैं।

जूठ पाणा

यह प्रचलन प्रायः गद्दी समुदाय में है। पुरानी प्रथा के अनुसार लड़के और लड़की का विवाह सात-आठ साल की उम्र में कर देते थे। यह आयोजन केवल कन्या पक्ष के घर पर होता है। वर पक्ष वाले कन्या पक्ष वालों के घर जाते हैं, जहाँ उनका भव्य स्वागत होता है। वर पक्ष वाले कन्या को गहने इत्यादि देते हैं। मामा गुड़ तोड़ता है और सभी उपस्थित लोगों में उसे बाँटता है, जिसे स्थानीय बोली में 'गुड़ भनणा' कहते हैं। उसके उपरांत वर और कन्या के पिता एक-दूसरे पर रंग और इत्र फेंकते हैं, जो नव संबंध का एक शुभ सूचक माना जाता है। तब पहले वर पक्ष वालों को भोजन करवाया जाता है। उसके उपरांत आम धाम होती है। परंतु इस आयोजन में वधू की विदाई नहीं होती है। इस प्रथा को स्थानीय बोली में 'जूठ पाणा' कहते हैं।

सदणियोज

यह प्रथा भी इस ज़िले में प्रायः गद्दी समुदाय में प्रचलित है। लड़के और लड़की की बाल्यावस्था में शादी कर देते हैं, परंतु उस समय लड़की की विदाई नहीं की जाती है। जब वर और कन्या युवा हो जाते हैं तो दोनों पक्ष ब्राह्मण से कोई मुहूर्त निकलवा कर 'सदणियोज' का आयोजन करते हैं। कन्या पक्ष वाले अपने सगे संबंधियों को आमंत्रित करते हैं और वर पक्ष वाले भी इस प्रकार का आयोजन अपने घर पर करते हैं। वर के साथ उसके दो-तीन निकट संबंधी कन्या पक्ष के घर आते हैं। वहाँ धाम का आयोजन होता है और उसके उपरांत मायके वाले यथासामर्थ्य दहेज देकर उसी रोज़ लड़की को विदा कर देते हैं। इस प्रथा को 'सदणियोज' कहते हैं। 'सदणियोज' का एक कारण ग़रीबी भी है, क्योंकि आर्थिक दशा ठीक न होने के कारण बच्चों की बाल्यावस्था में शादी करवा देते हैं और धीरे-धीरे जब आर्थिक दशा सुधरती है तो एक छोटा सा यह 'सदणियोज' नामक आयोजन करके लड़की को विदा कर दिया जाता है।

सट्टा-बट्टा

कुछ क्षेत्रों में विशेषकर अल्पसंख्यक समुदायों में एक ऐसी प्रथा है कि लड़की के बदले लड़की देनी पड़ती है। यदि लड़के की कोई सगी बहन न हो तो चचेरी या रिश्ते की कोई बहन बदले में देनी पड़ती है। संबंध तय होने पर संबंधी एक-दूसरे पर रंग फेंकते हैं, जो रिश्ता पक्का हो जाने का प्रमाण माना जाता है। शादी प्रायः आयोजित ढंग से की जाती है। कई बार दोनों पक्ष शादी भी इकट्ठी ही करवा देते हैं। दोनों पक्ष बारात ले जाते हैं और लड़की के बदले लड़की को ब्याह कर ले आते हैं। इस प्रथा को स्थानीय बोली में 'सट्टा-बट्टा' कहते हैं।

झिंड फुक

इस प्रकार की शादी की प्रथा प्रायः गद्दी समुदाय में है। यदि लड़के और लड़की में प्रेम संबंध स्थापित हो जाता है और दोनों ओर के माँ-बाप इन संबंधों को मान्यता देने के लिए राज़ी न हों तो उस दशा में लड़का और लड़की भाग जाते हैं। लड़का अपने दोस्तों को और लड़की अपनी सहेलियों को किसी आम चौराहे पर बुलाती है। चौराहे पर सूखी झाड़ी रखी जाती है और उस झाड़ी को आग लगा दी जाती है। वर और कन्या के लड़ बाँधे (ग्रंथि बंधन) जाते हैं और वे उस जलती हुई झाड़ी के सात फेरे लेते हैं। लड़के के दोस्त तथा लड़की की सहेलियाँ उन्हें उपहार देते हैं। इस प्रकार शादी हो जाती है और ऐसी शादी को सामाजिक मान्यता मिल जाती है। इस प्रथा को 'झिंड फुक' या 'झराड़ फुक' कहते हैं।

झंझराड़ा

इस शादी का प्रचलन भी प्रायः गद्दी समुदाय में है। इसके अंतर्गत विधवा विवाह भी सम्मिलित है। यदि कोई विवाहिता छोटी उम्र में विधवा हो जाए तो उसका झंझराड़ा हो सकता है। वह प्राथमिकता पर अपने कुँवारे जेठ या देवर से शादी कर सकती है, बल्कि वह अन्यत्र भी इस प्रथा के अंतर्गत विवाह कर सकती है। इसके अलावा यदि किसी लड़के-लड़की में प्रेम संबंध स्थापित हो जाए तथा उनके माता-पिता इस रिश्ते को स्वीकार न करें तो इस प्रथा के

अंतर्गत विवाह हो सकता है। इसी प्रकार इस प्रथा के अंतर्गत कोई विवाहित औरत भी अपने प्रेमी के साथ भाग कर पुनः विवाह कर सकती है। यदि उसका पूर्व पति पंचायत इत्यादि में दावा दायर करे तो नए पति द्वारा पूर्व पति को मुआवज़ा दिया जाता है, जिसे स्थानीय बोली में 'मामला' कहते हैं। इस परंपरा की शादी में वर पक्ष वाले अपने सगे संबंधियों को किसी निर्धारित दिन अपने घर पर आमंत्रित करते हैं। उस दिन सर्वप्रथम एक अनुबंध पत्र बनाया जाता है, जिसे 'खेवट' कहते हैं। उसके उपरांत नव पति अपनी नव पत्नी को नाक का कोई गहना पहनाता है तथा कपड़े इत्यादि भी भेंट स्वरूप देता है। उसके बाद सामान्य धाम होती है। क्योंकि ऐसा विवाह केवल वर पक्ष वालों के घर पर ही आयोजित किया जाता है, इसलिए वधू को कोई अन्य दहेज इत्यादि नहीं मिलता है। कई स्थानों पर आमंत्रित लोग धाम के उपरांत वर पक्ष वालों को पैसे भी देते हैं, जिसे स्थानीय बोली में 'बर्तन' कहते हैं। यदि किसी फ़ौजी की युद्ध के दौरान मृत्यु हो जाए और उसकी पत्नी कहीं अन्यत्र विवाह करना चाहे तो वह भी इस प्रथा के अंतर्गत पुनर्विवाह कर सकती है। ऐसे विवाह को सरकार भी प्रोत्साहित करती है। उस विधवा की पेंशन यथावत् ही रहती है। इस प्रथा को 'झंझराड़ा' कहते हैं।

घर जमाई

यदि किसी परिवार में पुरुष संतान न हो या मात्र इकलौती लड़की हो तो शादी के उपरांत उसके पति को घर जमाई के रूप में रखा जाता है, परंतु गद्दी समुदाय में इस प्रथा में कुछ भिन्नता है। गद्दी समुदाय में सबसे पहले लड़के को अनुबंधित किया जाता है कि वह 'इतने वर्षों तक' लड़की वालों के घर अवैतनिक काम करेगा तथा अपनी निष्ठा और ईमानदारी को उस अरसे में प्रमाणित सिद्ध कराएगा तो लड़की के माता-पिता अपनी लड़की का विवाह उस लड़के से कराएँगे। यह समय सीमा लड़की की आयु पर भी निर्भर करती है, परंतु यह सीमा दस वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।

इस प्रकार वह अनुबंधित लड़का उस लड़की के मायके में अवैतनिक काम करता है और अपनी योग्यता और निष्ठा सिद्ध करता है। निर्धारित अवधि समाप्त होने पर लड़के को नौकरी के बंधन से मुक्त कर दिया जाता है और फिर पारंपरिक रीति-रिवाज से लड़की की उस लड़के से शादी करवा दी जाती है। शादी के उपरांत वह लड़का अपने ससुराल में घर जमाई बनकर रहता है। गद्दी समुदाय के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी घर जमाई रखने की प्रथा है, परंतु ऐसा केवल लड़के की सहमति से ही किया जाता है, जिसका पंचायत इत्यादि में भी इंदराज करवाना पड़ता है।

सिर गुड़ाई

कई स्थानों पर बिल्कुल ही साधारण ढंग से शादी कराई जाती है। यदि वर पक्ष और कन्या पक्ष वालों की आर्थिक स्थिति अच्छी न हो तो दोनों पक्ष इस विवाह के लिए कोई अच्छा सा दिन मुकर्रर करवाते हैं। उस दिन दूल्हा अपने किसी एक निकट संबंधी के साथ दुलहन के घर जाता है। ससुराल में दूल्हे तथा उसके साथ आए व्यक्ति की बड़ी ख़ातिरदारी होती है। साँझ ढलते दुलहन को नए कपड़े पहनाकर तथा उसके केश सँवार कर दूल्हे के साथ विदा कर

दिया जाता है। इस प्रकार के विवाह में कोई दहेज इत्यादि नहीं दिया जाता है। इस सादे ढंग के विवाह को स्थानीय बोली में 'सिर गुड़ाई' कहते हैं।

पिलम

यह विवाह पद्धति केवल पांगी घाटी में ही प्रचलित है। इस प्रथा में प्रायः लड़का-लड़की एक-दूसरे को पसंद कर लेते हैं। लड़का अपने परिजनों को अपनी इच्छा से अवगत कराता है और उसी प्रकार लड़की भी अपनी माँ अथवा बहन को अपनी पसंद के लड़के के बारे में बताती है। दोनों पक्षों की सहमति हो जाने पर वर पक्ष की ओर से कन्या पक्ष वालों के समक्ष औपचारिक प्रस्ताव रखा जाता है तथा 'पिलम' का आयोजन तय किया जाता है। इस प्रथा में तय तिथि को वर अपने दो-तीन दोस्तों के साथ अपनी ससुराल जाता है। ये लोग दो-तीन बोतलें शराब, 'लुच्चियाँ' (गेहूँ के आटे से बनाई गई विशेष प्रकार की रोटियाँ) और हलवा इत्यादि भी भेंट करने के लिए अपने साथ ले जाते हैं।

ससुराल में इनकी बड़ी आवभगत होती है। दोस्त तो दूसरे दिन वापस चले जाते हैं, परंतु दूल्हा अपनी ससुराल में रह जाता है। सामाजिक प्रथा के अनुसार लड़का-लड़की वैध पति-पत्नी मान लिए जाते हैं। उसके उपरांत 'फक्की' के लिए दिन निश्चित किया जाता है। यदि इस बीच लड़की गर्भवती हो जाए तो संतान का वह बाप माना जाता है। यदि किन्हीं कारणों से 'फक्की' इत्यादि का आयोजन न हो तो भी इस प्रकार की पारंपरिक शादी को सामाजिक मान्यता मिल जाती है। इस प्रथा को 'पिलम' कहते हैं।

फक्की

यह वैवाहिक प्रथा केवल पांगी घाटी में ही प्रचलित है। इसमें प्रजा (स्थानीय सामाजिक पंचायत) के किसी मोहतबर व्यक्ति को वर पक्ष वालों की ओर से 'दीवान' नियुक्त किया जाता है, जो लड़की के घर रिश्ते का प्रस्ताव लेकर जाता है और वर पक्ष वालों की ओर से भेजी हुई शराब वधू पक्ष वालों को भेंट स्वरूप नज़र करता है। यदि वे प्रस्तावित रिश्ता स्वीकार कर लेते हैं तो दीवान की ख़ूब ख़ातिर की जाती है। कन्या पक्ष के नज़दीकी परिजन भी इकट्ठे हो जाते हैं और दीवान की ख़ातिरदारी में पीने-पिलाने का ख़ूब दौर चलता है। यह नव संबंध स्थापित हो जाने का पहला जश्न होता है। यदि प्रस्तावित रिश्ता अस्वीकार हो तो वर पक्ष की ओर से दीवान के माध्यम से भेजी हुई शराब वापस कर दी जाती है। इस प्रथा को स्थानीय बोली में 'फक्की' कहते हैं।

छक्की

दीवान पुनः वर पक्ष वालों की ओर से कन्या के घर जाता है और छक्की के आयोजन की तारीख़ तय करवाता है। निर्धारित दिन को वर, उसका पिता तथा आठ-दस नज़दीकी रिश्तेदार उसी दीवान के साथ वधू पक्ष वालों के घर जाते हैं। यदि वर का जाना संभव न हो या वह कहीं बाहर गया हो तो उस दशा में वर के स्थान पर उसका भाई जाता है। ये लोग कम से कम तीन-चार मटके अपने साथ ले जाते हैं, जिनमें अन्न से तैयार की हुई स्थानीय शराब होती है। साथ में कम से कम एक मन 'लुच्चियाँ' भी ले जाते हैं। कई स्थानों में हलवा-पूरियाँ

तथा कई जगह घी और शहद में तैयार किए गए 'सत्तू' भी ले जाते हैं। इनके अतिरिक्त आटे का बनाया हुआ बकरा ले जाना इसमें अनिवार्य होता है। कन्या पक्ष के घर पहुँचने पर उनका भव्य स्वागत किया जाता है। सर्वप्रथम उन्हें चाय-पान इत्यादि करवाया जाता है। इस अवसर पर कन्या पक्ष वालों ने अपने गाँव के लोग तथा सगे-संबंधी भी आमंत्रित किए होते हैं। शाम को अंधेरा होने से पहले सभी लोग एकत्र हो जाते हैं तथा यथोचित स्थान पर बैठ जाते हैं। पूजा मंडप बनाया जाता है, जिसमें धूप-दीप इत्यादि जलाया जाता है। वर पक्ष वाले आटे का बकरा तथा 'लुच्चियाँ' उस पूजा मंडप में रखते हैं और पूजा की रस्म अदा की जाती है। उसके बाद वर कन्या को अँगूठी पहनाता है और उपहार स्वरूप कपड़े इत्यादि भी भेंट करता है। यदि दूल्हा स्वयं उपस्थित न हो तो दूल्हे का भाई ये वस्तुएँ दुलहन की किसी सहेली के माध्यम से दुलहन को भेंट करता है।

इस रस्म के उपरांत वर पक्ष द्वारा लाई गई 'लुच्चियाँ' और हलवा इत्यादि उपस्थित लोगों में बाँटा जाता है। फिर शराब के मटके चूल्हे के पास रखे जाते हैं और उनसे शराब निकाल कर सर्वप्रथम देवता को भेंट की जाती है। देवता की प्रतिमा पर शराब के छींटे डाले जाते हैं, जिसे स्थानीय बोली में 'छौत कैते बै' कहते हैं। उसके बाद पीने-पिलाने का सिलसिला आरंभ हो जाता है तथा धाम खिलाई जाती है। दूसरे दिन शाम को जब वर पक्ष वाले वापस जाने लगते हैं तो कन्या पक्ष वाले भी उन्हें 'लुच्चियाँ' और हलवा इत्यादि भेंट करते हैं और रास्ते में पीने के लिए शराब भी देते हैं। इस प्रथा को 'छक्की' कहते हैं।

ब्याह

पांगी घाटी में दीवान ही वर पक्ष वालों की ओर से कन्या पक्ष वालों से विवाह की तिथि निश्चित करवाता है। बारात में दूल्हे सहित केवल तीन ही व्यक्ति जाते हैं। ये तीनों अपनी पारंपरिक वेशभूषा में होते हैं। बारात में सबसे आगे दीवान चलता है, उसके पीछे दूल्हा होता है। सबसे पीछे चलने वाले व्यक्ति के हाथ में नंगी तलवार होती है, उसे स्थानीय बोली में 'पट-माहरा' कहते हैं। इसी क्रम में बारात कन्या पक्ष में घर पर पहुँचती है। बारात उस रात दुलहन के मायके में ठहरती है। दूसरे दिन वधू पक्ष वालों की ओर से धाम का आयोजन होता है। धाम के उपरांत दहेज भराई की रस्म होती है, जिसे स्थानीय बोली में 'सुवाज' कहते हैं।

दहेज ऐच्छिक होता है, परंतु परिवार की ओर से दिए जाने वाले दहेज के अतिरिक्त परिजन भी दहेज में कपड़े, कंबल और चूरी गाय इत्यादि देते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी औपचारिकताएँ नहीं होती हैं। शाम को कन्या वाले तथा जिन्होंने 'सुवाज' दिया होता है, स्वयं ही 'सुवाज' उठाकर दुलहन की ससुराल छोड़ने चले जाते हैं। जब बारात वापस लौटती है तो चलने का क्रम बदल जाता है। इस क्रम में दीवान तो आगे ही चलता है, उसके पीछे 'पट-माहरा' तथा उसके पीछे दूल्हा चलता है। इनके पीछे दुलहन और कन्या पक्ष वाले चलते हैं। जब बारात वर पक्ष के यहाँ पहुँचती है तो दरवाज़ा लाँघने से पहले बंदूक़ से हवाई फ़ायर किया जाता है। उसके उपरांत दरवाज़े पर भेडू या बकरे की बलि दी जाती है, ताकि बारात के साथ कोई राक्षस या बला इत्यादि अंदर न आ सके। दोनों पक्षों के लोग दरवाज़े पर धूप-दीप

जलाकर कुल देवता की पूजा-अर्चना करते हैं तथा देवता को 'लुच्चियाँ' और प्रसाद चढ़ाते हैं। उसके बाद ही नव वधू से गृह प्रवेश करवाया जाता है।

सबसे पहले उन्हें खाना खिलाया जाता है। उसके उपरांत एक थाली में दो भागों में बराबर हलवा और 'लुच्चियाँ' दूल्हे और दुलहन के सामने रखी जाती हैं। ये दोनों अपने-अपने हिस्से की 'लुच्चियाँ' जल्दी-जल्दी खाते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि यदि दुलहन अपने हिस्से का हलवा और 'लुच्चियाँ' दूल्हे से पहले खा ले तो वह जीवनपर्यंत पति पर हावी रहती है अन्यथा पति अपनी पत्नी पर हावी रहता है। इस प्रथा को स्थानीय बोली में 'पन्हां' कहते हैं। इसके उपरांत धूप-दीप जलाकर एक थाली वधू के सामने रखी जाती है। वधू के सास-ससुर कोई गहना उपहारस्वरूप उस थाली में रखते हैं। उसके बाद दूल्हे के सगे-संबंधी भी यथासामर्थ्य बारी-बारी से कपड़े और पैसे इत्यादि थाली में रखते हैं। इस प्रथा को स्थानीय बोली में 'तनोड़' कहते हैं। उसके उपरांत पीने-पिलाने का सिलसिला आरंभ हो जाता है, जो रात भर चलता रहता है। अगले दिन जातर का आयोजन किया होता है, जिसे स्थानीय बोली में 'जाट' कहते हैं। इस में 'पट-माहरा' को उसी पारंपरिक वेशभूषा में 'जाट' में लाते हैं और उस पर शराब के छींटे फेंकते हैं और उसे नचाते हैं, जिसे स्थानीय बोली में 'माहरा नचांते बै' कहते हैं। उस 'जाट' में दूल्हे को भी नचाया जाता है। उसके सिर के ऊपर पैसे घुमाते हैं, जिसे स्थानीय बोली में 'वारंडा कैते बै' कहते हैं। इस घड़ी की सभी को प्रतीक्षा रहती है और सभी लोग उस नृत्य का आनंद लेते हैं। उस रात भी कन्या पक्ष वाले वहीं ठहरते हैं, उनकी ख़ूब आदर-ख़ातिर होती है। उससे अगले रोज़ कन्या पक्ष वालों को आदर-सम्मान के साथ विदा किया जाता है। उन्हें रास्ते के लिए शहद और घी में बनाए हुए सत्तु दिए जाते हैं और रास्ते में पीने के लिए बढ़िया शराब। लड़की वालों के जाने के उपरांत उस शाम को वर पक्ष वालों के सभी सगे-संबंधी पुनः इकट्ठे हो जाते हैं। शाम को एक अच्छी सी धाम दी जाती है और रात भर नाच-गान चलता रहता है। इस आयोजन में नई दुलहन को भी नचाया जाता है। इस प्रथा को स्थानीय बोली में 'नउई लाड़ी नचांते बै' या 'बैहुट नचांते बै' कहते हैं। इन सभी आयामों के साथ विवाह संपन्न होता है, जिसे पांगी घाटी में 'ब्याह' कहते हैं।

पिठ्चुक

पांगी घाटी में शादी की एक अन्य प्रथा है, जिसे 'पिठ्चुक' कहते हैं। यानी किसी मनपसंद लड़की का बलात् अपहरण करना, परंतु आज की युवा पीढ़ी अधिकांशतः इसका विरोध करती है। इस परंपरा में लड़का अपनी पसंद की किसी लड़की का चयन करता है, परंतु लड़की उसकी इस इच्छा से अनभिज्ञ होती है। लड़का अपने दोस्तों इत्यादि की सहायता से कोई उचित मौका पाकर लड़की को ज़बरदस्ती उठा लेता है, कहीं पीठ पर, कहीं घसीटकर जैसे-तैसे लड़की को अपने घर पहुँचाता है। उसके उपरांत गाँव के कुछ मोहतबर लोग और कुछ पुरुष-महिलाएँ वहाँ इकट्ठे हो जाते हैं। वे सभी लड़की को मनाने की कोशिश करते हैं कि वह खाना खा ले। यदि लड़की खाना खा लेती है तो शादी के लिए उसकी रज़ामंदी मानी जाती है, अन्यथा नहीं। दूसरे दिन लड़की के मायके वाले भी वहाँ पहुँच जाते हैं। वे अपनी लड़की से पूछते हैं कि क्या

वह अपनी मर्ज़ी से आई है या उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी पिठचुक की गई है? यदि लड़की इच्छा जता देती है कि वह ख़ुश है और उसने स्वेच्छा से खाना खाया है तो उस दशा में इस शादी को मायके वाले तथा समाज मान्यता दे देते हैं। लड़की के मायके से आए हुए सभी लोगों की वहाँ ख़ूब ख़ातिरदारी होती है।

यदि लड़की ने खाना नहीं खाया हो और वह कह दे कि उसकी इच्छा के विरुद्ध उन लोगों ने उसकी पिठचुक की है तो उस दशा में लड़की वाले अपनी लड़की की इज़्ज़त का मुँह माँगा मूल्य माँगते हैं, जिसका निर्णय स्थानीय प्रजा यानी उस क्षेत्र की सामाजिक पंचायत करती है। इज़्ज़त की भरपाई में लड़के वालों को मुँह माँगी रक़म अदा करनी पड़ती है। इस प्रकार लड़के वालों की अच्छी-ख़ासी फ़ज़ीहत और जग-हँसाई भी होती है। इस प्रथा को स्थानीय बोली में 'पिठचुक' कहते हैं।

जैकारू जो कुई लैंघाई

यह भी पांगी घाटी की शादी की एक परंपरा है। लड़के-लड़की का रिश्ता तय हो जाने के बाद कुछ लोग यदि आर्थिक कमज़ोरी के कारण पारंपरिक 'फक्की-छक्की' एवं विवाह करवाने में असमर्थ होते हैं तो उस दशा में दोनों पक्ष कोई दिन निश्चित करते हैं। उस दिन दूल्हा अपने किसी निकट परिजन के साथ अपनी ससुराल जाता है। लड़की के मायके वाले उनका मान-सम्मान करते हैं तथा लड़की को यथासामर्थ्य दहेज देकर उनके साथ विदा कर देते हैं। लड़की को उसकी ससुराल पहुँचाने के लिए गाँव के दो-तीन संबंधी भी साथ जाते हैं। इस प्रकार बिलकुल साधारण ढंग से विवाह संपन्न हो जाता है। इस प्रथा को स्थानीय बोली में 'जैकारु जो कुई लैंघाई' या 'पेटुउ जो कुई लैंघाई' कहते हैं। कुछ ऐसी ही परंपरा, परंतु थोड़ी भिन्नता के साथ 'सिर गुड़ाई' ब्याह में भी प्रचलित है, जिसका वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है।

टोपी लाणी

गद्दी समुदाय की 'झंझराड़ा' शादी परंपरा में जैसा उल्लेख किया गया है, वैसा ही पांगी घाटी में भी एक बहुत ही अच्छा रिवाज है, जिसके अंतर्गत विधवाओं को पुनर्विवाह करने का अधिकार है। इस प्रथा के अंतर्गत विधवा अपने जेठ या देवर के साथ पुनः वैवाहिक संबंध स्थापित कर सकती है। ऐसे में एक छोटा सा आयोजन किया जाता है, जिसमें नज़दीकी संबंधियों के अतिरिक्त गाँव वालों को आमंत्रित किया जाता है। नव पति इस आयोजन में अपनी विधवा भाभी को सामाजिक तौर पर कोई गहना पहनाता है और इस प्रकार सामाजिक तौर पर वे पति-पत्नी बन जाते हैं। उसके उपरांत सामान्य धाम होती है और जश्न मनाया जाता है। इस प्रकार की वैवाहिक प्रथा को स्थानीय बोली में 'टोपी लाणी' कहते हैं।

सामना

इस प्रथा का प्रचलन चंबा ज़िले के कुछ ही क्षेत्रों में है, विशेषकर भटियात में। इस परंपरा के अंतर्गत विवाह संपन्न हो जाने के उपरांत कोई दिन निश्चित किया जाता है, जिसमें वर पक्ष के घर दोनों पक्ष की माताओं का प्रथम मिलन आयोजित किया जाता है। कुछ क्षेत्रों में यह मिलन विवाह के दूसरे दिन भी होता है। इस प्रथा में लड़की की माता अपनी देवरानियों,

जेठानियों तथा अन्य सगे-संबंधियों के साथ पहली बार अपनी बेटी की ससुराल जाती है। उसके साथ जाने वाली महिलाओं को स्थानीय बोली में 'पियालणी-धियालणियाँ' कहते हैं। इस मिलन समारोह में पुरुष भी जाते हैं। लड़की की माँ जब बेटी की ससुराल पहुँचती है तो दरवाज़े के बाहर एक चारपाई रखी होती है। लड़के की माँ दरवाज़े के भीतर खड़ी होती है। दरवाज़े के पास एक टोकरी रखी होती है, जिसे स्थानीय बोली में 'चंगेर' कहते हैं। उस चंगेर में गुड़, तिल और चावल रखे हुए होते हैं तथा दोनों समधिनों के दुपट्टों में भी गुड़, तिल और चावल बँधे होते हैं, जिसे 'बुक्कल' कहते हैं।

सबसे पहले दोनों समधिनें दरवाज़े पर परस्पर गले मिलती हैं और एक-दूसरे को कपड़े इत्यादि भेंट करती हैं। उसके बाद वे अपनी-अपनी 'बुक्कल' से गुड़, तिल, चावल निकाल कर एक-दूसरे को खिलाती हैं, फिर दोनों इकट्ठी एक ही शीशे में मुँह देखती हैं। इस प्रकार वे तीन बार गले मिलती हैं और तीनों बार उस दर्पण में मुँह देखती हैं और एक-दूसरे को उपहार भेंट करती हैं। उसके उपरांत वे एक-दूसरे पर ख़ुशबूदार पाउडर और रंग फेंकती हैं। इसके साथ वधू पक्ष और वर पक्ष की अन्य महिलाएँ भी एक-दूसरे पर पाउडर और रंग फेंकती हैं। वर पक्ष ने इस उपलक्ष्य में धाम का आयोजन किया होता है। इस प्रथा को 'सामना' कहते हैं।

निकाह

हिमाचल प्रदेश में चंबा ज़िला में मुसलमानों की सबसे अधिक संख्या है। इस ज़िला की चुराह घाटी, भरमौर तथा चंबा तहसील की ऊँची धारों में गुज्जर लोग रहते हैं। चंबा के गुज्जर इसलाम धर्म को मानते हैं। कुछेक संस्कारों को छोड़कर यहाँ हिंदू-मुसलमानों की संस्कृति, खान-पान व अन्य रहन-सहन एक जैसा ही है। यही कारण है कि इस ज़िले में दोनों समुदाय के लोगों के आपसी संबंधों में घनिष्ठता है। इनके लोकाचार प्रायः एक जैसे ही हैं, जिसमें विवाह के लिए रिवारा, मंगनी, मँगवाली, छोई और छक इत्यादि में कहीं कोई भिन्नता नहीं है। हाँ, कुछ भिन्नताएँ अवश्य हैं। गुज्जरों की निकाह, मुकलावा, तलाक़ आदि कुछ ऐसी परंपराएँ हैं, जिनका उल्लेख यहाँ करना समीचीन इसलिए नहीं समझा जा रहा, ताकि पुनरावृत्ति न हो, क्योंकि इनका वर्णन इसी लेखक द्वारा लिखित एवं सोमसी पत्रिका के पिछले अंक में प्रकाशित लेख 'गुज्जर जनजीवन' के अंतर्गत किया गया है।

ख्वास

राज घरानों में विशेषकर कुछ ऐयाश राजाओं ने रखैलें रखी होती थीं, जिन्हें 'ख्वासें' कहते थे। इन 'ख्वासों' को राजा लोग अलग से जागीरें, मकान और कई तरह की सुख-सुविधाएँ उपलब्ध करवा देते थे। 'ख्वास' से पैदा हुई संतान को 'सुरतोड़ा' कहते थे। उनका वंश और गोत्र तो पैतृक माना जाता था, परंतु उनका राज-संपत्ति में कोई हिस्सा या हक़ नहीं होता था। उन्हें विरासत में वही मिलता था, जो राजा ने उनकी माँ को दिया होता था। परंतु आज़ादी के उपरांत रजवाड़ा शाही समाप्त हो गई और यह प्रथा भी अब ख़त्म हो चुकी है।

पति-पत्नी संबंध विच्छेद

छड़ा-छड़ाण : एक परंपरा यह भी रही है कि यदि पति-पत्नी में किन्हीं कारणों से अनबन

हो जाए अथवा नौबत 'संबंध विच्छेद' तक पहुँच जाए तो यह 'संबंध विच्छेद' तीन प्रकार से किया जाता है। पहला, सामाजिक पंचायत द्वारा, दूसरा ग्राम पंचायत द्वारा और तीसरा न्यायालय द्वारा। पति, पत्नी के विरुद्ध अथवा पत्नी पति के विरुद्ध प्रायः सामाजिक पंचायत में मामला उठाती है। मोहतबर पंच लोग दोनों पक्षों की सुनवाई करते हैं तथा यथा परिस्थिति दोनों का संबंध-विच्छेद करवा देते हैं। पत्नी का दहेज इत्यादि का सारा सामान वापस दिलवाया जाता है। यदि बच्चे हों तो उनके बारे में भी परिस्थिति के अनुसार यथा उचित निर्णय लिया जाता है। कई बार लिखितनामा भी तैयार किया जाता है, परंतु यदि बच्चे न हों तो बहुधा मौखिक निर्णय ही कर दिया जाता है, जो समाज को मान्य होता है। इस प्रथा को स्थानीय बोली में 'छडण-छडाण' कहते हैं। दूसरा तरीक़ा ग्राम पंचायत में केस दायर करने का होता है। यदि कोई पक्ष पंचायत के निर्णय से भी संतुष्ट न हो तो न्यायालय में मामला दायर किया जाता है।

फारखती : गद्दी समुदाय में पति-पत्नी संबंध विच्छेद को 'फारखती' कहते हैं। यदि पति-पत्नी किन्हीं कारणों से संबंध विच्छेद करना चाहें तो उसके लिए पीड़ित पक्ष गाँव के लंबरदार के पास जाता है और अपना मंतव्य बताता है। लंबरदार दोनों पक्षों की सुनवाई करता है तथा उनकी सुलह-सफ़ाई करवाने का प्रयास करता है। यदि परिस्थितियों के अनुसार यह संभव नहीं हो पाया तो वह दोषी पक्ष से पीड़ित पक्ष को जुर्माने की उचित रक़म भी अदा करवाता है, जिसका बाक़ायदा एक 'लिखितनामा' तैयार किया जाता है। जुर्माना अदा होने पर पति-पत्नी संबंध विच्छेद सामाजिक रूप से मान्य हो जाता है। इस प्रथा को स्थानीय बोली में 'फारखती' कहते हैं।

छुटैवा : पांगी घाटी में पति-पत्नी संबंध विच्छेद को छुटैवा कहते हैं। इसमें पति अथवा पत्नी सामाजिक पंचायत, जिसे स्थानीय बोली में 'प्रजा' कहते हैं, में वैवाहिक संबंध-विच्छेद का मामला उठाते हैं। सुलह-सफ़ाई न होने की स्थिति में प्रायः पति को छह रुपये पत्नी को इज़्ज़त का दंड अदा करना पड़ता है, जिसे स्थानीय बोली में 'मान' या 'इज्जितयाना' कहते हैं। उसके उपरांत पति एक सूखी लकड़ी पत्नी के सिर के ऊपर तोड़ता है और उसके साथ ही दोनों का सामाजिक रूप से वैवाहिक संबंध समाप्त माना जाता है। दूसरा तरीक़ा यह है कि 'प्रजा' दोनों पक्षों की सुनवाई करके दोषी पक्ष पर यथोचित जुर्माना लगाकर वैवाहिक संबंध विच्छेद करवा देती है। इन दोनों परंपराओं को स्थानीय बोली में 'छुटैवा' कहते हैं।

देवल साहित्य शोध केंद्र,
गाँव डौरी, डाकघर भंजराड़ू-तीसा,
ज़िला चंबा, हिमाचल प्रदेश-176316

मंडी क्षेत्र की विवाह परंपरा

● केशव चंद्र

वर्तमान में जो क्षेत्र प्रशासनिक और भौगोलिक तौर पर मंडी कहलाता है, इतिहास क्रम में पूर्व सामंती रियासतों सुकेत और मंडी के भारत संघ गणतंत्र में 1947 ई. में विलय के बाद हिमाचल प्रदेश राज्य का गठन किए जाने पर इसका एक ज़िला बना। प्रारंभ में रियासतों के विलय से हिमाचल प्रदेश के चार ज़िले चंबा, मंडी, महासू और सिरमौर बनाए गए थे।

मंडी क्षेत्र समेत हिमाचल प्रदेश को यदि रीति-रिवाजों और परंपराओं का अजायबघर कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। प्राचीन और मध्यकालीन मानव जातीय समूहों के अब तक अस्तित्वमान रहने का परिणाम है कि यहाँ का सांस्कृतिक स्वरूप अब तक भी विविधता लिए है।

विवाह संबंधी रस्मो-रिवाजों की बात की जाए तो उन्हीं में विविधता देखने को मिलती है। किसी समय से मंडी क्षेत्र के निम्नवर्ती क्षेत्रों की जो जनसंख्या है, उसका जातियों के आधार पर विभाजन रहा है, जो अब भी विद्यमान है। जनसंख्या का अधिकांश भाग पुरोहिताई की यजमान परंपरा के अंतर्गत है। इस जनसमूह के हर परिवार का पुरोहित रहा है। पुरोहित के व्यवसाय से जुड़ा व्यक्ति पीढ़ी दर पीढ़ी यजमान के यहाँ जन्म से लेकर मरण तक के कार्य के लिए आता रहता है। हाँ, पुरोहितों के एकाधिक प्रकार भी रहे हैं।

ज़िले के आंतरिक पर्वतीय क्षेत्रों में यजमानी आधारित परंपरा नहीं थी। कनैत, खस, कोली आदि प्राचीन जातीय समुदायों की परंपराएँ बहुत ही कम परिवर्तनों के साथ समय के इस छोर तक भी प्रचलित हैं। जन्म से लेकर मरण तक के संस्कारों को उन क्षेत्रों के लोग अपनी युगों से निर्धारित स्थानीय परंपराओं के अनुसार ही करवाते आए हैं।

अतः कहा जा सकता है कि मंडी क्षेत्र में दो तरह की सामाजिक परंपराएँ हैं, परंतु अब अंतर्वर्ती क्षेत्रों में भी पुरोहिताई-यजमानी व्यवस्था पहुँचने लगी है।

पुरोहिताई परंपरा का प्रभाव जन्म-मरण आदि संस्कारों तक ही सीमित नहीं रहा है। ज्योतिष को लेकर इसने लगभग सर्वव्यापी स्थिति बना ली है, बना रखी है।

नाताचारी को आरंभिक बिंदु मान लिया जाए तो लड़के के परिवार वाले उसके लिए उपयुक्त लड़की की तलाश के लिए कई दशक पहले तक नाई और पुरोहित को अपनी जानकारी के क्षेत्र में, जहाँ पहले से ही रिश्ते-नाते के परिवार होते, भेजते। [illegible] उन परिवारों की लड़कियों

को लेकर रहतीं, जो माँ के या पिता के पक्ष के होते। ऐसे परिवारों की भी लड़कियाँ देखी जा सकती थीं, जहाँ मातृपक्ष की लड़की चौथी पीढ़ी की हो और पितृपक्ष के परिवारों की लड़की पाँचवीं पीढ़ी के बाद की हो। ऐसे में नाई-पुरोहित जहाँ नाताचारी (रिश्ता) करवाना ठीक समझते, बात करते। हाँ हो जाती तो फिर जन्म कुंडलियाँ या टीपें मिलाने की बात होती। टीपें मिल जाएँ तो कन्या पक्ष वाले लड़के को टीका लगाने आते। कुछ कपड़ा-गहना दिया जाता। विवाह तय हुआ समझा जाता। फिर लड़के को साथ ले जाकर वर पक्ष वाले कन्या को अँगूठी, बालियाँ या चाँदी की चूड़ियाँ पहनाते, जिसे 'रूपना चढ़ाना' कहते। 'टीके' वाले और 'रूपना' वाले दिन भोजन की व्यवस्था भी रहती है। विवाह की तिथि निश्चित होने पर पुरोहित 'लग्नोतरी' बना देता है। उसके बाद ही दोनों पक्ष में बताए गए लग्न-मुहूर्त के अनुसार लकड़ियाँ फड़वाने से लेकर बाज़ार से कपड़ा-लत्ता, चावल-दालें, घी-तेल तथा अपेक्षित शृंगार सामग्री आदि की ख़रीद की जाती है। परिजनों और मित्रों तथा आस-पड़ोस को विवाह के लिए आमंत्रित किया जाता है। पुराने समय में आजकल की तरह के निमंत्रण पत्र नहीं होते थे। तब नाई, पुरोहित अथवा परिवार द्वारा निश्चित व्यक्ति कुमकुम लेकर जाता था और हर परिवार के घर के द्वार के ऊपर खड़ा टीक लगाता तथा मौखिक तौर पर भी बताता कि अमुक से अमुक दिन तक विवाह और धामें हैं।

लग्नोतरी लिखे जाने के बाद संभावित वर और कन्या को नदी-नालों के पास सुनसान-विरान जगहों पर पशुओं आदि के साथ और कुछ भी काम करते समय चौकस रहने को कहा जाता, क्योंकि कुछ भी अनहोनी होने का भय रहने की बात बताई जाती। इस संभावित अनहोनी को 'सतागला' कहा जाता।

विवाह की तैयारी के क्रम में परिजनों और पड़ोसियों को दूध, दही और छाछ लाने के लिए कहा जाता, जिनका उपायोग चाय, मधरे और खट्टे में होता। मामों से संपर्क साधा जाता और उनसे वर पक्ष वालों द्वारा तोरण समय पर पहुँचाने का निवेदन किया जाता और सेहरा, पगड़ी, कपड़ों आदि की भी बात की जाती। इसी प्रकार कन्या पक्ष वाले तोरण के साथ 'बेद' (वेदी) और 'खाण' (भात) लगाने के बारे में पूछ लेते। कपड़ों व अन्य दहेज के बारे में भी।

दोनों ही पक्ष धाम आदि के लिए बटलूहियों (बटलोइयों), कड़ाहियों, परातों, डबरूओं (पीतल का छोटा पात्र, जो विवाह आदि उत्सवों पर दाल-सब्ज़ी बाँटने के लिए प्रयुक्त होता है), कलछियों-कलछों, त्रेकचों, पतीलों की गाँव और नगर के विशेष परिवारों, जिनके पास ये बर्तन होते, से बात कर लेते और विवाह से एक दिन पहले इन्हें इकट्ठे करवा देते।

रसोई तैयार करने के लिए घर के साथ अथवा पास ही के खेत में ढाई-तीन फ़ुट चौड़ी, दो-ढाई फ़ुट गहरी और बारह-चौदह फ़ुट लंबी 'ताओण' खुदवा देते। उसमें मोटी-मोटी और लंबी लकड़ियाँ जलाकर उसमें आहुतियाँ देकर पूजा कर लेते। लकड़ियाँ जल उठने पर 'ताओण' पर बटलूहियाँ, चरोटियाँ और कड़ाहियाँ आदि पानी डालकर रख दी जातीं। फिर उनमें चावल, दालें आदि पकाए जाते। भात में ढेले न बने, इसलिए उसमें त्रेकचा घुमाते रहते हैं। इससे 'पिछ' (माँड़) निकाल कर भात को घर में विद्यमान अथवा कहीं से माँग कर लाए 'डाले', 'भतहड़े'

(बड़ी टोकरी) में डाल दिया जाता। वह गर्म रहे, इसलिए साफ़ धोतियों से ढक दिया जाता। सब्ज़ियाँ चरोटियों और कड़ाहियों आदि में 'ताओण' पर ही रखी रहने दी जातीं। भात बाँटने के लिए 'छड़ोल्हु' (बाँस की छोटी टोकरी) जुटाए गए होते। सब्ज़ियाँ, दालें आदि 'डबरू' में डालकर कलछियों से बाँटी जातीं।

चार-पाँच दशक पहले तक गाँव में विवाह के लिए आमंत्रित परिवार भी चावल, दालें, कद्दू, पेठा, आटा और घी आदि निश्चित मात्रा में देते थे। उनका हिसाब रखा (लिखा) जाता था, ताकि उस परिवार को ऐसे ही अवसरों पर ये चीज़ें लौटाई जा सकें। यहाँ तक कि बकरे और भेडू भी लिए-दिए जाते थे। गाँवों में पूँजीवादी संबंधों के विकास के साथ सामुदायिक लेन-देन का सहयोग ख़त्म होता जा रहा है।

दशकों पहले वर और वधू का क्रमशः पालकी और डोले में सवार होकर आना-जाना विशेषाधिकार था। उनके लिए डोला और पालकी माँग कर लाए जाते। इन्हें उठाने के लिए आठ-आठ कहार होते थे, जिन्हें मुँह माँगा 'लाग' दिया जाता था। विवाह यात्रा आरंभ होने पर वर और वधू के भाई-बंधु सम्मान के लिए कुछ दूर तक पालकी और डोला उठाकर ले जाते थे, जिससे आगे उन्हें कहार ही उठाते थे।

कुछ सामंती परिवार बेटी के लिए अवश्य डोला बनवाते थे, जो बेटी को ही दे दिया जाता था। यह हैरानी वाली परंपरा रही है कि कुछ मियें डोले के साथ कफ़न भी दे देते थे और लड़की को आजीवन मायके नहीं बुलाते थे।

विवाह का आयोजन वर और वधू दोनों पक्षों में एक साथ होता। पहले दिन आमंत्रित परिजन और अतिथि आते। मामों और मामियों के आने पर स्वागत गीत गाये जाते। उन्हें संभालते और यथा व्यवस्था बिठाते।

कार्यक्रम 'सांद' (तेल शांति) के साथ आरंभ होता। दोनों पक्षों में सगे-संबंधी बारी-बारी दूर्वा के साथ दोने से तेल डालते और 'वारंडा' (सिर के ऊपर से पैसा घुमाकर दान करने की प्रक्रिया) करके नाई को पैसे देते। पुरोहित मंत्रों के साथ तेल शांति का काम आरंभ करवाता। इसके बाद बुटणा (उबटन) लगाया जाता। फिर 'पाजे' (पद्माख : पीपल की तरह शुभ माना जाने वाला छोटे आकार का एक वृक्ष) की पत्तों समेत टहनियों को सिरे पर लाल डोरियों से बाँध कर नहाने के लिए 'न्हांडी' बनाई जाती, जहाँ दोनों पक्षों में वर और कन्या को बिठा कर इनकी भाभियाँ, बहनें आदि इन्हें नहलातीं। नहला कर इन्हें नये कपड़े पहनाए जाते। क्वार कपड़े (पहने हुए पुराने कपड़े) नाई-नाइन को दे दिए जाते।

वर और वधू को मामा द्वारा लाए गए पानी से नहलाया जाता। पानी बावड़ी या खूह अथवा डीभ (तालाब) आदि से भरा जाता। पानी लाने के समय गीत गाए जाते और वर-कन्या को नहलाते समय भी। 'सांद' और 'नहलाई' के बाद सत्यनारायण की कथा आरंभ कर दी जाती। वर और कन्या के माता-पिता, जिन्होंने व्रत रखा होता है, कथा के दो बोल तो 'बाँचते' (पढ़ते) ही। कथा के समापन पर परिवार के [illegible] आदि पुरोहित के पैर 'छाँदते' (छूते), दक्षिणा देते और [illegible] (मूली),

चावल, पत्तों के टुकड़े कुमकुम आदि रहते। उसके बाद अतिथियों और परिवार वालों को भोजन कराया जाता।

एक कमरे की दीवार पर महिलाओं द्वारा लाल, पीले, हरे नीले रंगों से विवाह के मंडप का चित्र बनाया जाता, जिसे 'कौहरा' कहा जाता। उसी कमरे में सांद, सत्यनारायण व्रत कथा और विवाह से संबंधित सभी कार्य करवाए जाते।

कुछ दशक पहले विवाहोत्सव पाँच दिन रहता था। पहले दिन कथा और 'निउंदरू', दूसरे दिन 'क्वार्त' या 'बज्यात्रा' (वर यात्रा), तीसरे दिन 'घींघा' (भोजन), चौथे दिन धाम और पाँचवें दिन 'छड़याह' (प्रीति भोज)। 'निउंदरुओं' का भात शाम को होता। उसमें भात, मीठा, खट्टा और दाल रहते। 'बज्यात्रा' (वर यात्रा) के दिन के भात को 'क्वार्त' का भात कहते। उस दिन भात, मीठा, मधरा या सालंगी दाल, खट्टा, दाल माह (उड़द) और 'झोल़' (लस्सी से बना विशेष खाद्य) बनता है। चार-पाँच दशक पहले कद्दू, पेठु (पेठा) के अतिरिक्त नाशपाती, घीये, आलू आदि का भी मीठा बनाया जाता था। इनमें से कद्दू और पेठु का मीठा तो अब भी बनता है, परंतु धीरे-धीरे ग्रामीण क्षेत्रों में भी निम्न मध्य वर्ग के उदय के साथ अब नगरों की तरह 'बदाणा' और गुलाब जामुन का मीठा बनाया जाता है। खट्टा प्रमुखतया कद्दू का ही चला आ रहा है। परिवर्तन यह है कि अब इसमें छुहारे भी डाले जाते हैं। काले चने का खट्टा भी बनाया जाता है। इसे 'छोलिया' कहते हैं। आजकल 'कोहल' (रौंगी) का खट्टा भी बनाया जाता है।

'घींघा' के दिन विशेष रूप से भात नहीं बनता। इस दिन वर पक्ष के घर की महिलाएँ और धाम का भात बनाने की तैयारी करने वाले कामी या कोई और पुरुष जो 'जनीत्तरी' (बारात में) नहीं गये होते, वे 'बज्यात्रा' का भात और दाल सब्ज़ियाँ अगर कुछ बची हों तो उसे तुड़क कर खाते अथवा फुलके या बटुहरू बनाकर किसी भी सब्ज़ी के साथ खा लेते।

'जनीत्तर' (बारात) 'घींघे' वाले दिन शाम तक लौट आती और 'जनीतरू' (बाराती) क्योंकि कन्या पक्ष वालों के यहाँ धाम खाकर आए होते, अतः अपने घरों को लौट जाते व अगले दिन धाम खाने के लिए ही आते। जो काम-काज में सहायता के लिए बुलाए होते, वे जल्दी आ जाते। 'नुहारी धाम' अर्थात् वर यात्रा के दिन के भात और अंत में धाम के भात के लिए सामान लेने-देने के लिए गाँव का जो मान्य व्यक्ति भंडारी बनाया हुआ होता, वह सभी तरह की व्यवस्थाओं का जानकार होता।

पुराने समय में हुक्के-तंबाकू के व्यसनी लोगों के लिए इसकी ख़ास व्यवस्था होती थी। तंबाकू भी भंडारी को ही देना होता। धाम के दिन सुबह लगभग आठ से ग्यारह बजे तक नुहारी (नाश्ता) खिलाई जाती। इसमें पहले भटूरे और चपातियाँ दोनों चलती थीं। फिर तले भटूरे आ गए व सूखे भी। इनके साथ ही या इनके बाद पेड़ियाँ (पूरियाँ) और कुलचे प्रचलित हो गए। भटूरों और फुलकों के साथ चूड़ का साग, कद्दू का खट्टा और दही अथवा आलू की सब्ज़ी, आलू-चने, आलू-काबुली चने और रायता आदि दिए जाने लगे। पूरियों के साथ तरीदार आलू भी बनाए जाते।

धाम के भात में मीठा, सेपु बड़ी या धुले माह या घंडयाली का मधरा या आलू का

दम अथवा राजमाह का मधरा, कद्दू का सादा या छुहारे वाला खट्टा या चने का छोलिया, मटर-पनीर, चने का खट्टा न होने पर कोहल का खट्टा, माह की दाल और अंत में छाछ या दही अथवा दोनों से बना झोल शामिल होते।

निरामिष धाम को मीठी धाम कह दिया जाता है। पाँच-छः दशक पहले तक तो मांस वाली धाम भी होती थी। कई ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े बेटे के विवाह की धाम को बकरे या भेडू काटे जाते थे। परंपरा से कुलज/कुलजा को बकरा आदि चढ़ाया जाता था।

'कीर' और 'लबाणा' (खच्चर का स्वामी, पशुओं या नमक का व्यापारी) जनसमुदाय विवाह की धाम में मांस अवश्य बनाते हैं। दलित समुदायों में भी अब यह परंपरा चल पड़ी है। 'बज्यात्रा' आरंभ करने से पहले वर को सायत (मुहूर्त) के अनुसार नहलाया जाता और नये वस्त्र और साफ़ा आदि पहनाकर तैयार किया जाता तथा उसे दुशाला या लाल पट्टू ओढ़ाया जाता। फिर पुरोहित कन्या के लिए बुटणा, मेहंदी, तेल आदि इकट्ठा करवाता। उसे 'तेल-द्रुभ' के नाम से कन्या के घर ले जाया जाता। 'बरी' का ट्रंक तैयार किया जाता, जिसमें वधू के लिए कपड़े, श्रृंगार की सामग्री, गहने आदि रखे जाते। बारात में जाने वाले परिवार के सदस्य तथा अन्य लोग भात खाकर तैयार हो जाते। महिलाएँ घोड़ी/सेहरे आदि के गीत गाती रहतीं।

गाजे-बाजे वाले पहुँच चुके होते तो शहनाई, ढोल-नगारों आदि के स्वर भी गूँजने लगते। ऐसे ही क्षणों में बारात कन्या पक्ष के घर की ओर प्रस्थान करती। प्रस्थान के साथ ही हवा में बंदूक़ का फ़ायर किया जाता, ताकि भूत-प्रेत भाग जाएँ। एक आदमी पानी का 'ग्रहड़ा' (लोटा) लिए खड़ा रहता। पहले रणसिंगा भी बजाया जाता था। पालकी लेकर कहार चलते थे। बाराती अग़ल-बग़ल में एक-दूसरे को धकियाते चलते थे। लेकिन अब वर कार में भाई और मित्रों के साथ चलता है। पिता, मामा तथा चाचा आदि भी कारों में होते। बाराती बस में, कारों में भी।

पहले कन्या पक्ष के युवक गाँव के प्रवेश स्थल पर आग जला कर बारात को रोकने का प्रयत्न करते थे। वर पक्ष के युवक पेड़ों की टहनियों से आग बुझाने आगे बढ़ते। कन्या पक्ष वाले उन्हें रोकते। थोड़ा सा उलझकर वे आग बुझा देते। कन्या के घर के ऊपर से बारात नहीं जा सकती थी। उसे कन्या पक्ष वाले 'सिर गाहीं' (सिर पर चढ़ना) मानते। अतः बारात को डेरा घर के नीचे के खलिहान में दिया जाता अथवा किसी बड़े से खाली खेत में।

नाई और पुरोहित पहले 'तेल-द्रुभ' कन्या पक्ष वालों के पास पहुँचाते। तब वहाँ के लग्न के लिए 'लगचार' (विवाह की विधियाँ) शुरू होते। कन्या के दादा, पिता, ताया, मामा आदि वर पक्ष से आए समान रिश्ते के व्यक्ति से मिलनी करते। मिलनी में कन्या पक्ष वाले इन्हें कोई न कोई उपहार देते। फिर बारातियों को चाय आदि पिलाई जाती। आजकल तो चाय के साथ मिठाई और नमकीन भी दी जाती है।

कन्या पक्ष के यहाँ तोरण और वेद (वेदी) आदि लगवाए या गड़वाए जा चुके होते हैं। देव पूजन की चौकी पुरोहित द्वारा उनके प्रतिनिधि [illegible] को [illegible] तैयार की जाती है। उस पर लिपाई और समतल की गई रेत पर चौकोर [illegible] अष्टाकार और वृत्ताकार

आकृतियाँ चावल के आटे से बनाई जाती हैं। वेदी के चार स्तंभों के साथ केले के पत्ते रखे होते हैं। पूर्व दिशा के खंभे के साथ 'संसरपाली' (सतावर) का जड़ों समेत उखाड़ा पौधा रखा होता है। बेद और तोरणों पर आम के पत्तों की मालाएँ लाल धागों के साथ बाँध कर टँगी रहती हैं। बेद के बीच में चौकोर कपड़े का चंदरुआँ (चंदोवा) बनाया होता है। उसके ठीक नीचे धरती पर चौकोर आकार में हवन के लिए स्थान बनाया होता है। कन्या पक्ष के पुरोहित के पास देव-पूजन की चौकी होती है। उसके बैठने के लिए आसन होता है। वर पक्ष के पुरोहित के लिए उसकी विपरीत दिशा में आसन रहता है। उसके पास वर का आसन और कन्या पक्ष के पुरोहित के पास कन्या का आसन होता है। उसकी बग़ल में कन्या के माता-पिता बैठते हैं। वर के साथ उसका पिता बैठता है। दोनों पक्षों के पुरोहित दोनों परिवारों के गोत्रों आदि का परिचय देते हैं। उनके कल्याण और मंगल के लिए मंत्र पढ़ते हैं।

कन्या पक्ष का पुरोहित तोरण, बेद, चौकी, हवन स्थल, कुलज/कुलजा आदि की वंदना करता है। वर और कन्या के परिवारों को आशीर्वाद देता है। तब वह वेदी मंडप पर स्थापित देवों का पूजन करता व करवाता है। उसके बाद वर व कन्या के पिताओं द्वारा हवन आरंभ किया जाता। कन्या की माँ भी हवन में साथ बैठती है। फिर वर और कन्या से हवन करवाया जाता। उसके बाद लाजा होम (चार लावाँ) और सप्तपदी की प्रक्रिया आरंभ होती। 'लावें' (अग्नि परिक्रमा) फिरते समय कन्या को वर के वाम पार्श्व में जाने के संबंध में पूछा जाता। यह बताया जाता कि जब तक वह दक्षिण पार्श्व में है, वह वर की बहिन के समान है। तब वह वर के वाम पार्श्व में बैठती है, तब सप्तपदी पढ़ी जाती है।

सप्तपदी के बाद कन्या के माँ-बाप से लेकर अंतिम संबंधी तक कन्या को कुछ न कुछ शगुन देता है। अंततः वर वधू की माँग भरता है, जिसे 'स्यांदी पूरना' कहते हैं। वेदी-लग्न का कार्य समाप्त होने पर वर के परिवार के लोगों को वेदी में ही भात खिलाया जाता है। वर व वधू को भी साथ बिठाया जाता है। बोटी मुख्य लोगों को मीठे का 'डबरू' व दोने देते हैं और उनसे 'लाग' लेते हैं। कन्या पक्ष की महिलाएँ इस समय विशेष रूप से गाली गीत गाती हैं, जिन्हें 'लाहणियाँ' कहते हैं। अब ऐसे गीत कम ही गाए जाते हैं। पहले 'भात बाँधने' और 'भात खोलने' का भी मनोरंजक रिवाज था। अब इन बातों को भुला दिया गया लगता है। फिर वह पीढ़ी ही संभवतः नहीं रही, जो यह फ़न जानती थी।

भात खा चुकने के बाद विदाई का समय आ जाता है। वर और वधू परिजनों के पाँव छूकर आशीर्वाद लेते हैं। तब कन्या वर को सौंपी जाती है, जिसे 'सौंपणी' कहते हैं। उसके बाद विदाई होती है। इस समय विदाई गीत गाए जाते हैं। शहनाई, बीन या बाजे वाले विदाई गीत की धुन बजाते हैं। अंततः कन्या का मामा उसे गोद में उठाकर डोले में बिठाता है। वर नरेल (नारियल) और कटार के साथ पालकी में बैठता है। वधू को छोड़ने उसके छोटे भाई और परिवार व पड़ोस के चार-पाँच लोग 'लाधड़' (दूल्हे के घर जाने वाले) आते हैं। इधर विदाई गीत थम जाते हैं। लड़की को ब्याह कर बारात लौटती है। घर पहुँच कर तोरण के पास वर-वधू को 'प्होया' (आरती उतारना) जाता है। उसके बाद वधू का 'अंदरेला' (गृह प्रवेश) करवाया जाता है। उस

समय गीत गाए जाते हैं। फिर वर-वधू को कमरे में 'कौहरे' के पास ले जाया जाता है, जहाँ कुल देवता, गृह देवता आदि का पूजन करवाया जाता है। कुलज पूजा के लिए कई क्षेत्रों में बकरा काटा जाता है। यदि पास ही कोई मंदिर और तीर्थ हो तो उसकी परिक्रमा भी की जाती है।

वर का सेहरा खोल दिया जाता है, जिसे संभाल कर रख लिया जाता है। दूसरे दिन 'पीपल फेरी', हवन आदि किया जाता है। वर और वधू घर में सभी बड़े-बुज़ुर्गों और सगे-संबंधियों के पाँव छूकर आशीर्वाद लेते हैं। वर को या दोनों को 'टीका' की रस्म के लिए बिठाया जाता है। फिर नई बहू से 'पैर बंदाई' करवाई जाती है, जिसके लिए उसे पैसे मिलते हैं। धाम का भात खा लेने के बाद वर और वधू 'लाधड़ों' के साथ वधू के मायके लौट जाते हैं। वे सायत (मुहूर्त) के हिसाब से 'सत्रवात/सुतरात' (सुहागरात) के लिए वापस लौट आते हैं। 'सुतरात' भी समारोह पूर्वक मनाई जाती है, इस अपेक्षा के साथ कि संतानोत्पत्ति होगी।

कुछ अन्य बातें

वर की पालकी में नरेल (नारियल), कटार, कार के ज़माने में भी, साथ ले जाए जाते हैं। लाड़े को दुशाला या लाल पट्टू ओढ़ाया जाता है।

जैसा कि माना जाता है कि ग्रहों की स्थिति का प्रभाव वर व वधू के स्वभाव पर होता है, इसकी जाँच के लिए विवाह के बीच भी व्यवस्था होती है। कन्या पक्ष के घर में पहले तो सालियाँ हँसी-मज़ाक के बीच वर के जूते छुपाकर और गाली-गीत गाकर उसको छकाने और उसको उपहास करने का उपक्रम करतीं। अटपटे सवाल पूछतीं। यदि वह बेझिझक उनके सवालों का उत्तर वैसे ही अटपटे अंदाज़ में दे देता, मज़ाक करता और द्वार रोकने पर उनको बलपूर्वक हटा लेता तो माना जाता कि वह दमदार है। यह परंपरा मृतप्रायः तो नहीं है, लेकिन इतनी ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं होती।

फिर दूध मुदड़ी का खेल खेलाया जाता। थाली में दूध भरकर उसमें सोने या चाँदी की अँगूठी डाल दी जाती। वर-वधू दोनों को वह ढूँढकर निकालनी होती। वर निकाल लेता तो जीवन में वह वधू पर हावी होने वाला माना जाता। वधू अँगूठी निकाल लेती तो वह वर पर भारी पड़ने वाली मानी जाती। वधू के ससुराल में छटियों (छड़ियों) से एक-दूसरे को मारने के खेल का आयोजन होता। हथेलियों पर ज़ोर से छड़ियाँ मारी जातीं। मारने में कौन निर्मम है, बेलिहाज़ है, उसको हावी होने वाला माना जाता।

जैसा कि आरंभ में भिन्न प्रकार के रस्मो-रिवाज और परंपराओं की बात कही गई है, उसके अनुसार मंडी क्षेत्र के अंतर्वर्ती पर्वतीय क्षेत्र में अधिकांशतः मुक्त विवाह पद्धति प्रचलित रही है। मेलों में अथवा घरेलू उत्सवों के समय लड़का-लड़की मिलते और भागकर किसी मित्र या संबंधी परिवार के यहाँ छुप जाते। लड़की के परिवार वाले उसे ढूँढते। मिलने पर पूछते कि क्या वह उसी लड़के के साथ रहना चाहती है? उसके हाँ करने पर उनकी शादी हुई मान ली जाती है। तब लड़के के घर वाले लड़की के घर वालों की खूब सेवा-खातिर करते।

कई बार लड़का-लड़की भाग कर स्थानीय [illegible] के पुजारी के पास जाते हैं।

वह उनकी शादी करवा देता है। तब वे अपने-अपने घर वालों को बता देते हैं कि उन्होंने विवाह कर लिया है। ऐसी स्थिति में लड़के का पिता या परिवार लड़की के पिता और परिवार से सलाह करके आमिष धाम देता है। पुरोहित-ज्योतिषी का कोई काम नहीं होता। लेकिन नीचे के क्षेत्रों से ऊपरी क्षेत्रों में गए लोग लग्न-वेदी वाला ही विवाह करते हैं। वे सब कुछ पुरोहित के निर्देश के अनुसार करते हैं। मीठी धाम व अन्य भात वैसे ही देते हैं। मांस वाली धाम भी देते हैं। स्थानीय परंपरा को ध्यान में रखकर ऐसा किया जाता है।

इन क्षेत्रों में धाम में घर की निकाली हुई और ठेके की देसी और अंग्रेज़ी शराब ख़ूब चलती है। मांस वाली धाम में मधरा, तेलिया (हड्डियों वाला) और पोटी आदि छाछ में बनाया जाता है। इनकी धाम शाम और दूसरे दिन चलती है। मांस न खाने वालों के लिए मीठा, राजमाह का मधरा, आलू का बड़े चनों के साथ दम या मटर-पनीर और दाल तथा कढ़ी बनाई जाती है।

कीरों, लबाणों, कोलियों व अन्य दलित जातियों की धामों में भी मांस वाली धामें बढ़ रही हैं। कुछ राधास्वामी निरंकारियों के प्रभाव में मीठी धाम बनाते हैं। गुज्जरों के पुरोहित होते हैं। धाम मीठी होती है। सैनी समुदाय की धामें निरामिष होती हैं। इनके पुरोहित होते हैं व लग्न-मुहूर्त चलता है।

जैसा कि अन्यत्र कहा गया है, मियों के विवाहों में डोले और सुखपाल (पालकी) का रिवाज था। बेटी का डोला वापस नहीं लाया जाता था। विवाह हो जाने पर वह मायके नहीं जा सकती थी। विवाह के समय ही कफ़न भी दे दिया जाता था।

खत्रियों और बोहरे-महाजनों में आमिष और निरामिष दोनों ही धामें चलतीं। दोनों ही पुरोहितों की यजमानी परंपरा में हैं। कुछ विवाह परंपराएँ अलग भी हैं।

सिक्ख मतावलंबी गुरुद्वारे में गुरुग्रंथ साहब के सामने विवाह करते हैं। भोज लंगर ही होता है। अब कुछ घर पर भी करते हैं।

मुसलमान समुदाय विवाह को निकाह कहते हैं। लड़के वाले लड़की वालों के घर आते हैं। दोनों ओर के पुरुष व स्त्रियाँ अलग-अलग बैठ जाते हैं। मौलवी आता है तो निकाह की प्रक्रिया आरंभ की जाती है। लड़की से पूछा जाता— तुम्हें यह दूल्हा क़बूल? वह हाँ कर देती तो तीन बार 'क़बूल-क़बूल' बुलवाया जाता। तब दूल्हे को मेहर की रक़म की घोषणा करनी पड़ती, जो उसे तलाक़ की दशा में दुलहन को देनी पड़ती है। तलाक़ में भी दूल्हा तीन बार 'तलाक़-तलाक़' कहता और तलाक़ हो जाता। भोजन की व्यवस्था इनके यहाँ भी रहती।

विवाह गीत

विवाह में वर पक्ष और कन्या पक्ष में कुछ गीत गाए जाते हैं। वर पक्ष के यहाँ मुख्यतः 'घोड़ी' या 'सेहरा' गीत गाए जाते हैं। शेष मामा द्वारा पानी भरने, लाड़े के नहाने, 'बटणा' लगाने के और 'बधावा' गीत होते हैं। उदाहरणतः कुछ गीत निम्न प्रकार से हैं :—

1 *भल्ले पके, रमाल नाल ढके*
तुसे खाँदे क्यों न वीर जी।
सेहरा तेरा ए दोहरी बिंदी वाला

त्रेहरी बिंदी वाला...
तुसे पहनदे क्यों न वीर जी।

2. *सर पे सेहरा कमाल*
हाथ में रेशम दा रमाल।
बन्ना जी तेरा क्या कहणा
तेरा दादा चलेया बराती।
तेरे दादे ने बाँटे नोट-नोट
तेरी दादी दे उड़ गए होश।
बन्ना जी तेरा क्या कहणा।

3. *सेहरा ल्याई दे जी मामा सेहरा ल्याई दे*
रेशमी रमाल जी मामा जेबा पाई दे
रेशमी रमाल जी मामा कमरा बान्ही दे
सोने रा कटार जी मामा जेबा कस्सी दे
सेहरा ल्याई दे जी मामा सेहरा ल्याई दे।

4. *जाया-जाया मामेयाँ बिंद्रावन में*
जेथी ले ल्याया तोरन म्हावड़ी।
काहे का छहू काहे का बाहेला
लोहे का छहू सोने का न्हयाण।
सोने री चिड़िया लाया मामा तोरना जो
जाया-जाया मामेयाँ बिंद्रावन जो।

5. *सेहरा पहनो मेरे वीर जी, मुकट जड़ुँगी मैं*
आगे चलो मेरे वीर जी, पिच्छे चलुँगी मैं
रस्ते मिले माई बाप की सेवा करूँगी मैं
सेहरा पहनो मेरे वीर जी।

6. *जरा ठुमके चलो जी बधावेया ठुमके चलो जी*
घर माता दे घर पिता दे बधावेया ठुमके चलो जी।
मामा-मामी, ताऊ-तायी, चाचा-चाची
मासड़-मासी दे घर जी बधावेया ठुमके चलो जी।

7. *ए बधावा सदा सुहावा, केढ़ी नगरी ते आया रामा?*
जुध्या लो नगरी ते आया रामा।
कुण माता कुण पिता, केढ़ी नगरी ते आया रामा?
कसल्या माता दसरथ पिता
जुध्या नगरी ते आया रामा।

कन्या पक्ष में वेदी संबंधी, लग्न के समय के गीत, कन्या दान संबंधी गीत, दहेज-दान

संबंधी गीत और अंत में विदाई गीत होते हैं। कन्या पक्ष के गीतों के कुछ बोल प्रस्तुत हैं :–

1. *ल्हुखी जाया बेटिए छपी जाया बेटिए*
साहोरी आए।
किहाँ ल्हुखुं अम्मा गे किहाँ छपुं अम्मा गे
बापु रे सादे आए, दादु, ताऊ, चाचे रे सादे आए।

2. *रोपड़ा गुजरी लाड़ा दहींएँ प्होया*
रोपड़ा गुजरी तेसा ते दहीं मँगाया
रोपड़ा झीरी तेसा ते नीर भराया
रोपड़ा तेलण तेसा ते तेल मँगाया
रोपड़ा गुजरी लाड़ा दहींएँ प्होया।

3. *तोरण गड्डे, मोरण गड्डे, कुणी कारीगीरे बणाए*
सुइने रै बाहेलुए, चाँदी रे न्हयाणे
थावींएँ म्हारे बणाए।
पंडत बैठे सांदड़ी वाले, हवन कराणे लाड़ी आई
हरिए दुभड़िए लाड़ी प्होई, बापुए सँजोया तेल।
तोरण गड्डे, मोरण गड्डे, कुणी कारीगीरे बणाए?
बेदी दे अंदर आओ जी मामा, सतपुरी बेद गडाई

4. *बेटी दा मामा बड़ा धर्मी, धर्म भी कर मामा जी।*
बेटी रा बापु बड़ा धर्मी, जिन्ने भी लगन दुआए।
बेदी भी बैठेया ब्राह्मणा, कन्या दे फेरे दुवाई दे।
जो माँगणा तैं सो माँगी लै, कन्या कुआरिया रा दान।

5. *वर : बाहरा जो आओ मेरी श्याम सुंदरे।*
कन्या : मैं किहाँ आवाँ मेरे जान रसिया।
बापु मैं आपणे ते सरमाँ करदी।
वर : बापु मैं तेरे जो पर्दा प्वावाँ
तू पल भर लगना जो आओ मेरी श्याम सुंदरे।
कन्या : मैं किहाँ आवाँ मेरे जान रसिया
मैं मामे ते बी अपणे सरमाँदी।
वर : मामे जो तेरे मैं पर्दा प्वावाँ
तू पल भर लगना जो आओ मेरी श्याम सुंदरे।

6. *मेरे बापु जी बेदी पर बैठे दो तोते*
तोते पर बोलदे क्यों न?
मेरी दादी जी हुण न बोलणा
पोत्री तेरी दी हुण जोगिया वाली फेरी।

7. गडा दो बेद के खंभे लगा दो बेद के फेरे
   गडा दो बेद के खंभे।
   सौहरा हो दीन का दाता, सासु हो धरम की माता
   पति हो बाल ब्रह्मचारी, रखे जो जान से प्यारी
   गडा दो बेद के खंभे, लगा दो बेद के फेरे।
8. बगेया बगोटुआँ दे दान, किछ मँगणा ता मँगी लै
   थालियाँ ता लोटेयाँ दे दान, होर मँगणा ता मँगी लै
   संदूकाँ ता सेजाँ दे दान, होर मँगणा ता मँगी लै।
9. डोरिए-डोरिए बन्हदेया भाइया
   तू मेरे धरमा रा भाई हा बे।
   बेदी दे अंदर आओ
   तू मेरे धरमा रा भाई हा बे।
10. बेदी बैठेया ज्वाइंयाँ, किछ माँगणा ता माँगी लै
    सौहरा तेरा दानी सास तेरी दानण, किछ माँगणा ता माँगी लै
    साले तेरे दानी, सलीहणा तेरी दानणी
    किछ माँगणा ता माँगी लै।
11. उडा-उडा मेरी कुंजड़ियो, साओण आया मेरिए माए
    तितना जे हाऊँ खाहीं थी मेरेया बापुआ
    तितना भरेया एभे पेड़िया पाईं
    तेथी जे हाऊँ न्हाहीं थी, तेथी सिंजेया
    एभे मरुआ क्यारी।
    तितना जे हाऊँ पैहना ओढाईं थी
    तिते ने भरेया मेरिए मावे तू पटारी।
12. तेरा सुखी रहो परिवार दादी जी मैं परदेसण होई
    दादी भी रोए अम्मा भी रोए, तायी, चाची, भाभी भी रोए
    मैं परदेसण होई।
13. कणक चणेया रे खेत हौली-हौली निसरी गयो
    अम्मा बापू रे देस हौली-हौली बिसरी गयो।

लाहणी (गाली गीत)

1. घोड़ मकोड़ेया ओ तेरी जात बुरी
   लाड़ेरी अम्मा बैठी ओटे
   तू साचेया एत्रा रे पोटे
   घोड़ मकोड़ेया ओ तेरी जात बुरी।
2. [illegible]

भाते खाई ने जायाँ बो कुड़मा, गाहे नीं निंदे नीं।

3. *ले लो सस्ता माल ढाई आने, सस्ती बोली ढाई आने*
लाड़े री दादी ढाई आने, लाड़े री अम्मा ढाई आने
ले लो।

साधारण से लगने वाले विवाह गीतों में भावनाओं की भक्ति तत्त्व, हास्य, व्यंग्य, करुणा, बिछोह की पीड़ा आदि कई रूपों में मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। दशकों अंतराल में, प्रचलित पारंपरिक लोकाचारों सहित विवाह पद्धति में भी बहुत विस्तार और बदलाव हुआ है, यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

गाँव घड़याना, डाकघर सदयाणा,
ज़िला मंडी, हिमाचल प्रदेश-175001

बिलासपुर जनपद में प्रचलित विवाह गीत

● जगदीश चंदेल

किसी भी प्रदेश की अपनी अलग भाषा एवं संस्कृति होती है। हर प्रदेश अपनी संस्कृति एवं सभ्यता को आगे बढ़ाना चाहता है। इस संस्कृति का कुछ न कुछ आशय होता है। हिमाचल प्रदेश की भी अपनी अलग संस्कृति और रीति-रिवाज हैं, जिसमें प्रदेश के ज़िला बिलासपुर के रीति-रिवाज और प्रथाओं का अपना अलग स्थान है। यहाँ लड़कियों की शादी में गाए जाने वाले लोक गीतों का विशेष महत्त्व है, जो शादी से पाँच-सात दिन पहले ही गाए जाने शुरू हो जाते हैं। जब तक शादी का गाना नहीं गाया जाता, तब तक कोई भी काम शुरू नहीं किया जाता। गाँव की औरतें शादी के घर तब तक नहीं जातीं, जब तक लड़की की माता उन्हें बुलाने नहीं जाती। जब लड़की की माता उन्हें बुलाती है तो वे एकदम तैयार होकर पहुँच जाती हैं और पुरोहित को शादी वालों के घर आते देख गाना शुरू करती हैं :–

किधर देशा ते आया पुआदेया, किधर देशा जो जाना
उत्तर देशा ते आया लोको, दखन देशा जो जाना।
किती पई गईयाँ रहना पुआदेया, किती हो गई बसेरे
उत्तर पई गईयाँ रहना लोको, दखन पई गई बसेरे।
कजो तूं आया पुआदेया, क्या करी के जाना वे
ब्याह पढ़ने आया लोको, ब्याह कराई के चले जाना वे।

अर्थात् हे पुरोहित! आप यहाँ किस लिए और क्या करने आए हो? तब पुरोहित उत्तर देता है कि वह शादी पढ़ने के लिए आया है और शादी ख़त्म होने पर चला जाएगा।

इस तरह जब पुरोहित अंदर चला जाता है और लड़की को अपने पास समूत (सुमुहूर्त) पढ़ने तथा कँगना बाँधने के लिए बुलाता है तो लड़की आकर पुरोहित के पास बैठ जाती है। लड़की को चिंता में देखकर :–

काँगना बानया पुआदेया काँगना बानया
कुड़िया खेले जो जाना वे हाँ
काँगना बानया पुआदेया...।

अर्थात् पुरोहित जी! लड़की को जल्दी से कँगना (रूई का धागा) बाँध दो, लड़की ने खेलने के लिए जाना है।

इसके बाद बटना लगाते हैं :–

दो बनजारू मैं बटने जो भेजे, से बनजारू न आए
थोड़ा-थोड़ा बटना मेरी सहियाँ जो देयों और मलो अंग मेरे
दो तेली मैं तेले जो भेजे, से तेली न आए
थोड़ा-थोड़ा तेल मेरे भाइयों जो देयों और मलो अंग मेरे
दो बनजारू मैं बटने जो भेजे, से बनजारू न आए।

अर्थात् दो बनजारे (चूड़ियाँ पहनाने वाले) और दो तेली मैंने बटने और तेल को भेजे हैं। वे दोनों अभी तक वापिस नहीं आए। जब आ जाएँगे तो थोड़ा-थोड़ा तेल और बटना मेरी सहेलियों और भाइयों में बाँट देना और बाकी मेरे शरीर में लगा देना।

फिर पुरोहित के कहने पर लड़की को नहाने के लिए बाहर निकालते हैं। उसके आगे-आगे उसकी बहन लोटे में पानी लेकर उसे गिराती हुई चलती है। इस अवसर का गीत इस प्रकार है :–

सेवल कुड़िया दिए बहने
कुड़िया नौंन सँजोना
सेवल कुड़िया दिए बहने...।

अर्थात् हे लड़की की बहन! आप लोटे में पानी लेकर उसे गिराते हुए आगे चलो, लड़की नहाने जा रही है।

नहाने के बाद 'तंग्यारे' (मिट्टी के छोटे बर्तन) में सरसों और आग डाल कर पूजा की जाती है। तब का गीत :–

तिल-तिल तिड़कयाँ सेतीए सरूयें
कुड़िया जो देया बधाईयाँ वे हाँ।
तिल-तिल तिड़कयाँ सेतीए सरूयें...।

अर्थात् हे सेती (सफ़ेद) सरसों! आप आग के बीच में अच्छी तरह जलना और अपनी शुभ कामनाएँ हमारी लड़की को देना।

इस तरह पाँच-सात दिन गाने-बजाने के बाद दूल्हा पक्ष वाले एक दिन लड़की को ब्याहने आ जाते हैं। बारात और दूल्हे को देखकर कन्या और उसकी माता की ओर से औरतें गाती हैं :–

अंबू तले डेरा लाया अम्मा, यह कौन सा जोगी
जोगी न बोलयो धीए मेरी, यह वो वर तेरा।

अर्थात् लड़की माता से पूछती है कि माता जी! यह आम के पेड़ के नीचे कौन योगी बैठा है, तो माता कहती है– बेटी! यह योगी नहीं है, यह तो तेरा वर है।

इसके बाद सांद का समय आता है। बारात वालों को खाना खिलाने तथा लड़की को वर के घर का तेल डलवाने के लिए बुलाया जाता है। आते बारातियों का ख़ूब आदर-सत्कार होता है। वे खाना खा कर तथा वर का पिता लड़की को तेल डाल कर वापिस डेरे में चले जाते

हैं। इसके बाद लग्न का समय आता है और दूल्हे के साथ बारातियों को लग्न के लिए बुलाया जाता है। वेदी में बैठने से पहले दूल्हा अंदर आता है, तब औरतें आदर और प्रेम सहित गाती हैं :–

अंदरे आओ लाड़ेया, अंदरे आओ
कल्ला ही आया और सौगी कां नी लाया।
अंदरे आओ लाड़ेया, अंदरे आओ...।

अर्थात् हे दूल्हा साहिब! आप अंदर आ जाओ। आप अकेले ही आए हैं, अपने साथ के लिए और क्यों न लाए। दूल्हे के अंदर बैठते ही पूछती हैं :–

कजो आया तूं सलोनी जोगी बन के, पहाड़ी जोगी बन के
क्या मँगदा दान तूं, कया मँगदा दखना नी?
मेरे सौरे री लड़की क्वारी, वोही मँगदा दान, वोही मँगदा दखना।

अर्थात् आप यहाँ पहाड़ के योगी बन कर किस लिए आए हो और आपको क्या दान और दक्षिणा चाहिए? दूल्हा कहता है– मेरे ससुर की एक लड़की क्वारी है, बस वही मुझे दान और दक्षिणा चाहिए और कुछ नहीं।

इसके बाद दूल्हा बाहर आ जाता है और वेदी में बैठ जाता है। तब औरतें दूल्हा-दुलहन की तरफ़ से गाती हैं :–

बाहरे आओ मेरी श्याम सुंदरी
कृष्ण लाने जो आया वे।
मैं कियाँ आऊँ मेरे कृष्ण प्यारे
बाहरे साहबा दे डेरे वे हाँ।
बाबा तेरा से सौरा मेरा
उस ते क्यों सरमाँदी वे।

अर्थात् दूल्हा दुलहन से कहता है कि अब बाहर निकल आओ, आपका कृष्ण रूपी वर लग्न के लिए आ गया है। दुलहन कहती है– मैं बाहर कैसे आ सकती हूँ, बाहर तो बहुत से लोग बैठे हैं। तब दूल्हा कहता है– जो तेरा पिता यहाँ बैठा है, वह मेरा भी ससुर है, उससे तुम क्यों शर्मा रही हो।

लग्न के बाद कन्यादान का समय आ जाता है और सबको कन्यादान के लिए पुरोहित पुकारता है :–

कन्यादान गंगा दा स्नान
कन्यादान गंगा दा स्नान।

पुरोहित की इस ध्वनि को सुनकर लोग जल्दी आकर कन्या को शगुन डालते हैं। इस तरह सवेरा हो जाता है और बारातियों को नाश्ते के लिए बुलाते हैं। बाराती आ जाते हैं और खाने के लिए बैठ जाते हैं। खाना खाते बारातियों को देख कर औरतें उनकी तरफ़ इशारा करती हुई गाती हैं :–

थोड़ियाँ खाओ जनेतियो थोड़ियाँ खाओ
कारज लगया तूती थोड़ियाँ खाओ।
लाड़े रा बाबा भूखा ही चली आइरा
पत्तल खाइया सने तुलिये।

अर्थात् बारातियो आप थोड़ा खाना खाएँ, यह शादी है कोई यज्ञ नहीं है। दूल्हे का पिता तो पत्तल को समेत तिल्लियों के हज़म कर गया।

लाड़े दा पेट बड़ा चकूना, खाँदा पेटा ते बी दूना
इसजो और देई दो जी, यह सात दिना दा भूखा जी।

अर्थात् हे चावल बाँटने वाले! दूल्हे का पेट बड़ा चौड़ा है और यह पेट से भी दुगुना खाता है। सात दिनों का भूखा होने के कारण इसको और चावल दो।

इन गालियों को सुनकर बाराती एक-दूसरे से बात करने और हँसने लग जाते हैं। इन्हें आपस में बात करते और हँसते हुए देखकर औरतें कहती हैं :–

जनेतियो बहुत न गलायो, असाँ जो नी डरायो
खाँगे छट्टियाँ री मार, रगड़ने गोडेयाँ दे भार
हल्लीं भी अप्पूँ जो सँभाला, म्हारी गल न बगाड़ा।

अर्थात् बारातियो! ज़्यादा बातें न बनाओ, नहीं तो हम आपको लाठी से मारेंगी और आपको घुटनों के बल रगड़ेंगी।

इसके बाद खाना खाकर सब बाराती डेरे में चले जाते हैं और लड़की को ससुराल भेजने की तैयारी शुरू हो जाती है। शाम के समय लड़की को तैयार करने से पहले दूल्हे को बुलाया जाता है और उसके घर से लाए गहने व कपड़े उसी के हाथों से दिलवाकर लड़की को पहनाए जाते हैं और लड़की के सिर में माँग निकाली जाती है और दूल्हे द्वारा सिंदूर भरा जाता है, तब औरतें गाती हैं :–

सीदिया भरेआँ लाड़ेया स्यांदियाँ, अपनीया अम्मा देया जाया
बादाम न गिरायाँ, छुहारे जो न मिलायाँ, कुँगू दी सेद लगायाँ
सीदिया भरेआँ लाड़ेया स्यांदियाँ, सीदिया भरेआँ स्यांदियाँ।

अर्थात् हे दूल्हे! लड़की की स्याँदी (माँग) में सिंदूर अच्छी तरह भरना, सिंदूर इस तरह भरना कि बादाम नीचे न गिरे और छुहारा और बादाम आपस में न मिले, क्योंकि बादाम और छुहारों को अँगूठे के बीच रखकर सिंदूर भरा जाता है।

जीजा रिन मसरा दी दाल, मसाला मैं देंदी
जीजा कर माइया दा दान, बाबा मैं देंदी
जीजा रिन मसरा दी दाल, मसाला मैं देंदी
कर चाची दा दान तूं, चाचा मैं देंदी
कर बहना दा दान तूं, जीजा मैं देंदी जी।

अर्थात् जीजा जी! आप मसूर की दाल पकाओ और दाल के लिए मसाला हम देती हैं। यदि

दाल आपसे न पके तो अपनी माता, चाची और बहन का हमें दान कर दो और हम आपको पिता, चाचा और जीजा ज़रूर देंगी।

जीजा जी सरदारा! तेरा बाबा सूनी दा क्वारा
कित्थे जन्मयों मेरा जीजा जी।
सालियो छनी दे ऊपर ढपनी, मेरी माँ बड़ी नटनी
क्या दसूँ कित्थे जन्मयों मेरी सालियो।

अर्थात् सालियाँ जीजा से पूछती हैं— हे जीजा जी! हमने सुना है कि तेरा बाप अभी तक क्वारा ही है तो आप बताएँ कि आपने जन्म कहाँ लिया है। तब जीजा कहता है— इसका मुझे कोई पता नहीं, इसका मेरी माता को ही पता होगा।

इयाँ बनूं जीजा मेरया, जियाँ भेडू बनया खुड़लिया
ताँ छडूं जीजा मेरया, जे माओ जो देंगा अपनीया।
इयाँ बनूं जीजा मेरया, जियाँ भेडू बनया खुड़लिया
ताँ छडूं जीजा मेरया, चाची, बहना देंगा अपनीया।

अर्थात् सालियाँ जीजा को कहती हैं— जीजा जी आपको ऐसा बाँधा जाएगा, जिस प्रकार से मेढ़ा खूँटे के साथ बाँधा जाता है और तब तक नहीं छोड़ा जाएगा, जब तक आप अपनी माँ, चाची और बहन को हमारे हवाले नहीं करोगे।

इस तरह की और अनेक गालियाँ गाई जाती हैं, परंतु ये गालियाँ प्रेम भाव की होती हैं। इनका दोनों पक्ष वाले बुरा नहीं मानते, बल्कि ख़ुश होते हैं।

इसके बाद दूल्हा बाहर चला जाता है और लड़की के दहेज का सामान बाहर निकाला जाता है। तब लड़की की तरफ़ से औरतें गाती हैं :—

पुत्त बनके कमाया मैं घर तेरे, कमाया मैं घर तेरे
कि दाज दइने तोरा पालकी बाबा जी।
भाई बनके कमाया जी भाईया मेरया
कि दाज देयाँ रजी-रजी ने भाईया मेरया।

अर्थात् पिता जी! मैंने आपके घर में आपके लड़कों की तरह काम किया है, इसलिए मुझे दहेज देकर पालकी में बैठाकर भेज दो। भाई जी! मैंने आपके साथ भाई बनकर काम किया है, इसलिए मुझे बहुत दहेज देना।

अज होई जी अम्मा नेहरे ते चानना
अज लाईदे अम्मा बाबे दिया वो खटिया।
जदे चढ़ी रे बेटा, कुँई [illegible] रे [illegible]
तेरे बाबे रे बक्से
जदेयाँ वो नाड़ी वो देयाँ, कुँड्यो [illegible] वो देयाँ बाबे दे बक्से
अज होई जी अम्मा [illegible]

अर्थात् [illegible] जी! आज आपके [illegible] भारी चिंता

दूर हो गई है। आज पिता जी की सारी कमाई को यहाँ लगा दो। माता कहती है– बेटा! तेरे पिता जी के बक्सों में ताले और कुँडे लगे हुए हैं, मैं क्या कर सकती हूँ? तब बेटी कहती है– हे माता जी! पिता जी के बक्सों के तालों और कुँडों को तोड़-मरोड़ दो।

इसके बाद बारात वापस लौटती है। बाजे वाले और औरतें गाना शुरू करती हैं :–

तेरयाँ महलाँ दे अंदर वे बाबा मेरा डोला अड़या
तेरे डोले टपाई देंगा वे नी धीए, घर जा अपने।
तेरी उच्चियाँ परौलियाँ च बाबा मेरा डोला अड़या
इक ईंट छुड़ाई देंगा नी धीए घर जा अपने।
तेरयाँ महलाँ दे अंदर वे बाबा मेरी अम्मा तायी रोए
तेरी अम्मा ताई जो चुप कराँगा धीए घर जा अपने।
तेरयाँ महलाँ दे अंदर वे बाबा मेरी गुड़ियाँ रहियाँ
तेरी गुड़ियाँ तेरी सहियाँ जो देंगा नी धीए घर जा अपने।
तेरयाँ महलाँ दे अंदर वे बाबा मेरा डोला अड़या।

अर्थात् पिता जी! आपके ऊँचे मकान के बीच में मेरी पालकी रुक रही है। पिता कहता है– बेटा मैं एक ईंट छुड़ा लूँगा, परंतु तुम चुपके से अपने घर चली जाओ। इस तरह लड़की चाची, ताई, माता, सहेलियों तथा गुड़ियों की याद करती है। तब भी उसके पिता जी कहते हैं– बेटा! तेरी चाची, ताई माता और सहेलियों को मैं चुप करा लूँगा और गुड़ियाँ आपकी सहेलियों को दे दूँगा, परंतु तुम चुपके से अपने घर चली जाओ।

इस तरह बारात चली जाती है और पूरी शादी लोक गीतों की मधुर ध्वनि के साथ संपन्न हो जाती है।

गाँव बरोटा,
डाकघर एवं तहसील घुमारवीं,
ज़िला बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश

(सोमसी पत्रिका के अंक जुलाई, 1980 से उद्धृत।)

ऊना के विवाह में मीठी गालियाँ

● डॉ. रजनीकांत

ज़रा कल्पना कीजिए! आँगन में बारात विराजमान है। हर बाराती के सिर पर प्याज़ी पगड़ी सजी है। हर प्राणी अपनी सबसे अच्छी पोशाक में सजा है। सभी वर के रिश्तेदार हैं, मित्र हैं, संबंधी हैं। आज तो वृद्ध भी युवक की भावनाएँ लिए सुसज्जित हैं। मामे, चाचे, ताऊ, भाई सभी की शान अलग ही है। एक ओर बाजे वालों ने समाँ बाँध रखा है तो कुछ बाराती नशे में भंगड़ा करने का मोह छोड़ नहीं पा रहे हैं। हँसी-ख़ुशी का माहौल है। वर के बाप की प्रसन्नता का तो कोई ठिकाना नहीं है। लंच का समय हो रहा है। भूख भी लगने को आई है। बारात आँगन में सज गई है। आते ही पूरी बारात के हाथ धुला दिए गए हैं। पंक्तिबद्ध बारात अब पालथी मारकर खाने के लिए बैठ गई है। सामने पत्तलें रख दी गई हैं। पानी के लिए गिलास रखे गए हैं।

सामने दुलहिन के घर के बरामदे में औरतें बैठी हुई बारात को निहार रही हैं। झुंड में औरतें। किसी वृद्धा ने छेड़ दिया, मोइयो! कोई गाली गीत ही छेड़ दो। फिर तो धमोड़ियों (पीले रंग का एक कीट विशेष, जिसके काटने से सूजन होती है) की तरह हो गई औरतें शुरू। हो गए व्यंग्य बाण शुरू। वर के जीजा जी बैठे हैं। अभी पहला ग्रास मुँह में रखा ही है। जीजा जी निशाने पर आ गए हैं :–

जीजा थोड़ा-थोड़ा खा, तैनू ग्रास लगेगा
तेरी माई रैही गई दूर, पाणी कौण पिलाएगा?
ओणु सद्दां गे जरूर, गेड़ा कडाँगे जरूर
ऐथे ल्यावाँगे जरूर
पाणी ओह पलावेगी।

अर्थात् धीरे-धीरे खाओ। ऐसी भी क्या जल्दी है? कहीं ग्रास लग गया तो हमारे लिए मुश्किल पेश आएगी। आपकी माताश्री भी दूर रह गई हैं। आपको पानी कौन पिलाएगा? वैसे हम उनको बुलाएँगे ज़रूर। वही आपको आकर पानी पिलाएगी।

देखिए लपेटे में लड़के की माँ भी आ गई। देखते जाइए कौन-कौन अब इन स्त्रियों के निशाने पर होंगे। आगे-आगे देखिए क्या होता है?

फ़िलहाल तो मुख्यतः जीजाश्री ही निशाने पर हैं। अभी उनकी ही शामत आई है।

बेचारे छोटे-छोटे ग्रास मुँह में डाल रहे हैं, इन्हें शर्म भी आ रही है, क्योंकि वही महाशय उन स्त्रियों के व्यंग्य के निशाने पर हैं। मीठा घाव भी कहीं हो ज़रूर रहा है। मीठे-मीठे व्यंग्य बाण चुभोना ही इन गाली गीतों का लक्ष्य है। आज मौक़ा भी है और दस्तूर भी। ये गाली गीत हमारी संस्कृति और परंपरा के अभिन्न अंग हैं :–

जीजा केहड़ियाँ गल्लां दा गम खा गिया
सुक के तबीत हो गिया
मावाँ बेच के जलंधर कैद हो गिया
साड्डे भाएँ छुट्टी आ गिया।

अर्थात् जीजा जी आपको कौन सा दुःख लग गया। किस चीज़ का ग़म लग गया। आप तो भले-चंगे थे। अब के तबीत (तावीज़) की तरह सूखकर पतले हो गए हैं। हमने समझा कि आप छुट्टी पर आए हैं, पर हमें विश्वस्त सूत्रों से पता चला कि आपने तो माँ को ही बेच दिया है।

आज ख़ुशी के अवसर पर मख़ौल किया जा रहा है। सहता-सहता मख़ौल। आज कौन रूठेगा। यह तो माहौल को ख़ुशनुमा बनाने का प्रयास भर है। कोई भी बुरा नहीं मना रहा है। और गाओ, रिश्तेदार उनसे अनुरोध कर रहे हैं। आज अपना ख़ज़ाना खाली कर दो। पूरी कसर निकाल दो आज। तरकश से सारे तीर निकाल दो आज। कोई ग़म नहीं।

फिर सभी बारातियों के नाम पूछकर उन पर व्यंग्य बाण छोड़े जा रहे हैं। समय और अवसर देखकर कोई भी अगर काम किया जाए तो अगला पक्ष भी इसका बुरा नहीं मनाता है। अगर ऐसे ही किसी व्यक्ति को छेड़ दिया जाए तो भाई साहिब अगला सर न फाड़ दे। सभी प्रसन्न हो रहे हैं कि मेरा नाम भी आज स्वर लहरियों में गूँज रहा है। कोई बात नहीं। तब क्या हो गया? ताने-मीह्ने आज ही सुना दो। कल किसने देखा? मीठी गालियों की मार भी मीठी होती है। मीठी गालियाँ सुनकर सभी अघा रहे हैं। कल सभी अपने-अपने रास्ते जाएँगे। कौन किसको ये गालियाँ सुनाएगा, कहेगा? अब समधी जी तीर की नोक पर आ गए हैं। औरतें गा रही हैं :–

कुड़म बेहड़े बड़ेया मेरा डंगर बच्छू डरेया
मैं डर गई जमदूत केहड़ा आया।

अर्थात् यह हमारा समधी किसी यमदूत से कम नहीं। समधी ने आँगन में प्रवेश किया कि मेरे तो सभी पशु भी भयभीत हो गए।

अब निशाने पर वर आ गया। सभी का ध्यान अब वर पर है। कोई कोर कसर न रह जाए :–

लाड़ा बड़ा खलारा पाया तेरिया जुल्फां ने
मैं डर कैं अंदर बड़ गई
कौण जमदूत बेहड़े आया।

अर्थात् अजी लाड़े की ज़ुल्फ़ों पर सदके जाइए। मैं तो इसे पहचान नहीं सकी। मैं तो मारे भय

के अंदर जा घुसी। अरे यह कौन यमदूत हमारे अंदर आ गया।

अब पूरा ध्यान वर की ओर है। इस बार वार कैसे खाली जा सकता है? बाराती भी धीरे-धीरे मुस्करा रहे हैं। भई, आज का दिन तुम लोगों का है। कर लो हँसी-मज़ाक। आपका कहने का दिन है और हमारा सुनने का दिन है। अब वर की माँ को भी गालियों की तपिश पहुँच रही है। निशाने पर अब वर की माँ है। उसका रिश्ता रीछ से जोड़ने पर कोई परहेज़ नहीं। इसे रीछ की पत्नी घोषित करने से ये स्त्रियाँ नहीं टल रहीं :–

रिड़िया-रिड़िया बांदर जाँदा
नाले-नाले रिच्छ मुईए।
लाड़े दी माईये मत डरदी
मैं नी करदा कुछ मुईए।
लतां जिक्कण बांदर लाया
पेट मलाई गिया रिच्छ मुईए।
बांदर दे दो लड़के जाए
मरी-मरी जाँदा रिच्छ मुईए।

कहते हैं हसने वालों के घर बसते हैं। नाराज़ होकर क्या लेना? इन्हें भी जी भर कर गाने दो। लड़के की माँ के व्यापारी भी आ गए और सौदा भी हो गया :–

लाड़े दी माऊ झख नहेरी आई
कुँडा ला लै उठ के।
मावाँ दे बपारिये आए
सौदा कर ले हसके।

अब समधी पर तीर लगे बरसने :–

कुड़म अज्जे दा बी भुक्खा, कल्ले दा बी भुक्खा
कल्ले परसों दा भुक्खा
एह तां जन्म जन्म दा भुक्खा
इनु होर दयो जी।

अर्थात् यह समधी तो बहुत भूखा है। इसे और परोस दो, यह तो कल से भूखा है। लगता है जन्मों से भूखा है। इसको और खाना डाल दो।

महाराज! आज तो कई आरोप लगेंगे, तैयार रहो।

कुड़मा अंदर खीसा लाया ग्लास लया लको
असीं मगर सपाही लाया ग्लास लया कढा
तेरी लक्खां जहि पट्ट वे तैं पल विच लाई गुआ।

समधी हमारे ने अंदर लगाई हुई (शराब पी हुई) है और हमारा एक गिलास उसने छिपा लिया है। हम भी कोई कम नहीं हैं। हमने सिपाही मगर (पीछे) लगाकर उस गिलास को निकलवा लिया। समधी की क्या इज़्ज़त रही अब।

यह गीत बहुत प्रचलित है। हर बारात के आगमन पर गाया जाता है। अपने गाँवों की धाम का कोई मुक़ाबला नहीं :–

मिर्चा तिरमिरियाँ छोलेयाँ दी दाल करारी
कुड़म खाण बैठया खाके कड़छी मारी
खाके होर मँगदा मुँहे च कड़छी मारी।
कड़छी दा खूण हो गिया
मुकदमा हो गिया भारी।
साड़ी लगदी दुआणी
जीजे दी लगदी माई।

अर्थात् चने की दाल तो सभी बहुत चाव से खाते हैं। अजी! इनमें मिर्चों की छौंक लगी हो तो मज़ा दोगुना हो जाता है। यह दाल करारी बनी हो तो और भी स्वाद लगती है। समधी खाने बैठा और वह बार-बार दाल माँगे। उसे क्रोध आ गया। उसने कलछी मार दी। उधर कलछी का ख़ून हो गया। मुक़दमा चल पड़ा। हमारा तो कुछ भी नहीं लगेगा, लेकिन जीजाश्री की माँ मुक़दमे की भेंट चढ़ जाएगी।

अब सभी बारातियों की बारी आ गई। औरतें सभी को बारी-बारी निशाने पर ले रही हैं :–

सुणयो बरातियों मन चित्त ला के
पाणी देन वाला मुँडा कुआरा
इनु दे दियो गरिया छुहारा।
गरिया छुहारा एह नई खाँदा
दे दियो भैण दा सहारा।

अर्थात् बारातियों! आज मन-चित्त लगाकर सुनो। पानी देने वाला लड़का अभी तक कुँवारा है। इसे पसंद कर लो और इसे आज ही गरी-छुहारे दे दो। पर यह तो गरी-छुहारे खाता नहीं, इसको अपनी बहन ही दे दो। इसको भी आसरा हो जाएगा।

एक और गाली गीत का आनंद लें :–

चील मचीले डाले चीलाँ सूकदियाँ।
जनाणी कुट्टी हड्डियाँ भणी सुटियाँ
लाए बड़ी दा दुद्ध छुई दियाँ कुम्लियाँ।

अब निशाने पर वर के जीजाश्री आ गए :–

जीजा रिन्न सोयाँ दा साग
मसाला मैं दिन्नियाँ।
जीजा कर माउ दा दान
बाउ मैं दिन्नियाँ।
जीजा कर भाबो दा दान

बीरा मैं दिन्नियाँ।

अर्थात् जीजा जी! सोये का साग चूल्हे पर चढ़ा दो। मसाला मैं दे दूँगी। जीजा जी! अपनी माँ का दान दे दो। मैं भी अपने बापू को उसे दे दूँगी। अपनी भाभी का दान दे दो, मैं अपना भाई आज़ाद कर दूँगी।

विवाह-शादी में अकसर सालियाँ नए जीजे को छंद डालने के लिए कहती हैं। अब तो वृद्धाएँ भी वर की सालियाँ बन जाती हैं। छंद सुनने और सुनाने का रिवाज बहुत प्राचीन है। नए जीजाश्री ने छंद डालने के लिए मुँह खोल दिया। अब तो सभी औरतें शुरू हो गईं। फिर तो जीजाश्री की माँ को भी लपेट लिया। फिर तो माँ और बाप भी नहीं बचे। वे भी उनके लपेटे में आ गए :—

छंद पायाँ जीजा मैं सालियाँ
छंद पराके आईए जाईए छंद मँगे तोता
जीजे दिया माऊ खसम कित्ता खड़े पिंडे दा खोता
छंद पायाँ जीजा मैं सालियाँ।
छंद पराके आईए जाईए छंदे अग्गें कूड़ा
जीजे दिया भैणा खसम कित्ता साड़े पिंडे दा बूढ़ा।

गालियों की कमी नहीं। ख़ज़ाना भरा पड़ा है। टिचरां (उपहास)-उलाहने भी मिलते हैं गालियों में। सब सुनने पड़ेंगे आज :—

नया स्कूल खुलाया जनता ने
नया स्कूल खुलाया।
लाड़े दिया अम्मा स्कूलें पाई
'क' लिखणा न आया।
साली नु पढ़णा न आया
साडा बापू टीचर लगया
खिचकर रूल चलाया
साली नु कस्स के रूल चलाया।

अर्थात् जनता-जनार्दन ने नया स्कूल खुलवाया। लड़के की माँ स्कूल पढ़ने गई, पर बेचारी को 'क' भी लिखना नहीं आया। हमारे बापू वहाँ के स्कूल मास्टर थे। उन्होंने खूब कानून सिखाया।

अब शुरू हो गया हँसी-मज़ाक का एक और खेल। संवादों के माध्यम से वर के रिश्तेदारों पर व्यंग्य बाण चलने शुरू हो गए। एक औरत डॉक्टर बन गई और दूसरी मरीज़। शेष हुँकारे भरने लगीं। जम कर शुरू हो गई रिश्तेदारों की खिल्ली उड़नी। हँसकर पेट पकड़ लिए लोगों ने :—

र इंडिया दा
इंडिया दा जी इंडिया दा।
नमस्ते जी नमस्ते!

कैथी जो चली रे?
लाड़े दे चाचे रे पेटा पीड़ पई गई री
परेशन करण चली रा।
क्या दवाई ही?
छोटी लायची बड़ी लायची
नींबूए दा रस
नस बांदरां दी खिलनी
जर जाए हिलनी
ओहो बे डॉक्टर।

अब पूरी बारात निशाने पर है। उनकी कमियों और कमज़ोरियों को लेकर गालियाँ गाई जा रही हैं। किसी का कोई लिहाज़ नहीं :–

हम लाज गए की जनेतिए थोड़े आए
हम लाज गए चिट्टियाँ पग्गाँ आए।
हम समझ गए ललारिया न ऐथु कोई
हम लाज गए ललारी न ऐथी कोई।
हम लाज गए बुड्ढे ठेरे आए
हम समझ गए कि गबरू भर्ती होए।
हम लाज गए कि जनेतिए थोड़े आए
सरीक न आया कोई।

अर्थात् हमारे समधी को बाराती ढूँढे नहीं मिले। मिले तो इनकी संख्या भी कम है। और तो और ये सफ़ेद पगड़ियाँ बाँधकर आ गए, इन्हें शायद ललारी (रंगरेज़) उपलब्ध नहीं हुआ। सारे बाराती वृद्ध हैं। युवक बहुत काम आए हैं। हमें पता चल गया है कि इनके भाई-बाँधव तो आए नहीं। यानी वर पक्ष को घेरने के लिए पूरा चक्रव्यूह रचा गया है।

कमियों और कमज़ोरियों को पकड़-पकड़कर सुनाया जा रहा है :–

जंज बूढ़ेयाँ दी आई गबरू कोई-कोई ऐ
चंदे लसलस लाई तारा कोई-कोई ऐ
जंज कानेयाँ दी आई सुनक्खा कोई-कोई ऐ
जंज कालेयाँ दी आई गोरा कोई-कोई ऐ।

अर्थात् कहाँ से पकड़-पकड़कर वृद्ध बाराती ले आए हैं। इनमें कोई काना है, कोई कुछ। सुंदर तो कोई दीख नहीं रहा। बारात में गौरवर्णी तो कोई है नहीं।

गाली गीत का एक और रूप भी आनंददायक है :–

मेरे हाथ आ गई कॉल केंच दी डब्बी
जीजे दिया अम्मा खसम कित्ता इक दो चार पँज छब्बी
मेरे हाथ आ गई नई कॉल केंच दी डब्बी।

नया पाहुना (जीजा) सभी औरतों के निशाने पर है। मीठी-मीठी हँसी-ठिठोली जारी है :–

जीजा उठी कें पैंटा झाड़
पैंटा च भूंड बड़ेया
इक नी बड़ेया दो नी बड़े
बड़े पँज सत्त चार।
रौला मत पा अड़िए, ऐ माऊ मेरिया दे यार
कुल पँज सत्त चार होया तीसा ने प्यार।
जीजा जुड़ी गिया मँजे नाल, मँजा तेरा क्या लगदा
सालिए ऐ मेरी माऊ दा यार, मेरा पीओ लगदा।

अर्थात् जीजा जी!, तुम्हारी पेंट में कीट घुस गया है। ज़रा इसे झाड़कर तो देखो। फिर जीजाश्री को चारपाई के साथ जुड़ने की बात भी की गई है। उसकी माँ को भी नहीं छोड़ा जा रहा है। लपेटे में तो समधिन भी आ गई है।

यहाँ पर भी बस कहाँ? यहाँ सब रेडीमेड है। सब तैयार है। तरकश में नुकीले किए हुए तीर हैं। बस निशाना ही तो लगाना है। उलटे-सीधे संबंध जोड़ना कोई कठिन काम नहीं है :–

लैहरे-लैहरे मूँगरे पठानकोटों आए न
जीजा पुछे बोबो तेरे परोहणे ते आए न।
चुप कर बसरा बे, ऐ तेरे पीओ आए न
तेरे डरदिया सुथनी हेठ लुकोएँ न।

अब निशाने पर समधी-समधिन आ रहे हैं :–

हरी मूलिए नी तेरे लैहरे-लैहरे पत।
जीजे दा पीओ जोरो दिए कन्ने जोड़े हत्थ।
इसा जो लई जाण्यो जी दिल गिया है अक्क।

अर्थात् जीजाश्री का बाप हाथ जोड़कर अपनी पत्नी को यह कह कर दान में दे रहा है कि इस औरत से मैं अक (तंग होना) गया हूँ।

जीजा सर्वाधिक निशाने पर है। बेचारे के साँस सूख रहे हैं। न हँसने की हालत में है और न रोने की स्थिति में है :–

आ बे जीजा साडे कारखाने, तिज्जो लोहे दा कम्म सिखाइए
तेरी माल दी रेलगाड़ी, तेरे बाओ दा इंजन बना देइए
तेनु सिमले दिल्लीया बंबई दी सैल करा देइए।

अर्थात् हमारा लोहे का कारखाना है। आओ इस कारखाने में तुम्हें भी प्रशिक्षण दिया जाए। तुम्हारे बापू का रेल इंजन बनाना है। फिर तुम्हें दिल्ली-शिमला की सैर करवाया करेंगे।

अब समधिन फिर सूई की नोक पर है। उसका संबंध चौदह लोगों से जोड़ने से पीछे नहीं रह रही हैं ये औरतें। उनका ब्योरा देने से हट नहीं रही हैं :–

दूँ दे हत्थें तूँबे दो मंग खलाँदे

दूँ दे हत्थें तोयें दो पोलू पकाँदे

दूँ दे हत्थें पखियाँ दो बात झुलाँदे

दूँ दे हत्थें गड़बे दो नीर भरैंदे

दूँ दे हत्थें छत्तियां छौं कराँदे

दूँ दे हत्थें लौ कराँदे

दूँ दे हत्थें कड़छिया दो दाल परींदे।

गालियों की बौछार चल रही है। आज तो वृद्ध औरतें भी जवान होने का नाटक कर रही हैं। गाने में पीछे नहीं रह रही हैं। एक सुर में स्वर लहरियाँ फ़िज़ाँ में गूँज रही हैं :–

जीजा चुपचुप बैठे हो ज़रूर कोई बात है

अम्मा जाद आ गई जी अम्मा जाद।

अम्मा जाद आ गई ताँ नाल लैई औणी सी।

नाल लई औणी सी, असाँ दे भाऊआँ जो ब्याहणी थी।

ठूर्द कन्ने अंग्रेज़ी साड़े भाऊआँ बी जाणदे

चिट्ठी दा गुजर असाँ ओह बी पढ़ाणी थी।

जीजा जी चुप-चुप बैठे हैं। क्या माँ की याद आ रही है। उसे साथ ले आते। हम भाइयों के साथ उसका विवाह कर देते।

जीजा जी अब ज़द में आ गए। पशु चराने वाला चरवाहा बताया गया :–

कल तुसें देख्यो जीजा डंगरियाँ चारदे थे।

राज विला, लोअर कैथू,
शिमला-171003, हिमाचल प्रदेश

कांगड़ी लोक गीतों में गालियाँ

● मनोहर लाल

कांगड़ा के लोक गीत साहित्य में गालियों का अपना विशेष महत्त्व है। लोकाचारों तथा कुछ विशिष्ट पर्वों पर गाए जाने वाले गीतों में हास्य रस की निष्पत्ति के लिए व्यंग्योक्तियों का प्रयोग किया जाता है। विवाह आदि अवसरों पर गालियों के गाने का ही अधिक रिवाज है। ब्रज प्रदेश में इन गालियों को 'सीठने' कहते हैं।

'गाली देना' कोई अच्छी बात नहीं है। जो व्यक्ति गालियाँ देता है अथवा खाता है, उसे समाज अच्छी नज़र से नहीं देखता। इसमें तो अपमानित ही होना पड़ता है। इससे चारित्रिक दुर्बलता ही ज़ाहिर होती है। गाली सही ही नहीं जा सकती, चाहे आपका कोई कसूर हो या न भी हो। किंतु गाली के कथन में भी अंतर है। यदि देशकाल के परिवेश में गाली निकाली जाए तो बुरी होते हुए भी वह अच्छी ही लगती है। मान लीजिए आपका आँगन छोटे से बालक की किलकारियों से गुँजित हो रहा है। उसका दूधिया दाँतों वाला हास तथा घुँघराले बालों वाला मौलिमंडल, हल्के रक्तिम सुडौल गौर-गालों पर लगा काला डिठौना आपके हृदय को मोह रहे हैं और वही सुंदर बालक अपनी तोतली भाषा में कोई गाली निकाल देता है तो आपको वह गाली भी सरस लगेगी, विरस नहीं। काल सापेक्षता को ही दृष्टि में रखकर महाकवि वृंद ने सतसई में लोक तत्त्व के इस रहस्य को इन पंक्तियों में व्यक्त किया है :—

फीकी पै नीकी लगै, कहिए सम विचारि।
सबको मन हर्षित करैं, ज्यौं विवाह मैं गारि।

(वृंद सतसई, दोहा 5)

इतना सत्य है कि लोक साहित्य की यह विशेषता नागर साहित्य में कम मिलती है, पर जहाँ मिलती है, वहाँ इसकी शिष्टता एवं विशिष्टता अवलोकनीय ही होती है। महाकवि तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरितमानस' में लोक साहित्य की इस विशेषता को अपनाया है। सीता के पक्ष की स्त्रियाँ भोजन करती हुई जनेत (बारात) को गालियाँ गाती हैं :—

पँच कवंल करि जेवन लागे। गारिगान सुनि अति अनुरागे।
जेंवत देहि मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरू नारी।
समय सुहावनि गारि विराजा। हँसत राऊ सुनि सहित समाजा।

एहि विधि सबहीं भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा।

(बालकांड, छंद 328)

स्पष्ट है कि राजा दशरथ पक्ष के लोगों को गालियाँ अच्छी लगीं। सुनकर उनका मन हर्षित हो गया। सारा समाज प्रसन्न था। प्रत्येक का नाम ले-लेकर गालियाँ गाई गईं। हो सकता है, जिसका नाम न लिया जा सका हो, उसने अपने मन में बिचारा हो कि मुझे क्यों गाली नहीं दी गई! गाली सुनने का चाव उसके मन में ही रह गया हो।

लोक साहित्य में ये गालियाँ अश्लीलता अथवा अतिशयोक्ति का भी रूप धारण कर लेती हैं। ऐसे अवसरों का यह प्रकरण किसी हद तक अशोभनीय भी लगने लगता है। हिंदी साहित्य में कविवर केशव दास ने इसी परिवेश में राम के पिता दशरथ को सीता के पक्ष की स्त्रियों द्वारा 'भू-पति' होने पर व्यंग्य किया। दशरथ 'भू' के पति हैं। 'भू' है बहुपति भोगी! हरजाई!! कितने ही राजा समय-समय पर हुए, इसे भोगा और चलते बने। ऐसी ही हरजाई को दशरथ ने भी वामा के रूप में स्वीकार किया है। वे कहतीं– हे राम! तुम ऐसे ही परदारा भोगी पिता के तो पुत्र हो :–

अब गारि तुम कहं देहिं हम कहि कहा दूलह राम जू।
कछु बाप प्रिय परदार सुनियत करी कहत कुवाम जू।
को गिनै, कितने पुरुष कीन्हें कहत सब संसार जू।
सुनि कुंवर चित्त दै बरनि ताको कहिय सब ब्यौहार जू।

(राम चंद्रिका, 6/30)

वह रावरे पितु करी पत्नी तजी विप्रन थूंकि कै।
अरु कहत हैं सब रावनादिक रहे ताकहँ ढूँढिकै।
यहि लाज मरियत ताहि तुम सों भयो नातो नाथ जू।
अब और मुख निरखै न ज्यों-त्यों राखिये रघुनाथ जू।

(राम चंद्रिका, 6/37)

नागर साहित्य के इन्हीं प्रकरणों से प्रेरित होकर प्रस्तुत लेख में मैं कांगड़ा गाली प्रधान लोक काव्य को प्रस्तुत करने का लघु प्रयास कर रहा हूँ। मैंने यह अनुभव किया है कि यह लोक काव्य अपने भीतर विचित्र सी आत्मीयता तथा सरसता समाए है, जो सामाजिक इकाइयों को एक-दूसरे से मज़बूती से जोड़ने का उपक्रम ही है। मन के शुद्ध भावों को जो बिना किसी राग-द्वेष से स्नेहिता बन कर, ललनाओं के कंठ से स्वर लहरियों के रूप में सहज ही फूट पड़ते हैं, इस छोटे से लेख में आकलित करना ही पर्याप्त नहीं है, इसके व्यावहारिक पक्ष की पैठ में जाना शोध की एक दिशा होगी।

कांगड़ा के लोक समाज में स्त्रियों द्वारा विवाह के अवसर पर गाई जाने वाली गालियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :–

सांद (शांति पाठ) की गालियाँ : सांद संस्कार पुरोहित द्वारा ग्रहों की शांति तथा जीवन के मंगलमय बनने के लिए किया जाता है। इस समय कन्या एवं वर दोनों ही पक्षों में मामा की

उपस्थिति अनिवार्य होती है। वर तथा कन्या मामा के घर से लाए हुए वस्त्र धारण करते हैं। मामा इस अवसर पर पूरी साज-सज्जा तथा रोब के साथ पधारता है। मामा पर व्यंग्य करते हुए स्त्रियाँ गालियाँ गाती हैं :–

मामा आया बण-ठण के, सूट लिआया मँग शुँग के।
सूट तैरै आव नहीं, क्या मामा तिज्जो लाज नहीं।

अर्थात् मामा पूरी तरह बन-ठन कर आया तो, पर सूट माँग कर लाया है। सूट पूरे नाप का भी नहीं है, क्या मामा तुझे शर्म नहीं आती? इसी परिप्रेक्ष्य में मामा के सारे वस्त्रों को कोसा जाता है :–

मामा आया बण-ठण के, टोपी लिआया मँग शुँग के।
टोपिया तेरिया आव नहीं, जुड़ा दा कोई हसाब नहीं।

सांद के समय सारे सरीक (बिरादरी वाले) तथा संबंधी वर तथा कन्या के सिर पर तेल डालते हैं। नाई तेल का डूना (दोना) लिए पास खड़ा रहता है और लोग इससे दूर्वा द्वारा तेल लेकर सिर पर डालते जाते हैं और साथ में दोने में कुछ पैसे डाल दिए जाते हैं। जो आदमी तेल डालता है, उसका नाम अथवा संबंध बताकर उसे गालियाँ गाई जाती हैं। इस समय भी मामा की ही अधिक खिंचाई की जाती है। मामा को गाली गाई जाती है :–

मामे पेया तेल मुइये, मैं तेरी सौं।
ओरनै पैया धेला पाई, मामे पाई माई।
नाई परोत लेई नैं नठे, अदो अद्द बँडाई।
नैण परोतणी खुशियाँ मनान, घरे जो गोली आई।

कटूक्ति है कि जब औरों ने नाई के दोने में पैसे डाले तो कंजूस मामा ने पैसे तो बचाए, पर बदले में माँ की बाज़ी लगा दी, जिसे लेकर नाई और पुरोहित दोनों भागे और उस पर अपना-अपना हक़ जताने लगे। नाइन तथा पुरोहितानी ख़ुशियाँ मनाने लगीं कि काम करने के लिए नौकरानी तो आई।

इस गाली में मामा की कृपणता का संकेत करके उसका अच्छा उपहास किया गया है।

साह-ब्राह्मण की गालियाँ : कन्या पक्ष की ओर से विवाह की अंतिम स्वीकृति ले जाने वाले ब्राह्मण को भी वर पक्ष की औरतें ख़ूब आड़े हाथों लेती हैं। ज्यों ही ब्राह्मण वहाँ पहुँचता है, स्त्रियाँ संवादात्मक शैली में गाली गाती हैं :–

कुदा छल्लिआ तूं बाम्मण आया
कुदे बेड़े जाणा ऐ?

अर्थात् तू ब्राह्मण किसका भेजा हुआ आया है और किस के बेड़े जाना है?

कुड़मा दा घल्लेआ मैं बाम्मण आया
कुड़मा दें बेड़े जाणा ए।

अर्थात् कुड़मों का भेजा हुआ मैं आया हूँ और कुड़मों के घर ही मुझे जाना है।

इस ब्राह्मण का जी भर कर स्वागत करके इसे दक्षिणा दी जाती है। लोक गालियों में औरतें दक्षिणा के रूप में भैंस, गाय, थाल आदि अनेक वस्तुओं का उल्लेख करती हैं कि इनको दक्षिणा के रूप में स्वीकार कर लो। पर वह एक रट लगाता है कि इन सब चीज़ों को लेकर मैं क्या करूँगा? इन्हें संभालने वाली पत्नी ही जब मेरे घर में नहीं है, कौन सँभालेगा इन्हें? उसके इतना कहते ही कुड़मणी को दक्षिणा के रूप में दावँ पर लगा दिया जाता है और साह लेकर आने वाला ब्राह्मण प्रसन्न होकर स्वीकृति दे देता है :–

स्त्री : *आ साये दिआ बाम्मणा तूं लै दच्छणा*
बूरिया मेईं दा दान करानियाँ तू लै दच्छणा।
ब्राह्मण : *नी मैं छड़ा नी जजमानणिये, मेरा चोंका सुन्ना*
मेरा कुण मेईं जो दुग्गे?
स्त्री : *कुड़मैं दिआ जोरो दान करानिआँ*
तू लै लै बाम्मणा दच्छणा।
ब्राह्मण : *नी मैं राजी नी जजमानणिये*
मेरा चौंका होइया सुहाया
ऐ दे दे दच्छणा।

ब्राह्मण की इस स्वीकारोक्ति पर अपनी 'सरीकणी' को उसके लड़-बाँध देना, उन स्त्रियों का अपमान नहीं तो और क्या है? वे उसे गीत के माध्यम से फटकारती हैं। फटकार से भला उसे क्या प्रयोजन? वह ज्यों ही दक्षिणा लेने आगे बढ़ता है, आँगन में चिक्कड़ (कीचड़) होने के कारण फिसल पड़ता है। उसके कुछ मर्म स्थलों पर अच्छी चोट लग जाती है। वे इसी प्रसंग में उसका उपहास करती हुई गाती हैं :–

भलां जी किसे दिआ बाम्मणा
भलां जी आई बैठा साम्मणा।
भलां जी पानी बुड्ढा ठाँगणा
भलां जी तिलकी पिआ अँगणा।
भलां जी चथोई गिआ ठप्पणा
भलां जी चंगी मिल्ली दच्छणा।

अर्थात् यह किसका ब्राह्मण सामने आ बैठा है? आँगन में पानी गिरने से जो कीचड़ हुआ था, उस पर इसका पाँव फिसल गया है। इसे बड़ी अच्छी दक्षिणा मिली है।

दूसरे की बीवी मिलती देखकर ब्राह्मण के मुँह में जो पानी भर आया था अथवा यों कहिए उसने जिस लोलुपता का परिचय दिया था, उसी संदर्भ में उससे उसकी पत्नी की माँग उन नौजवान छोकरों के लिए करती हैं, जो लाहौर से छुट्टी लेकर विवाह में शरीक होने आए हैं :–

बाम्मणा तू खा लै जाम्मणा, बाग दिआँ जाम्मणा सुआद मिट्ठियाँ
अपनी जोरो साँजो देई दे वे, दूरौं लहौरों मुँडिया लेइयाँ छुट्टियाँ

चौं घट चाली मुल्ल लै लै वे, तेरी जोरो दिआँ जाम्मणा सुआद मिट्ठियाँ।

अर्थात् हे ब्राह्मण! तू जामुन खा ले, बाग़ के जामुन बड़े मीठे हैं। अपनी स्त्री हमें दे दे, हमारे गबरू लाहौर से छुट्टी लेकर आए हैं। तू अपनी जोरू का छत्तीस रुपये मूल्य ले ले। तेरी जोरू के जामुन बड़े मीठे हैं।

उक्त गीत की अंतिम कड़ी में 'जोरो दिआँ जाम्मणा' से स्त्रियों का तात्पर्य 'कुच चुंबन' से है। पूरे गीत में ब्राह्मण की स्त्री से रति व्यवहार करने की बात दुहराई गई है। क्या करे बेचारा! परिस्थितिवश उसे यह भी सुनना ही पड़ता है। परिवाद न करके मौन ही रहना पड़ता है। यदि इतना कह कर भी उसे माफ़ कर दिया जाए तो भी ग़नीमत है। अब तो कुड़म की जोरू की भी शामत आ जाती है। उसके चरित्र पर लाँछन लगाती हुई वे उसे हरजाइयों के कटघरे में ला खड़ा करने में देर नहीं लगातीं और न ही हिचकती हैं :–

कुड़मै दियाँ जोरो चार सद्दे, चौदह आए।
दूँ दैं हत्थैं तूंबें, दो मंग खिलाँदे।
दूँ दैं हत्थैं तौए, दो पोलू पकाँदे।
दूँ दें हत्थैं पक्खियाँ, दो बात झलाँदें।
दूँ दैं हत्थैं गड़वे, दो नीर भरैंदे।
दूँ दैं हत्थैं छतियाँ, दो छौंह कराँदे।
दूँ दैं हत्थैं दीवे, दो लौं कराँदे।
दूँ दैं हत्थैं कड़छियाँ, दो दाल परींदे।

स्पष्ट है कि उसने अपने जिन चार यारों को अपने पास आने के लिए बुलाया था, उनके साथ दस और आ गए, जिनमें थे भिखारी, रसोइये, झीर, नाई तथा मशालची आदि। यह गाली बताती है कि वेश्या का कोई धर्म-ईमान नहीं होता। उसके शरीर का सौदा करने तथा अपनी काम पिपासा शांत करने के लिए छोटी-बड़ी सभी जातियों के लिए उसका द्वार सदैव खुला रहता है।

जनेत की गालियाँ : कांगड़ा में ज्यों ही जनेत (बारात) कन्या पक्ष के घर की ओर चलती हुई गोहर (घर के समीप का तंग रास्ता, जहाँ से पशु चलते हैं) में पहुँचती है तो औरतें गाती हैं :–

बज वे शहनरिया, बज चीरे बालिया, बाबल बेड़े बज्ज वे।
जे तुसीं आए बजदे बाजे, अग्गैं तां साड़े उच्चे दरवाजे।
जे तुसीं लाँदिया लौंगाँ दिआँ पुड़ियाँ, अग्गैं तां साड़े सहैराँ दिआँ कुड़ियाँ।
जे तुसीं लाँदियाँ जोरो दियाँ घघरियाँ, अग्गैं तां साड़े उच्चियाँ अटरियाँ।
जे तुसीं लाँदियाँ पित्तलाँ परातीं, अग्गैं तां साड़ियाँ उच्चियाँ जातीं।
जे तुसीं लिआए बजदे नगारे, अग्गैं तां साड़े मुँडे कुआरे।

जिसने लड़की दे दी, उसने अपना सब कुछ दे दिया, ऐसा अकसर कहा जाता है। रहस्य इससे परे है। लड़की दे देने से वह लड़के वालों के सामने सदा के लिए झुक तो गया, पर टूटा नहीं। इसीलिए लड़के वालों से अपनी तुलना करती हुई वे अपने को छोटा या खोटा

नहीं बताती हैं। जनेत की रूप-सज्जा पर भी व्यंग्य करती हुई वे कहती हैं :–

बाजाँ आले आए शहनरिया, बाजाँ दैं हत्थ तोते
छूई हार परोते शहनरिया, छूई हार परोते।
बाजाँ दैं गल़ पाए शहनरिया, बाजाँ दैं गल़ पाए
फुल्लाँ हार परोते शहनरिया, छैलाँ दैं गल़ पाए।

अर्थात् बाजों की स्वर लहरियाँ विकीर्ण करती हुई जनेत आ गई है। इसके गले में छू (कैकटस) के हार डालकर स्वागत किया जा रहा है, क्योंकि इनकी रूप-सज्जा इसी के अनुरूप है। फूलों के हार तो हमें अपने ही छबीलों के गलों में डालने पड़ रहे हैं। ये (बाराती) तो फूलों के हारों के योग्य हैं ही नहीं।

धाम की गालियाँ : पुराने ज़माने में कांगड़ा में बारात कम से कम तीसरे या चौथे दिन लौट जाया करती थी। रिश्ते दूर-दूर हुआ करते थे। थकान उतरने में दो-तीन दिन लग ही जाते थे। अब तो दूसरे ही दिन लौटने का रिवाज हो चला है। धाम (भोजन) खाते समय गालियों के गान का उल्लेख रामचरित मानस में भी मिलता है, जिसका ज़िक्र लेख के आरंभ में किया गया है। कांगड़ा में बारातियों में दोष देखती हुई औरतें उन्हें लूला-लंगड़ा, बहरा, अंधा या बूढ़ा बताकर उनकी निंदा करती हैं। अजब यह है कि इन बातों का कोई बुरा नहीं मनाता। षट् व्यंजनों का रस रसना लेती है तो गालियों में जो विशेष रस प्रवाहित होता है, उससे कान तृप्त होते हैं :–

चँदे लसमस लाई, तारा कोई-कोई ऐ।
जँज बुढेयाँ दी आई, गबरू कोई-कोई ऐ।
चँदे लसमस लाई, तारा कोई-कोई ऐ।
जँज काणियाँ दी आई, सुरिआखा कोई-कोई ऐ।
जँज बोल़ियाँ दी आई, सुणदा कोई-कोई ऐ।
जँज जल्लियाँ दी आई, कुंदा कोई-कोई ऐ।

और फिर जनेत थोड़ी क्यों आई है? यह गीत उस समय विशेष बल देकर गाया जाता हे, जब जनेत ज़रूरत से ज़्यादा आ गई हो :–

हम लाज गे हम लाज गे जी, जणेतिऐ थोड़े आए।
हम समझ गे हम समझ गे जी, गबरू भरती होए।
हम समझ गे हम समझ गे जी, लाड़े दैं सिर लोई।
हम समझ गे हम समझ गे जी, सरीक न आया कोई।

धाम के लिए बैठी जनेत को जब पत्तल, पानी या अन्य दाल-सब्ज़ियाँ परोसी जाती हैं, तब परोसने वाले की ओर शब्द संकेत करके उसकी कुमारावस्था को ज़ाहिर करती हुई औरतें बारातियों से उसके लिए लड़की की माँग करती हुई गाती हैं :–

पत्तल देणे आल़ा मुँडा कुआरा, इजो दिन्निओं भैणा दा सहारा।
पाणी देणे आल़ा मुँडा कुआरा, इजो दिन्निओं धीया दा सहारा।

जनेत के पश्चात् अब बारी आती है दूल्हे राजा की। ज्यों ही जनेत खाना खाने लगती

है, विशेष कर चंचल तथा शोख बालाएँ गा उठती हैं :–

छोटी-छोटी बुरकी तू पा मेरे जीजा
सौहरे दी सरम तू कर वे।
सौहरे दी सरम मैं कियाँ कराँ साली
भुक्ख लग्गी बड़ी भारी।

जब गीत की इस कड़ी को सब रिश्तेदारों के संबंधों के परिप्रेक्ष्य में दोहराया जाता है, तब बेचारा दूल्हा थोड़ा-सा ही खाकर, खाना बंद कर बैठता है। अपने व्यंजनों की प्रशंसा तथा बारातियों की लालसा की ओर संकेत करते हुए दूल्हे पर एक मुक़दमा दायर हो जाने की नौबत भी आ जाती है, जिसके ख़र्च के लिए बेचारे दूल्हे राजा की माँ को भी दाव पर लगा चित्रित किया जाता है। देखिए मुद्दई की केवल चवन्नी ही ख़र्च होती है और वह भी खोटी और मुद्दालेह को इतना बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है। वह भी किसका, एक कलछी के टूट जाने का :–

छोलियाँ दी दाल करारी, मिर्चा तिरमिरियाँ
खा गेई खिलकत सारी, छोलियाँ दी दाल करारी
जीजा खा के होर मँगदा, कड़छी मुँह बिच मारी
कड़छी दा खून हो गिया, चलिया मुकदमा भारी
जीजे दी माँ लग गेई, साड़ी खोटी चुअन्नी सारी।

अगर गालियों की मूसलधार वर्षा यहीं तक सीमित रहे, तो ग़नीमत है। औरतें तो लगे हाथ उसे प्रतीक मानकर पूरी बारात को पेटू तथा भूखा करार देती हैं। ऐसे भूखे कि पत्तलें भी न छोड़ सके, चाट-चाट कर छेद करते भी न शरमाए :–

अँगण साड़े कूँजी, पेई कूँजी ऐ।
जीजे भत्त बी खादा, दाल बी खादी, पत्तल लेई पूँजी, पेई पूँजी ऐ।
अँगण साड़े टींडा पेई टींडा ऐ, पत्तली कीत्ता छींडा, पेई छींडा ऐ।
जनेती पत्तली लइयाँ चट्टी, पेई चट्टी ऐ।

जनेत खाकर हटी कि डूमणे ने नगाड़े पर चोट दी। नगाड़े की दुड़ु-दुड़ु के साथ ही सारे जनेतिये अपने-अपने गिलास हाथ में लिए उठ खड़े हुए और उठते ही औरतों ने उनकी बोदियों (चोटियों) के साथ पेड़ू (अनाज रखने का बाँस का बना हुआ बड़ा बर्तन) बाँध दिए :–

खाई उठे बचारे, क्या बोलिए
खादा पीता रेड़ू, क्या बोलिए
जणेतियाँ दिआँ बोदिया बनेआ पेड़ू, क्या बोलिए
खादा पीता थोड़ा, क्या बोलिए
चुतड़े लड़िया मकोड़ा क्या बोलिए?

जीजे की गालियाँ : विवाहों में इन गीतों की बाण वर्षा बेचारे दूल्हे राजा पर ही अधिक होती है। शायद इसका अभिप्राय है कि अब तो ज़िंदगी भर खरी-खोटी सुननी पड़ेगी और समय तथा

परिस्थितियों से समझौता करना पड़ेगा, अन्यथा घुटना पड़ेगा। बड़े मज़े की बात है कि विवाह के अवसर पर छोटी-बड़ी मटियारियाँ (युवतियाँ) तथा जबरियाँ (बूढ़ियाँ) सब की सब जीजे की सालियाँ बन जाती हैं। जीजा राजा है कि मस्ती-मस्ती में शायद यह विचार लेता है :–

सालियाँ दीआँ गाली़ं, हन दुद्दे घीउए दिआँ नाली़ं।

यहाँ कुछ गालियाँ उद्धृत हैं, जो इस राजा को सुननी पड़ती हैं, निर्धन हो-होकर :–

1. *मेरे हत्थ आ गेई नीं कौल कैंच दी डब्बी*
   जीजे दिआ अम्मा खसम कीते 1, 2, 3, 4, 5 . . . छब्बी
   मेरे हत्थ आ गेई नीं कौल कैंच दी डब्बी।
2. *जीजा! उठी नैं पैंटा जो झाड़, पैंटा च धूँड बड़ेआ।*
   इक्क नीं बड़ेआ, दो नी बड़े, बड़े पँच सत्त चार।
   रौला मत पा अड़िए, ऐ माऊ मेरिया दे यार।
   कुल पँज सत्त चार, होइया तिसाँ नै प्यार।
3. *जीजा जुड़ी गिया मँजे नाल, मँजा तेरा क्या लगदा?*
   सालिए! ऐ मेरी माऊ दा यार मेरा पियो लगदा।
4. *लैहरे-लैहरे मुँगरे पठाणकोटों आए न।*
   जीजा पुच्छै बोबो ते, परौणे कुत्तु ते आए न।
   चुप कर बसरा बे ऐ तेरे पियो आए न
   तेत्ते डरदिया, सुत्थणी हेठ लुकाए न।
   हल्ला न कर मोइया, परौणा बुलाए दा ऐ
   इक्की दुई दा बी नी चौटाँ (चोसठ) दा तू जाया ऐ।
5. *कैं ता लौंग लैचियाँ दे, कैं ता ताइयाँ चाचियाँ दे।*
   कैं ता लौंग सपारी दे, कैं ता भैण कुआरी दे।
6. *हरिए मूलिए नी तेरे लैहरे-लैहरे पत्त।*
   जीजे दा पियो जोरो दिये कन्ने जोड़ै हत्थ।
   इसा जो लेई जानयो जी, दिल गिआ है अक्क।
7. *मकोड़िया वे तेरी जात बुरी, खसम खाणियाँ वे तेरी जात बुरी।*
   जीजे दिआ अम्मा सिआई सुत्थण, मकोड़ै कीती सुक्खण मकोड़िया।
8. *आजा वे जीजा साड़े कारखाने, तिज्जो लोहे दा कम्म सिखा देइए।*
   तेरी माई दी रेल गड्डी, तेरे बाओ दा इंज्जण बणा देइए।
   तैनू सिमले-दिल्लिया, बंबई दी सैल करा देइए।

सिरगुँदी की गालियाँ : लौआँ लेने (लग्न) के बाद जब दूल्हे राजा को सालियों तथा औरतों की भीड़ के बीच बैठकर लोकाचार करने पड़ते हैं तो उसे सालियाँ ज़रूरत से ज़्यादा तंग करती हैं। विदा से थोड़ी देर पहले की सिरगुँदी में तो बेचारे की जी भर कर रैगिंग की जाती है। छंद पाने के विनय को जब वह मौन में पी जाता है, तब उसे स्वयं छंद कह कर बतलाती

हुई गाती हैं :–

छंद पैयाँ जीजा सालियाँ मैं
छंद परागे आइए जाइए, छंदे अग्गै तोता
जीजे दिआ माऊ ख़सम कीता साड़े पिंडे दा खोता।
छंद पैयाँ जीजा सालियाँ मैं
छंद परागे आइए जाइए, छंदे अग्गै कूड़ा
जीजे दिआ भैणा खसम कीता साड़े पिंडे दा चूड़ा
छंद पैयाँ जीजा सालियाँ मैं।

और वे तब तक ऐसी ही कटूक्तियाँ सुनाती हैं, जब तक जीजा जी के श्रीमुख से किसी छंद के रूप में अमृत रूपी शब्दों को सुनकर अपने कानों को तृप्त नहीं कर लेतीं।

भड़ूआ की गालियाँ : 'भड़ूआ' का अर्थ है विवाह का अंतिम दिन। दुलहन को विवाह कर जब ले जाते हैं तो अंतिम धाम में उसे अपने गोत्र में मिलाया जाता है। इस अवसर पर सास, बहू के मुँह में तथा बहू सास के मुँह में भात के कौर डालती है। ज्यों ही सास बहू के मुँह में हल्का सा कौर वात्सल्य भाव से डालती है, 'सरीकणियाँ' गा उठती हैं :–

अँगणे साड़े बैहजा कुड़मा दिए बेटिए
साड़ी पत्तल लै-लै कुड़मा दिए बेटिए
साड़ा खाणा खालै कुड़मा दिए बेटिए
साड़े गोते (गोत्र) रलजा (मिलना) कुड़मा दिए बेटिए।
तूं सत्ता दिना दी भुक्खी, गराइयाँ लै-लै नीं
तू माऊ नै घल्ली भुक्खी, गराइयाँ लै-लै नीं।
अज्जे दी नी भुक्खी, कल्ले दी नी भुक्खी
माऊ ढिडे दी ई भुक्खी, गराइयाँ लै-लै नीं।

और नवेली छम-छम रोने लगती है। उसकी बडियारी, कजरारी आँखों से आँसू लुढ़क-लुढ़क पड़ते हैं, टप-टप-टप!

रसोइये की गालियाँ : विवाह गाने-बजाने तथा रोने-हँसने के साथ-साथ खाने-पीने के लिए भी होता है। यह दूसरी बात है कि प्रणय सूत्र में बँधने वालों को उपवास भी रखना पड़े, मात्र दूध पी कर गुज़ारा करना पड़े और लाड़े या लाड़ी के बहाने कई लोग दूध भी पीएँ और सब कुछ खाएँ भी, लेकिन यदि रसोई बिगड़ गई तो सारा मज़ा किरकिरा। रसोइये थोड़े लालची होते हैं, विविध खाद्यान्नों के लिए अच्छी से अच्छी सामग्री मँगवा लेते हैं और वह भी ज़रूरत से ज़्यादा। उपयोग में उतनी भी नहीं लाते, जितनी की आवश्यकता होती है, हाँ फक्के मारने में कोई कसर नहीं उठाते। अस्तु, अपव्यय करना उनकी मनोवृत्ति ही होती है। इसी को लक्ष्य करके औरतें गाती हैं :–

ऐडी देर क्यों लाई वे रसोइया लालचिया
दूरे ताईं न्यूंदराँ गेइयाँ वे रसोइया लालचिया।

अर्थात् रसोइये ने भोजन तैयार करने में इतना अधिक समय क्यों लगाया है? न्योते तो दूर-दूर तक गए हैं। देर लगाने की सज़ा सुनिएँ :–

असैं एहो रसोइया कडाइयो देणा
असैं होर रसोइया मुगाइयो लैणा
रसोइया लालचिया।
असैं बाबुलै दैं कन्ने पाइयो देणा
असैं ऐहो रसोइया कडाइयो देणा
रसोइया लालचिया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोक समाज में मनोरंजन के लिए विशेष उत्सवों पर ही गालियों का प्रयोग होता है। ऐसी गालियों को गाकर ऐसे वातावरण का निबंधन कदापि नहीं किया जाता, जिससे वैमनस्य उत्पन्न होता हो। ये गालियाँ तो ऐसा महाकाव्य है, जिसका अंगीरस हास्य है। इन गालियों में लोक कवयित्रियों ने छंद योजना में लय तथा अंत्यानुप्रास का विशेष ध्यान रखा है। वर्ण संगति, वर्ण मैत्री का जैसा विधान इन गीतों में मिलता है, वैसा यदि नागर साहित्य में मिला है तो आश्चर्य नहीं। लोक कवयित्रियों ने यद्यपि न तो काव्य शास्त्र का अध्ययन किया था और न ही उन्हें इसके नाम का ही परिचय था, पर इसे नहीं नकारा जा सकता कि उनकी कृतियों में लक्षणा, व्यंजना, ध्वनि अथवा शब्द एवं अर्थालंकारों के भेद-प्रभेद नहीं पाए जाते। उनमें काव्य की 'आत्मा', 'रस', 'अलंकार', 'रीति', 'ध्वनि' अथवा 'वक्रोक्ति' है ही नहीं। है, सब कुछ है ज़रा गहरे पानी पैठ कर तो देखिए। हाँ, इतना ज़रूर कहा जाएगा कि यदि इन कवयित्री-मानस में कहीं काव्यांग कोई था, तो था मात्र छंद का तुक। तुकांत गीत रचना अपना सानी नहीं रखती है। विचार एवं कल्पना के जिन पंखों पर आरूढ़ होकर ये गीत स्वरलहरियाँ विकीर्ण करने के लिए रचे गए हैं, उन पर कहीं-कहीं तो उस नागर साहित्य को बारने को जी चाहता है, जिससे सूर प्रभृति कवियों का काव्यत्व भरा पड़ा है।

उक्त गाली प्रधान लोक काव्यांशों में व्यंग्योक्तियों तथा हास्योक्तियों के माध्यम से उस स्नेह-सरिता के लिए पथ का निर्माण किया गया है, जो हमारे सांस्कृतिक वैभव को सदियों से मौखिक धरातल पर जीवित रखे हुए है। हिमाचल की इस सांस्कृतिक संपदा की खोज यदि अन्य ज़िलों तथा जनपदों के परिप्रेक्ष्य में भी की जाए तो अनुसंधित्सुओं के लिए शोध के ऐसे मार्ग का सूत्रपात होगा, जिससे बहुमुखी जीवन मूल्यों का विनिमय सरलता से हो सकेगा।

हिमाचल प्रदेश के सम्मानित साहित्यकार

(सोमसी पत्रिका के अंक जनवरी, 1976 से उद्धृत)

रलि़ विवाह : एक बाल अनुष्ठान

● डॉ. गौतम शर्मा 'व्यथित'

हिमाचली जनजीवन विक्रमी संवत् के अनुरूप परंपरित पंचांग की तिथि, वार, नक्षत्र, संक्रांति-मासांत आदि पर आधारित है। इस संवत् का प्रथम मास चैत्र और इसी मास में नवसंवत्सर का आरंभ नौरात्र पूजा से शुरू होता है। नवसंवत्सर के मंगल गायन का आरंभ चैत्र संक्रांति के उषाकाल में ढोलरू गायन व रलि़ पूजा गायन से शुरू होता है। इस लोक गायन परंपरा से महीना भर घर-आँगन मंगल गीतों-गीतियों से अनुगूँजित वसंतऋतु के रंग-रस में नाद-ताल व थिरकन भरता है। ढोलरू गायन परंपरा के वाहक 'मंगलमुखी' गायक कहलाते हैं, जो बाँस के भांडे-बर्तन बनाकर लोक के सामाजिक-सांस्कृतिक व कृषि कार्यों की ज़रूरत की आपूर्ति करते सुर-संगीत व वादन कला परंपरा को भी मांगलिक कार्यों की शोभा बनाते हैं। 'रलि़ पूजन' या 'रलि़याँ रखना-पूजना' कुँवारी कन्याओं के अविवाहित जीवन की सामाजिक-सांस्कृतिक रीत मानकर सामाजिक महत्त्व संबंधी मानसिक ज़रूरत समझी जाती रही है।

लोक मत

'रलि़ पूजन' का संबंध शिव-पार्वती के पौराणिक आख्यानों से भी जोड़कर देखा गया है। समस्त हिमाचली जनजीवन शिव पूजन में आस्था-विश्वास रखता है। इस भूमि को शिवभूमि मानता है। शिवालिक धरती तो इस भाव का प्रत्यक्ष प्रमाण है। लोक नारी उस आख्यान से मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित है कि 'सती को अनेक जन्म लेकर शिव की प्राप्ति हुई और वह हर जन्म में शिव महादेव को मन-मस्तिष्क व हृदय में धारण कर उनकी भक्ति में तल्लीन रही।' यह कथानक लोक नारी को विश्वस्त करता है कि यदि पूर्ण निष्ठाभाव से इच्छित वर की आराधना की जाए तो मनवांछित वर की प्राप्ति अवश्य होती है। संभवतया इसी मनोभाव ने माँ के हृदय को विश्वस्त किया होगा कि वह अपनी पुत्री से रलि़-शंकर की आनुष्ठानिक पूजा-भक्ति करवाकर उनका विधिवत् विवाह करवाकर जल प्रवाह करवाए, ताकि उसे अच्छा वर प्राप्त हो।

इसी प्रसंग में एक लोक कथा भी प्रचलित है। 'एक समय की बात है। एक ब्राह्मण ने अपनी युवा कन्या 'रलि़' का विवाह उससे कम आयु वाले वर से कर दिया। कन्या ने विरोध भी किया, परंतु माता-पिता की इच्छा और वचन के आगे उसे झुकना पड़ा। तिथि-नक्षत्र अनुसार उसका विवाह हो गया। माता-पिता ने उसे विदा कर पति के घर भेज दिया। रीत के अनुसार

उसका छोटा भाई उसे छोड़ने (पचेकिया) साथ गया। मार्ग में नदी पड़ती थी। रलि़ के मानसिक द्वन्द्व ने कुछ निर्णय लिया और डोली को रुकवा दिया। भाई को निकट बुलाकर कुछ समझाकर अथवा आवेग में बहती नदी में छलांग लगा दी। उसे बचाने हेतु उसके भाई 'बस्तु' ने भी वैसा ही किया। रलि़ के पति ने जब यह दृश्य देखा तो वह भी उसे बचाने हेतु नदी में कूद पड़ा। तीनों नदी के तेज़ प्रवाह में बह गए।' रलि़ से जुड़ी यह लोक कथा रलि़ पूजन के मास में प्रायः हर समतली क्षेत्र में सुनी जाती है, कथानक के कम-अधिक परिवर्तन के साथ। कथा कोई घटना हो अथवा जनश्रुति, बेमेल विवाह के प्रति या विरोध में यह कथा हर माँ-बाप से कुछ तो कहती है। यही इसकी सार्थकता है।

रलि़ विवाह का आनुष्ठानिक रूप

रलि़ विवाह के दो पक्ष हैं। पहला– 'रलि़ का आनुष्ठानिक पूजन-विधान' और दूसरा– 'रलि़ विवाह या रलि़-शंकर विवाह।' जैसा कि आरंभ में कहा गया है कि विक्रमी संवत् के चैत्रमास की संक्रांति को रलि़ पूजन की स्थापना कुँवारी कन्याओं द्वारा की जाती है, जिसमें पूजनकर्ता कन्या के माता-पिता व अड़ोस-पड़ोस सभी बड़े चाव व श्रद्धा से जुड़ते सहयोग देते हैं। इस पूजन की मानसिक तैयारी फाल्गुन मास में ही कन्या-मानस में शुरू हो जाती है। कर्ता कन्या अपने परिवेश की सम-आयु वाली लड़कियों से मेल-जोल बढ़ाकर इस पूजन हेतु उन्हें तैयार करती है। फाल्गुन मासांत को यह तय हो जाता है कि घर के किस कमरे में कहाँ, किस दिशा में रलि़ पूजन स्थापना होगी। प्रातः कितने बजे एकत्र होकर इस विधान को शुरू किया जाएगा। किस समय क्या रीत होगी और क्या प्रक्रिया और उससे जुड़ा गीत क्या होगा? इस सबके लिए पड़ोस या घर की वयस्क-वृद्ध स्त्रियाँ भी उनका मार्गदर्शन करती हैं। इस सारे विधान को शुरू करने हेतु पूजन से जुड़ी हर कन्या के मन में बड़ी उत्सुकता, चाव व लगन होती है। लड़कियों के मन में ऐसे चाव और भाव देखकर परिवार में, पड़ोस में हर्षोल्लास का होना स्वाभाविक है। कहीं-कहीं पूर्व रात्रि को रलि़ पूजन गायन का पूर्वाभ्यास भी होता है।

रलि़ पूजन के आरंभ में दैनिक क्रम में जो कार्य व रीतियाँ संपन्न होती हैं, वे इस प्रकार हैं– संक्रांति के दिन कन्याएँ अच्छे-सुच्चे स्थान से मिट्टी लाकर, उसे भिगोकर, मिलाती-गूँथती हैं और त्रिशंकुनुमा प्रतीक मानवाकृतियाँ बनाती हैं, आँखों के लिए कौड़ियाँ लगा देती हैं। घर के एक कमरे में जहाँ पवित्रता बनी रहे, थोड़ा परदा भी हो, वहाँ एक पटड़े को धोकर उसे स्थापित करती हैं। उसी पर माटी की प्रतीक रलि़ मूर्तियों को रख देती हैं। तत्पश्चात् दूर्वा व फूल एकत्र करती हैं तथा छक्कुओं (बाँस के पात्र) में रखती हैं। तदोपरांत एकत्र होकर पणिहांद (बावड़ी) की ओर गाती हुई जाती हैं, वहाँ नहाती-धोती हैं, जल पूजन करती हैं और घर लौटती हैं। घर आने पर रीत गायन करती हैं, रलि़ पूजती हैं, उस पर दूर्वा, फूल तथा बसूंटी (वनस्पति) के पत्ते चढ़ाती हैं और आरती गायन करके प्रसाद बाँटती हैं। सायंकाल पुनः रलि़ गीत गायन व आरती करती हैं। यह पूजन-गायन क्रम इसी विधान से मासांत तक, महीना भर रहता है, जिससे समूचा गाँव, परिवेश, घाटी सुगंधित, सुवासित, स्पंदित, प्रफुल्लित व अनुगुँजित होती रहती है। यह पूजन-गायन धरती लेखन, 'मंदलू' या 'लीखणू' की परंपरा को भी हस्तांतरित

करता है, दिख-सिख परंपरा में।

इस पूजन विधानक्रम से जुड़ा लोक गायन या रलियों के गीत भी परंपरित हैं, जो दूर-पार तक यह संकेत या संदेश देते हैं कि रलि पूजन की कौन सी रीत चल रही है। जैसे, प्रातःकाल जब कन्याएँ उठकर रलि स्थापना मंडप के पास आती हैं तो रलि को जगाने का उपक्रम इस गीत गायन से होता है :–

उठ नि रलिये! सूतड़िए!
तेरी जागण बेला होई अड़िए।
तेरे तोते करदे चुरभुरियाँ
तेरी मैना लैंदी राम दा नाम।
उठ भई शंकरा जाग भलिया
तेरी जागण बेला होई भलिया।
उठ भई बस्तुआ जाग भलिया
तेरी जागण बेला होई भलिया।

तत्पश्चात् निकलती हैं रास्ते पर दूर्वा-फूल चुनने-कठेरने और यह गीत गाती चलती हैं :–

औआ तां मिला मेरिओ सहेलड़ियो!
फुल्लाँ हुँजणा जाणा ऐऽऽ।
होरां तां हुँजियाँ गोदां दो गोदां
रलिया हुँजी छड़ (बाँस पात्र) सारी ऐऽऽ।

द्रुव या दूर्वा इकट्ठा करने लगती हैं तो होठों पर उतरता है यह गीत, जिसमें हास्य-व्यंग्य की मीठी-तीखी सरसता रहती है :–

द्रुवा चुगदिए बकरिए मुईए
हीरा माए हीरा, रिन्हदी खिचड़ी।
उसा न खाए कोई
खाए सैह् रलिया दा बीरनू।

इसी क्रम में रलि पूजन के ये छोटे-छोटे भावपरक लोक गीत, जिनमें व्यंग्य-विनोद रहता है :–

- *इक गिट्टी रलिया, दूई गिट्टी शंकरे*
  तीजी गिट्टी बस्तुए
  बस्तुआ भाईआ चार तेरे
  पँजवाँ बहण पूजण आई
  न्होई-धोई लग्गी रसोई
  मारया डंडा उड़ गई डोई।

- *लाल पखड़ी सफेद पखड़ी*
  कैहदी पखड़ी हँडायो महाराज जी।
  खिन्नुएँ खेलदे देरे जो पुछदी
  कैहदी पखड़ी हँडायो महाराज जी
  पईयाँ दी पखड़ी हँडायो महाराज जी।

- *अड़ुआ, गड़ुआ, गड़ुए दे घरैं रली पजोंदी*
  उच्चा पर्वत, सौणा आया।
  रलिए माए भित्ताँ घुआड़
  कुड़ियाँ खड़ियाँ तेरे द्वार।

अथवा

फुल्लाँ हुँजी मैं जे आई
दित्तिया परौली घुआड़ माए
बाड़िया फुल्ल गुलाबे दा।
दित्ती परौल न जे उघड़े
चढ़ी चबारे आ कुड़े।

जब पणिहांद पूजने मार्ग पर निकलती हैं तो यूँ गाती हैं :–

मैं कने भाबो न्हौणा चलियाँ
कन्ने चलै भरजाई, मेरी भाबो मोर बोले।
मैं कने भाबो फुल्लाँ जो चलियाँ
कन्ने चलै भरजाई, मेरी भाबो मोर बोले।

इसी प्रकार गाती अच्छतां जो, मेवे जो शब्द जोड़ती गीत को बढ़ाती हैं। पणिहांद पर जाकर गाती हैं :–

म्हारे बाबें खुहआ दुआया
म्हारा बापू मली-मली न्हौवे
लाई नकचुब्बी बाहर औए
तुहाड़ें बापुऐं टोहबा दुआया।
तुहाड़ा बापू डरी-डरी न्हौवे
लाई नकचुब्बी डुबी-डुबी जाए।

तत्पश्चात् फूल आदि से भरे छक्कुओं (बाँस पात्र) को पणिहांद में डुबोती गाती हैं :–

छक्कू तरणा लग्गे, तरी-तरी डुबणा लग्गे
तुसाँ मत डुबदे भाईयो! तरी-तरी डुबण लग्गे।
असां अद्धी खांहगे, तुसाँ जो सारी दिंहगे
छक्कू तरणा लग्गे, तरी-तरी डुबणा लग्गे।

इसी के साथ यह गीत स्वर पकड़ता है, जिसमें रलि़ शंकर के पारस्परिक आकर्षण व प्रेम भाव का संकेत मिलता है :–

उआरें बी गंगा जी पारें बी गंगा
मझ सरसुती बगदी ऐऽ
रलि़ सहेली न्होणा लग्गी ऐऽ
संकरे दी नज़र पई ऐऽ
क्या संकरा तिज्जो निंदर प्यारी
क्या रलि़ दिले ते बसारी ऐऽ
न कुड़ियो मिंजो निंदर प्यारी
न रलि़ दिले ते बसारी ऐऽ।

महीना भर चलने वाली इस पूजन परंपरा में सप्ताह के जो सोमवार आते हैं, उस दिन इस पूजन से जुड़ी सारी कन्याएँ व्रत-उपवास रखती हैं। व्रत 'पारने' (अल्पाहार लेने) के लिए वे रलि़ पूजा मंडप के सामने बैठकर जब भोजन करती हैं तो गाती हैं :–

अधड़ा-खदड़ा, अधड़े थालें
होर रिहा सैः रलि़या दे नाएँ।

इसी के साथ उनका व्रत-मौन खुलता है। तत्पश्चात् वे समूह रूप में एक छाबड़ी-छक्कू में गणेश की मूर्ति रखकर फूल-दूर्वा, धूप से सजाकर 'मोडली' गाने निकलती हैं। जब किसी घर-आँगन में जाकर 'मोडली' गाती हैं तो घरगृहस्थ उन्हें 'मोडली' के दर्शन करके सुहागी चढ़ाते हैं, चावल देते हैं, जिन्हें वे रलि़ के विवाह पर प्रयोग करती हैं। 'मोडली' के बोल हैं :–

मोडली आईनी सईयो! मोड़ी-तोड़ी लिआई
कौण सहेली, मेरीआ मोडलिया देखण आई?
जायाँ भई बस्तुआ तू दिल्ली शहर जायाँ
दिल्लिया ते आणयाँ तू इक डबक डब्बा चूड़ा
डबक डब्बा चूड़ा सैः रलि़या कैत लैणा?
डबक-डब्बा चूड़ा रलि़या ब्याहे जो लैणा। आदि

चैत्र मास के पंद्रह प्रविष्टे के बाद कुड़ियाँ-चिड़ियाँ मिट्टी को छानकर, भिगो-गूँधकर रलि़ शंकर की प्रतीकात्मक मानवाकृतियाँ बनाती-बनवाती और उन्हें धूप में सुखाकर मन चहेते रंगों से रंगकर पूजा स्थल पर रखतीं और उनकी पूजा करती हैं। समर्थवान कांगड़ा की कुम्हार गली में जाकर कुम्हारों द्वारा बनाई-सजाई रलि़यों (जोड़ा) को ख़रीद लाती हैं और उनका विधि-विधान से पूजन व ब्याह करती हैं। बड़ी आकर्षक और सजीव प्रतीत होती हैं ये मृण्मूर्तियाँ। बहला-जमानाबाद का मूर्तिकार कैंठू भी बड़ी सुंदर मृण्मूर्तियाँ बनाता-घढ़ता और चटकीले रंगों द्वारा उन्हें आकर्षक बनाता। ख़ूब बिकती थीं उसकी ये रलि़ मूर्तियाँ। कुछ समय पूर्व एक धार्मिक-सामाजिक उत्सव के रूप में बड़े उल्लास से मनाया जाता था 'रलि़ विवाह'। इस सारे विधान में कुँआरी कन्याएँ जुड़ी होतीं, जो अब शिक्षा पाने स्कूल की दैनिकी से जुड़

गई हैं, सामयिक आवश्यकता के फलस्वरूप, सुविधाओं की उपलब्धता के कारण परिणामतः ये दीर्घकालीन विधान समय के अभाव के कारण रीत मात्र हो रहे हैं। लोक परंपरा और लोकधर्म के निर्वाह में आज भी ये परंपराएँ न्यूनाधिक रूप में प्रचलन में हैं।

रलि-शंकर विवाह और उस पर लोक गायन

रलि (कन्या पक्ष) शंकर (वर पक्ष) का विवाह दो समूहों में दो घरों में संपन्न होता है। इस पूजन से जुड़ी कन्याएँ दो टोलियों में बँट जाती हैं। यह पूर्व तय रहता है कि अमुक-अमुक लड़कियाँ रलि के विवाह संबंधी लगचार करेंगी और अमुक टोली शंकर संबंधी लोकाचार निभाएँगी, तदानुरूप व्यवस्था करेंगी। मासांत के दिन रलि के घर बड़ी चहल-पहल और उत्सुकता होती है, उसी तरह जैसे वास्तविक रूप में लड़की के विवाह पर उस घर में देखी जाती है। समूहत, शांति हवन, बारात आगमन व स्वागत की तैयारी, लग्न वेदिका, दाज-दान, भात न्योतना तथा विदाई रस्म की पूरी तैयारी होती है। इसी क्रम में दूसरे पड़ोसी घर में शंकर की बारात चढ़ने से पूर्व विवाह की रस्में समूहत, सांद, सेहराबंदी, बारात का चढ़ना आदि सारी रस्में संक्षेप में बड़ी उत्सुकता और चाव से की जाती हैं। अड़ोस-पड़ोस भी न्योता जाता है, सगे-संबंधी भी आते हैं। एक पूरा सजीव वातावरण बनता है लड़की के विवाह का। शहनाई-नगाड़ा या आधुनिक बाजे भी बजते हैं। नृत्य-गान भी होता है। रलि विवाह के अवसर पर रीतियों के अनुसार वही गीत गायन होता है, जो सामाजिक रूप में किसी लड़की व लड़के (वर-वधू) के घर होता है। यथा :—

उबटन का गीत :—

बाएवा कि बुटणा चौलाँ दा, बाएवा
मलैंदियाँ दो जणियाँ, बाएवा।

तेल डालती हैं तो :—

ठणकेआँ सुन्न कटोरड़िए कुन्हीं पाया तेल वेऽ
ठणकेआँ सुन्न कटोरड़िए, बौऐं पाया तेल वेऽ।

तत्पश्चात् आँगन में चौकी रखकर रलि को स्नान कराते समय झमाकड़ा भी नाचती हैं कुड़ियाँ व स्त्रियाँ :—

झमाकड़ा वे, झमाकड़ा बोलदा नचणे जो
नचाणे जो, नी बस्सणे जो, नी रहणे जो
झमाकड़ा वेऽऽ।

तत्पश्चात् गाती हैं :—

गरजेआ ना थो, बरसेआ ना थो
अँगणे चिक्कड़, किआँ होया ऐऽऽ।

इसी प्रसंग में दरेक (वृक्ष) पूजन को भी जाती हैं कन्याएँ और मार्ग में पसरता है दरेक पूजा गीत।

इसी प्रकार की रीतियों के साथ ऐसा ही लोक गायन शंकर के घर पर भी होता है।

शंकर की बारात भी उसी तामझाम से चढ़ती है, जैसे कि वास्तविक विवाह में। लग्न के समय जो लोकप्रिय गीत गाया जाता है, उसके बोल हैं :–

बाहर आ मेरी स्याम सुंदरी
काहन लगना जो आया ऐ।
मैं किआँ औआँ मेरे आप स्वामी
बौए ते सरमानियाँऽऽ।

और बूढ़ी स्त्रियों के होठों पर उतरता है यह गीत :–

हिंचले राजे नैं कन्या जे जाई
सद्दे ब्राह्मण रास गणाई।
इस म्हारिया कन्या जो इस म्हारिया गौरजाँ जो
खरा वर चाहिए, छैल़ वर चाहिए।
सुणा जी प्रोहता जी, जोड़ी वर चाहिए राम।

गंगा तां जमना दा न्हौण सँजोया
कुगुऐं केसरैं पीवल कीती राम।
सूरज चंद्र मुगटैं जड़ाए
भ्याणू तारा सद्दी लाया राम।
सौ सठ देवते जानिया चलाए
सदासिब भ्याहणा आए राम।

ढाका दा घघरा ढाका बन्हाया
सरे दा सलुआ सरें ढुआया।
गौरजाँ दा रूप सजाया-स्याम
शिव-गौरजाँ दा ब्याह वो रचाया।

इसी अवसर पर वर पक्ष की ओर से यह गीत भी गाया जाता है, जिसमें हास्य-व्यंग्य की तीखी-मीठी हल्की चुभती चुटकियाँ भी मिलती हैं :–

चला नि मेरियो, सहेलड़ियो! भाबो देखण जाणा
भाबो दा क्या देखणा, नौ सौ घोड़ा कन्ने
चला नि मेरिया सहेलड़ियो! भाबो देखण जाणा।
भाबो दा क्या देखणा, नौ सौ गिलड़ कन्ने
भाबो दा क्या देखणा, नौ सौ बिल्ला कन्ने
भाबो दा क्या देखणा, नौ सौ जफ्फा कन्ने
भाबो दा क्या देखणा, नौ सौ लंगड़ा कन्ने।

कन्या पक्ष की ओर से उभरता यह गीत सारे माहौल को पुत्री बिछोह की संवेदना से छूता चला जाता है :–

खारे दित्ते बदलाई धीए। हुण होई पराई।

तत्पश्चात् निभाई जाती है 'कलीरे' (वधू के हाथ में बँधा कौड़ियों, गरी का हार) डालने की रस्म और फिर राजदान, जो महीना भर रलि़ पूजन में चढ़ाया एकत्रित फूल आदि धन रूप होता है। इसी के साथ रात्रि रस्में पूरी होती हैं।

संक्रांति के दिन रलि़-शंकर को डोलों में बिठाकर विदाई दी जाती। जिन घरों में ऐसी व्यवस्था न हो, वहाँ दोनों पक्षों की कन्याएँ रलि़-शंकर मूर्तियों को गोदी में उठाए विदा रस्म को पूरा करती हैं। इस समय वही गीत गूँजता है :–

तेरयाँ महलाँ दे अंदर वो बापू
मेरा डोला़ अड़या।
तेरे डोले़ छड़ाई दिंहगे वोऽ
धीए घर जा अपणे।

बड़ा हृदय विदारक होता है यह दृश्य, जिसकी यात्रा नदी तटों तक होती है। नदी तट पर जाकर लड़कियाँ इन्हें जल में प्रवाहित करती हैं। साथ गया उसका भाई (बस्तु) जलधारा में कूदता, उसे ढूँढता है। इसी क्रम में शंकर को भी जल-प्रवाह में छोड़ दिया जाता है और कन्याएँ रोंआसी स्वरों में गाती हैं :–

रोआदिया पैड़ियाँ नकचुबड़ियाँ-नकचुबड़ियाँ
रली़ सैः भैण डुब्बी गई ऐऽऽ
लायाँ नि भाऊआ बस्तुआ।
नकचुबड़ियाँ-नकचुबड़ियाँ
रलि़या भैणा, कढी लई औयाँऽऽ।

इस सारे उपक्रम से सजीव होती है वह रलि़ की कथा, जो लोक में आज भी व्याप्त है, परंपरित है। ऐसे दृश्य देखकर रलि़ विवाह एक कुड़ियों का खेल या नाटक नहीं लगता, बल्कि जीवन के सरोकारों से जुड़ी वास्तविकता का पूर्वाभ्यास महसूस होता है, जो एक माँ अपनी पुत्री को इस विधान से देने का प्रयास करती है, उन संस्कारों और दायित्वों को बाँटती है, जिन्हें वह निभाती है, क्योंकि हर लड़की को जीवन में बहू और फिर माँ बनना होता है। बेटी माँ के दायित्व को निभाने की सामर्थ्य रखे, यह हर माँ-बाप की इच्छा होती है। संभवतया उसी का पूर्वाभ्यास है 'रलि़ विवाह' परंपरा।

राजमंदिर,
नेरटी (रैत), ज़िला कांगड़ा,
हिमाचल प्रदेश-176208

चंबा रूमाल में विवाहोत्सव की अभिव्यक्ति

● विजय शर्मा

इंद्रधनुषी रंगों के रेशमी धागों से मलमल के कपड़े पर हुई कशीदाकारी का एक अद्भुत शिल्प चंबा में विकसित हुआ, जिसे हम 'चंबा रूमाल' के नाम से जानते हैं। अठारहवीं शताब्दी में जब पहाड़ी चित्रकला अपने उत्तुंग शिखर पर पहुँच चुकी थी, उसी काल में चित्रकारी से अनुप्राणित शिल्प विधाएँ भी फलने-फूलने लगीं। काष्ठ फलक उत्कीर्ण और चंबा रूमाल का हस्तशिल्प इस तथ्य को सत्यापित करते हैं।

रेशमी धागों से कशीदाकारी की परंपरा पंजाब में 'फुलकारी' के नाम से प्रसिद्ध है। 'फुलकारी' की कशीदाकारी को लोक शिल्प के तहत स्वीकार किया जाता है, क्योंकि इस शिल्प में बेल-बूटे, बाग़ और ज्यामितीय अलंकरण बनाए जाने की परंपरा रही है। चंबा रूमाल में जिस प्रकार दोरुखा टाँके के उपयोग से आकृति अंकन में वैचित्र्य उत्पन्न होता है, ऐसी कार्य कौशलता भारतीय कसीदा की परंपरा में अन्यत्र देखने को नहीं मिलती।

उत्तर पश्चिमी हिमालय की पहाड़ी रियासतों विशेषकर चंबा, कांगड़ा, मंडी और बसोहली में भी कशीदाकारी की परंपरा रही, किंतु चंबा नगर में दोरुखा कसीदा का दौर दीर्घकाल तक अनवरत चलता रहा, इस कारण इस शिल्प की जीवंतता को देखते हुए इसे 'चंबा रूमाल' की संज्ञा दी गई। चंबयाली समाज में विवाह में वर तथा वधू को भेंटस्वरूप रूमाल दिए जाने की एक सामाजिक परंपरा बन गई थी। इसी कारण चंबा रूमाल शिल्प की सुदीर्घ परंपरा की निरंतरता बनी रही।

वास्तव में चंबा रूमाल को महिलाओं का हस्तशिल्प कहा जा सकता है, क्योंकि प्रायः कुलीन घरों की महिलाएँ ही फ़ालतू समय में रूमाल बनाया करती थीं। रूमाल की कशीदाकारी से पूर्व चित्रकार डिज़ाइन का रेखांकन तैयार करता था। चित्रकार और महिला शिल्पी के योग से चित्रण और कशीदाकारी को सुंदर युगलबंदी कहा जा सकता है। चित्रकार द्वारा तैयार रेखांकन की उत्कृष्टता पर चंबा रूमाल की गुणवत्ता निर्भर रहती है।

चंबा में विवाह के अवसर पर वर और वधू को भेंट में चंबा रूमाल देने की परंपरा थी। विशेष रूप से वधू को दहेज में दी जाने वाली वस्तुओं में चंबा रूमाल भी शुमार होते थे। विवाह में 'तमोल' (शगुन के रूप में दिए जाने वाले पैसे, मेवे आदि) को थाली में चंबा रूमाल से ढाँप कर देने का रिवाज था। महिलाएँ बड़े मनोयोग से बनाए रूमालों को अपने क़रीब के

संबंधियों को भेंट करती थीं, जिसे वधू बड़ी हिफ़ाज़त से संभाल कर रखती थी।

प्रायः चंबा रूमाल में रासमंडल के विषय को प्रमुखता दी गई है। राधा-कृष्ण के प्रणय लीला के विविध प्रसंग रूमाल में समाहित होते हैं। रुक्मिणी और कृष्ण के विवाह दृश्य भी रूमालों का महत्त्वपूर्ण विषय रहा है। शायद इसी कारण से रूमाल को 'विवाह' के नाम से कहने की परंपरा भी रही।

विवाहोत्सव के दृश्यों की अभिव्यक्ति वाले रूमाल विभिन्न संग्रहालयों में संग्रहीत हैं। ऐसे रूमालों में प्रायः एक वेदिका के नीचे कृष्ण को वर के रूप में और रुक्मिणी को वधू के स्थान पर दर्शाया गया है। वेदिका पिरामिड आकार में लकड़ी का अस्थायी ढाँचा होता है, जिस पर काष्ठ निर्मित बैठे हुए तोतों की पंक्ति दृष्टिगोचर होती है। तोता कामदेव का वाहन है। चंबा में विवाह की वेदी के साथ एक देहरा दीवार पर चित्रित करने की परंपरा है, जिसके भीतर रति और कामदेव की आकृतियाँ अंकित की जाती हैं।

विवाह के दृश्य वाले रूमालों में ब्रह्मा को प्रज्वलित हवन के पास पुरोहित के रूप में बैठा दिखाया जाता है। ब्रह्मा शास्त्रोक्त ढंग से मंत्रोच्चारण के साथ पौरोहित्य कार्य में व्यस्त दिखाई पड़ते हैं। शिव, गणेश, इंद्र, विष्णु और अन्य देवताओं की आकृतियाँ भी रूमाल में उकेरी जाती हैं। सूर्य और चंद्र की आकृतियाँ रूमाल के ऊपरी भाग में बनाई जाती हैं। विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों, जैसे– रणसिंगा, करनाल, शहनाई, ढोल, नगाड़ा और डफ आदि बजाते स्त्री-पुरुषों की आकृतियों से रूमाल की भराई की जाती है। दैनिक उपयोग की वस्तुओं गागर, पिटारे, चारपाई, बर्तन आदि को भी विवाह विषयक रूमालों में दर्शाया गया है। विवाह के अवसर पर ढोलक की थाप पर मंगलाचार गाती हुई 'गीतवारनों' (दक्ष गायिकाएँ) के समूह और बाराती गण की आकृतियों से रूमाल अधिक प्रभावोत्पादक बन पड़ते हैं।

वरिष्ठ चित्रकार,
भूरिसिंह संग्रहालय,
चंबा, हिमाचल प्रदेश

हिमाचल कला संस्कृति भाषा अकादमी, शिमला-171001

उपलब्ध प्रकाशन

क्रम	पुस्तक का नाम		मूल्य
1.	किन्नौर : जीवन और संस्कृति (पेपर बैक/सजिल्द)	सं. डॉ. तुलसी रमण	125/225
2.	मंडी देव मिलन	सं. सुदर्शन वशिष्ठ	50.00
3.	मणिमहेश यात्रा	सं. डॉ. तुलसी रमण	80.00
4.	कुल्लू देव परंपरा (बाहरी सराज)	सं. डॉ. तुलसी रमण	100.00
5.	कुल्लू देव परंपरा (कुल्लू-मनाली)	सं. डॉ. तुलसी रमण	160.00
6.	कुल्लू देव परंपरा (बंजार-सैंज)	सं. डॉ. तुलसी रमण	120.00
7.	लाहुल स्पीति : इतिहास एवं संस्कृति	सं. सुदर्शन वशिष्ठ	110.00
8.	गद्दी जनजाति : लोक संस्कृति	अमर सिंह रणपतिया	110.00
9.	पांगी : लोक संस्कृति एवं कलाएँ	अमर सिंह रणपतिया	110.00
10.	तिब्बत में प्राचीन बौद्ध धर्म का इतिहास	अनु. लुंडुब लामा	200.00
11.	लाहुल स्पीति : जीवन और संस्कृति (पेपर बैक/सजिल्द)	सं. डॉ. तुलसी रमण	150/250
12.	महानुवादक रत्नभद्र	विद्या सागर नेगी	100.00
13.	पांगी-भरमौर : जीवन और संस्कृति (पेपर बैक/सजिल्द)	सं. डॉ. तुलसी रमण	100/180
14.	पहाड़ी भाषा व्याकरण	सं. मौलू राम ठाकुर	125.00
15.	पर्वत से उभरे कलाकार	सं. अशोक हंस	150.00
16.	Lahul-Spiti-1917	Gazetteer	110.00
17.	Kulu and Saraj-1917	Gazetteer	150.00
18.	Rewaj-i-Am (Tribal Custom 1945-51)	Bachittar Singh	100.00
19.	Ethnography of Bashahar State	Tika Ram Joshi	66.00
20.	Kanawar 1939	R.H. Duester	60.00
21.	Monuments of Himachal Pradesh	J.Ph. Vogal & Others	133.00
22.	Customary Law of Kangra Distt. 1914-1918	L. Middelton	200.00
23.	Stalks in the Himalaya-1912	E.P. Stebbing	300.00
24.	Kangra Valley Painting	Vijay Sharma	44.00
25.	वैद्य सूरत सिंह	आचार्य ओम प्रकाश राही	55.00
26.	हिमाचल प्रदेश का प्राचीन तंत्र ग्रंथ : सांचा (पेपर बैक/सजिल्द)	अनु. देवीराम पाईं व मनीराम शर्मा	200/300
27.	हिमाचली कोविदाष्टकम् (पेपर बैक/सजिल्द)	एम. एल. आर्य	150/200
28.	हिमाचल प्रदेश का संस्कृत साहित्य	प्रो. केशव शर्मा	110.00
29.	नुहारा री पछाण	डॉ. प्रत्यूष गुलेरी	22.00
30.	रियासत कहलूर तथा हंडूर	अनु. ए. एन. वालिया	40.00
31.	सिरमौर रियासत का इतिहास	कंवर रणजोर सिंह	300.00
32.	कटोच वंश का इतिहास	अनु. ए. एन. वालिया	110.00
33.	अभिलेख और पांडुलिपि (पेपर बैक/सजिल्द)	स. डॉ. तुलसी रमण	100/170
34.	जालंधर पुराणम	अनु. पृथुराम शास्त्री	133.00
35.	हि.प्र. के हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. सुशील कुमार फुल्ल	350.00
36.	हिमाचल प्रदेश में रामकथा के लोक प्रसंग	सं. डॉ. विद्याचंद ठाकुर	00.00
37.	हिमाचल प्रदेश में गुग्गा परम्परा	सं. डॉ. करम सिंह	165.00
38.	हिमाचली सांस्कृतिक शब्दावली (संस्कार खंड) (पेपर बैक/सजिल्द)	सं. डॉ. तुलसी रमण	150/250
39.	हिमाचली लोकोक्ति संग्रह	सं. मीना शर्मा	100.00
40.	हिन्दी कहानी के सौ वर्ष	सं. डॉ. सुशील कुमार फुल्ल	500.00

राजकीय मुद्रणालय, हि० प्र०, शिमला—1925—ए.सी.डी./2014—13—2—2015—250.